ISSN 0973-3914

RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL AND LIFE SCIENCES

HALF YEARLY, BILINGUAL (English/Hindi)

A REGISTERED REVIEWED/REFEREED RESEARCH JOURNAL
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory©, ProQuest, U.S.A (Title Id: 715205)

अंक–XXVI हिन्दी संस्करण वर्ष–13 दिसंबर, 2018

UGC
Journal No. 40942
Impact Factor 3.112

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act, 1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

आई एस एस एन 0973–3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

पंजीकृत रिव्यूड/रेफर्ड रिसर्च जरनल

A Registered Reviewed/ Refereed

U.G.C. Journal No. 40942, Impact Factor 3.112

Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715205

अंक-XXVI-I	हिन्दी संस्करण	वर्ष-13	दिसम्बर, 2018

प्रधान सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित

profbrajgopal@gmail.com

ऑनरेरी सम्पादक

डॉ. एस. अखिलेश

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित

akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा

drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

संयुक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा

shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त प्राध्यापक रीवा

rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा की मुख्य शोध पत्रिका

म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत

पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (आचार्य) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
   arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर (आचार्य) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर।
   rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत (आचार्य) डॉक्टर हरिसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर।
   drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह (आचार्य) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी।
   imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव (आचार्य) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।
   anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला (सेवानिवृत्त (आचार्य)) कांगड़ा हिमाचल प्रदेश।
   bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना (सह प्राध्यापक) अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी।
   drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा (आचार्य) महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट।
   pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना (आचार्य) इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
   ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय (आचार्य) विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश।
    drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया (सह प्राध्यापक इतिहास) राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान।
    pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी (आचार्य) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
    dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे (प्राध्यापक) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल। shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव (आचार्य) शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान।
    dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही (आचार्य) अलवर राजस्थान।
    jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी (सेवानिवृत्त (आचार्य)) रीवा मध्य प्रदेश।
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच एन बी केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड।
    rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग–अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका रिव्यूड एवं रेफर्ड हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है। शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई–मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50–100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।
- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट– पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए–4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com**
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई–मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	**व्यक्तिगत सदस्यता**	**संस्थागत सदस्यता**
दो वर्ष	2500.00	3000.00
पाँच वर्ष	5000.00	6000.00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच–रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशकः गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

लेजर कम्पोजिंगः अरविन्द कुमार व्यास
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

एस.एस.डी.-4, 'गोकुल', विन्ध्य विहार कालोनी, ए.जी. कॉलेज रोड, दुर्गा मंदिर के सामने, रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

रिसर्च जर्नल आफ सोशल एंड लाइफ साइंसेज का यह 26 वां अंक (दिसंबर 2018) आपके समक्ष प्रस्तुत है। आगामी त्रैमासिक 27वें अंक (मार्च 2019) के लिए स्तरीय शोध पत्र आमंत्रित है। यहां हम भारतीय लोक सेवाओं के संबंध में यह कहना चाहेंगे कि प्रत्येक प्रशासन के लिए प्रशासनिक सेवाएं आवश्यक होती हैं क्योंकि यह प्रशासन में परिपक्वता, स्थायित्व, निर्भिकता, विकास और निश्चितता लाती है। आधुनिक प्रशासनिक सेवा विकसित और विकासशील राज्यों के संदर्भ में इन तकनीकी रूप में प्रशिक्षित स्थायी अधिकारियों द्वारा निर्मित है जो प्रशासन में अपना पूरा समय व जीवनकाल लगा देते है– जिसके कारण प्रशासनिक सेवाएं राजनीति के प्रति उदासीन, निष्पक्ष, क्रियाशील, लोककल्याण के प्रति जागरूक और उत्तरदायित्व से पूर्ण मानी जाती है। नौकरशाही किसी राष्ट्र के जीवन में बाधक नहीं है, जैसा कि बहुत से लोग मानते हैं। हमारी राष्ट्रीयता राजनैतिक नेताओं और चुनाव पद्धति पर टिकी हुई नहीं है, बल्कि इसकी बुनियाद देश की नौकरशाही है। हमारा देश ठीक–ठाक ढंग से चल रहा है, तो केवल इसलिए क्योंकि हमारे पास एक सु.ढ़ और सुव्यवस्थित नौकरशाही व्यवस्था है, जो एक खास तरीके से प्रशिक्षित है।

'नौकरशाही' की अवधारणा के आधुनिक संस्करण का विकास होता गया और "मैक्सवेबर" ने नौकरशाही का समाजशास्त्रीय अध्ययन करते हुए इस शब्द को विभिन्न अर्थो से मुक्तकिया और इस बात पर बल दिया कि किसी संगठन के उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों की उचित प्राप्ति के लिए नौकरशाही अनिवार्य है। इस संबंध में पिफनर महोदय ने लिखा है कि नौकरशाही कार्यो और व्यक्त्यिों के एक ऐसे रूप में व्यवस्थित संगठन है जो अधिकतम प्रभावशाली रूप में सामूहिक प्रयासों के लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। देश का प्रशासन चलाने का कार्य एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। यह उन जिम्मेदारियों से कहीं, बड़ी है जो राजनेताओं को पांच सालों के लिए मिलती है। इसलिए एक नौकरशाह के जीवन को इस तरह से सशक्तकरना जरूरी हो जाता है जिससे उसका जीवन तनाव और रोगों से मुक्तरहे, ताकि राष्ट्र अपने ही भार से दबकर चरमरा न जाए। अगर आज यह चरमरा रहा है तो इसका कारण यह है कि इसके बुनियादी ढांचे को उसकी सीमाओं से आगे खींचा जा रहा है। हमारे नौकरशाहों को हद से ज्यादा और अतर्कसंगत कार्य करने के लिए कहा जा रहा है। कानूनों को लागू करने की बजाए उनको तोड़ने–मरोड़ने के लिए उनसे कहा जा रहा है। इन वजहों से एक नौकरशाह की जिंदगी बेहद चुनौतीपूर्ण और अपेक्षाओं से भरी हो गई है। जनतांत्रिक व्यवस्था में सरकारें बदलना एक सहज–स्वाभाविक प्रक्रिया है और यह भी एक सच्चाई है कि हर सरकार अपनी पसंद के अफसरों को उन स्थानों पर रखना चाहती है, जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझती है। लेकिन यदि इस प्रक्रिया में अधिकारियों की प्रतिबद्धता किसी सरकार या मंत्री विशेष के साथ होना एक शर्त बन जाती है, तो यह स्थिति चिंता की भी होती है और खतरनाक भी। नौकरशाही की प्रतिबद्धता यदि किसी के प्रति होनी चाहिए तो वह देश की जनता एवं उसके हितों के प्रति ही हो सकती है। यह सही है कि सरकारी अधिकारियों को सरकार के निर्देशों के अनुसार कार्य करना होता है, पर

उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि यदि ऐसे निर्देश राष्ट्रीय हितों एवं सांविधानिक मर्यादाओं के अनुरूप न हों, तो वे आदेश देने वालों को इस बारे में आगाह अवश्य कर दें। उनकी प्रतिबद्धता की कसौटी जनहित ही होनी चाहिए। ऐसा नहीं है कि सरकारें अथवा नेता इस बात को, और इस बात के महत्व को समझते नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है कि इस भावना के विपरीत काम करने वाली सरकारों को इसके दुष्परिणामों से परिचित नहीं किया गया। लेकिन इस सबके बावजूद वे यह मानने के लिए तैयार नहीं कि उनके निर्देशों के पालन के अलावा भी सरकारी अधिकारियों की कुछ भूमिका हो सकती है।

सच तो यह है कि इस तरह के कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पर राजनीति के समीकरण इतने सीधे और सरल नहीं होते। यदि राजनेताओं का व्यवहार और सोच अपने स्वार्थों की सीमाओं से पार जा सके, तो शायद स्थिति में कुछ बदलाव आए, पर आज जैसी स्थितियां हैं, वे कोई आशा जगाने वाले नहीं हैं। हां, वे अधिकारी अवश्य आशा जगाते हैं, जो जनहित के लिए अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रति ईमानदार हैं।

हमारे यहां सरकार किसी भी दल की हो, पर अफसर वहीं रहते हैं। जो तबादले होते भी हैं तो उन्ही में से फेंटे जाते हैं। ऐसा नहीं है यह नौकरशाही राजनीतिक गुटबाजी से अलग है, पर पूरी अफसरशाही ही गुटबाजी में लिप्त हो ऐसा भी नहीं है। हाँ कुछ अफसरों का ग्रुप जरूर राजनीतिक गुटबाजी में लिप्त हो जाता है। यह प्रवित्ति भी इधर हाल ही में आयी है। लेकिन नौकरशाही का मूल चरित्र अभी भी काफी हद तक राजनीतिक प्रतिबद्धता से मुक्तही है।

यह बहुत जरूरी हो जाता है कि हर नौकरशाह अपने भीतर एक स्वाभाविक और सहज सुख की स्थिति में रहे। जब तक हम खुद अपने भीतर एक सुख की स्थिति में न हों हमें किसी दूसरे की जिंदगी को छूने का कोई हक नहीं है।

आशा है हमें आपका पूर्व वक्तअकादमिक सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक
रीवा, 26 जनवरी 2019

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

1. जातिगत संघर्ष और राजनीतिक हिन्सा : एक सामाजिक–आर्थिक समस्या 09
अखिलेश शुक्ल

2. परित्यक्त महिलाओं के आत्म–विश्वास एवं प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन 17
पूनम सिंह
अमृता कुमारी

3. छत्तीसगढ़ में प्रजननता का विश्लेषण (1981 से 2017) 24
पुष्पा श्रीवास
जे.एल. भारद्वाज

4. एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार का अध्ययन 33
अर्चना गोमास्ता
कविता गर्ग

5. युवाओं में जनसंचार तथा आधुनिकता के प्रतिमान (दिल्ली के नगरीय क्षेत्रों के विशेष सन्दर्भ में) 41
रेणु वर्मा

6. नरसिम्हा रावः भारत के गृहमंत्री के रूप में भूमिका का मूल्यांकन 52
राकेश कुमार यादव

7. छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद आंदोलन एवं प्रभावित क्षेत्र के नागरिकों के जन जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव 65
हृदयराम

8. भारतीय नागरिकों के संवैधानिक अधिकार 74
दिनेश कुमार

9. भारत में गरीबी की माप : एक अध्ययन 80
राम रतन
आशुतोष सिन्हा

10. ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का योगदान : पटना जिला के धनरूआ प्रखण्ड का एक भौगोलिक अध्ययन 92
विवेक कुमार

11. झारखंड के परंपरागत कृषि में बदलाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 102
जगदीश कुमार महतो

12. गोंड़ जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक–स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन 108
प्रमोद कुमार नायक
मंजुषा नामदेव

13. लोककला संजा के समक्ष नई चुनौतियाँ एवं नए आयाम 113
कुमकुम भारद्वाज
शीतल सोनी

14. प्रभा खेतान के उपन्यास छिन्नमस्ता में स्त्री–विमर्श 121
विनीता कुमारी

15. बुन्देलखण्ड कवियों की भाषिक प्रकृति 129
अमित शुक्ल

16. दिनकरजी के कुरूक्षेत्र में मानवतावादी चेतना 136
वाघमरे के.एच.

17. आत्मकथा के आईने में कृष्णा अग्निहोत्री के जीवनानुभवों का प्रतिबिम्ब 143
अनिता गुप्ता

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

जातिगत संघर्ष और राजनीतिक हिन्सा : एक सामाजिक-आर्थिक समस्या

* अखिलेश शुक्ल

सारांश- *भारतीय समाज में जातिगत आधार पर संघर्ष की समस्या भी प्रमुख है। अनुसूचित जातियों तथा विशेष रूप से हरिजनों के विरुद्ध अपराध सम सामयिक कानून व न्याय व्यवस्था के लिए गंभीर चुनौती है। पारंपरिक रूप से भूमि पर स्वामित्व जाति पर आधारित रहा है। उच्च जातियों का ही अधिकतर कृषि भूमि पर स्वामित्व होता था, जो स्वयं कृषि न करके अन्य निम्न स्तर की जातियों से काश्तकार, बटाइदार, इत्यादि के रूप में काम लेते थे। हरिजन और दलित जातियां केवल भूमिहीन कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करते थे।*

मुख्य शब्द– संघर्ष, राजनीतिक, गतिशीलता, जातीय सेना, सबक

निम्न जातियों को संविधान एवं कानून द्वारा दिये गये विशेष अधिकारों, तथा परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश के परिणामस्वरूप उनकी पद, स्थिति तथा कार्यों में परिवर्तन हुए हैं। जातियां सामाजिक और आर्थिक रूप से अधिक गतिशील हो रही है। यही गतिशीलता ग्रामीण क्षेत्रों में अंतर्जातीय तनाव तथा संघर्ष का प्रमुख कारण बन जाती है। हरिजनों और पिछड़ी जातियों को विशेष संवैधानिक अधिकार एवं कानूनी संरक्षण प्रदान किये गए। भूमि सुधार के उपायो द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन सब उपायों के परिणामस्वरूप कुछ मध्यम श्रेणी की जातियों, यादव, अहीर, कुर्मी इत्यादि की सामाजिक राजनीतिक शक्ति तथा साधनों में वृद्धि हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य उच्च जातियों (ब्राम्हण, ठाकुर इत्यादि) के साथ अब वे भी हरिजन और दलितों के शोषण और अत्याचार करने वालों की श्रेणी में आ खड़े हुये है। दूसरी ओर, अपने कानूनी अधिकारों के प्रति सचेत लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के द्वारा राजनीतिक रूप से जागरूक हुई हरिजन जातियां भी अपने अधिकारों के लिये संगठित होने लगी है। इस प्रकार गांवों में अंतर्जातीय संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी है। विभिन्न क्षेत्रों में यह अंतर्जातीय संघर्ष विभिन्न स्वरूप धारणा करता है। कहीं यह उच्च जातियों और मध्यम जातियों के बीच होता है, तो कही उच्च जातियों और हरिजनों के बीच, और कहीं मध्यम जातियों और हरिजनों के बीच। इस प्रकार अंतर्जातीयों के संघर्ष का स्वरूप अत्यंत व्यापक और जटिल हो गया है। जातिगत संघर्षों को आपराधिक आयाम मिल जाता है, जब इनमें जातिगत आधार पर

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा

बनाई गई निजी 'सशस्त्र सेनाओं' की सहायता ली जाने लगती है। उदाहरण के लिये बिहार में भू-स्वामियों ने अपने हितों की रक्षा के लिये (कुर्मी) 'भूमि सेना' का गठन किया है। इसमें ऐसे सशस्त्र गुण्डे तथा लठैत हैं जिनका उद्देश्य 'नक्सलवादियों' को समाप्त करना है, जो कि हरिजनों और भूमिहीनों श्रमिकों को इनके शोषण के विरुद्ध संगठित करते हैं। बिहार में इसे लाल सेना कहा जाता है। यादव भूपतियों की अपनी 'लोरिक' सेना है। अन्य सेनाओं में कुंअर सेना, ब्रह्मर्षि सेना, आजाद सेना, श्री ष्ण सेना, समाजवादी क्रांतिकारी सेना, शोषित समाजवादी सेना इत्यादि प्रमुख है। भूपतियों की सेनाओं के विरुद्ध कार्यवाही न होने का कारण उन्हें राजनीतिक तथा पुलिस संरक्षण का प्राप्त होना बताया जाता है। बिहार में इस प्रकार के जाति-युद्ध प्रायः होते रहते हैं जिनमें अधिकतर हरिजनों की सामूहिक रूप से बर्बर हत्या कर दी जाती है। वे विरोध करते हैं। इन सब कारणों से हरिजनों और सर्वण जातियों में टकराव की स्थितियों में वृद्धि होने लगी है।

इस प्रकार जातिगत संघर्ष की समस्या मूलतः एक सामाजिक-आर्थिक समस्या है। पुलिस द्वारा इसे कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में देखना स्वाभाविक ही है। कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में इन घटनाओं को रोकने के लिए बल प्रयोग की बात कही जाती है। परन्तु बल प्रयोग कब, कहां और किसके विरुद्ध हो, इसका सही आंकलन तभी किया जा सकता है, जबकि इसके सामाजिक-आर्थिक पहलुओं को भी ध्यान में रखा जाय। तभी बल प्रयोग उचित उद्देश्यों की पूर्ति कर सकने में सहायक होगा।

सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का कानून की एजेन्सियों के प्रति विश्वास उत्पन्न किया जाये। जैसी कि वर्तमान स्थिति है, इन एजेन्सियों और विशेष रूप से पुलिस के प्रति निम्न जातियों तथा भूमिहीन श्रमिकों का विश्वास बहुत कम होता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को चुपचाप सहन करते रहते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी धारणा बनी है कि अपराधियों को दण्ड नहीं मिलेगा। स्वयं वे ही कई प्रकार की परेशानियों में पड़ जायेंगे। अतः वे चुप रह जाते हैं अथवा उनके सम्मुख दूसरा रास्ता यह होता है कि जब उन्हें कानून से न्याय मिलने की आशा नहीं रहती, तो कभी-कभी वे स्वयं हिम्मत करके अपराधियों से बदला लेने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु अधिकतर इसके बदले में स्वयं उन्हीं के समुदाय के साथ सामूहिक हिंसा, लूटपाट, आगजनी, बलात्कार इत्यादि की घटनायें नृशंसता के साथ की जाती है। अतः यह स्वयं पुलिस और कानून और व्यवस्था के हित में है कि तनाव को हिंसात्मक संघर्ष में परिणित करने से रोका जाये। ऐसा इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि परिवर्तित संदर्भ में अब अनुसूचित जातियां तथा अन्य कमजोर वर्ग के लोग जागरूक व संगठित हुये हैं। अतः अब उच्च जातियों द्वारा किये जाने वाले ''अत्याचार'' एक पक्षीय नहीं है, बल्कि, द्विपक्षीय संघर्ष में परिवर्तित हो रहे हैं। जाति संघर्ष में कुछ अन्य ऐसे आयाम भी जुड़े हैं, जो इनको आपराधिक स्वरूप प्रदान करते हैं। पुलिस को इनकी तरफ ध्यान देना तथा इनका अति शीघ्र निराकरण करना आवश्यक है। अन्यथा इनसे समाज में हिंसा का व्यापक और गंभीर वातावरण बन जायेगा। इनमें से एक, निजी सेनाओं की उत्पत्ति और प्रसार है। ये सेनायें जाति के आधार पर पनपती हैं, और इनका उपयोग एक जाति द्वारा दूसरी जाति का दमन करने या उसे ''सबक'' सिखाने के लिए किया जाता है। सरकार द्वारा अनेक निजी जातिगत सेनाओं को ''गैर कानूनी'' घोषित कर देने के बावजूद भी उनकी

कार्यवाहियों में कोई कमी नहीं आई है। इन जातिगत सेनाओं के बढ़ते प्रभाव और कार्यवाहियों को समय पर न रोक पाने के गंभीर परिणाम सामने आ सकते हैं। इसका कारण उन जातिगत सेनाओं को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होना हो, अथवा स्थानीय पुलिस की उच्च और प्रभावशाली भूपतियों से मिली भगत हो सकती है। कानून और व्यवस्था के दृष्टिकोण से यह उचित स्थिति नहीं कही जा सकती है। इन सेनाओं के हाथ में जो आधुनिक तथा घातक शस्त्र संग्रहित हो रहे हैं, वह जातिगत हिंसा को ऐसा आयाम देगा जिससे निपटना काफी कठिन हो जायेगा। इनकी गंभीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अब हिंसा की घटनाओं से निपटने में स्थानीय और राज्य की पुलिस को भी अक्षम समझा जाने लगा है तथा अधिकतर केन्द्रीय सुरक्षा बलों की सहायता ली जाती है। यदि यही स्थिति बनी रही तो संभवतः अंत में सेना को भी बुलाने की आवश्यकता हो सकती है। क्या यह कानून और व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति, निजी जातिगत सेनाओं के ''आतंक'' तथा स्थानीय पुलिस की विफलता का पर्याप्त संकेत नहीं है? पंजाब तथा कश्मीर से भी कुछ सबक लेकर समस्या का समय रहते निदान करना आवश्यक है। अन्यथा बिहार जैसे प्रदेशों में जाति संघर्ष जाति-आतंकवाद (Cast Terrorism) में परिणित हो जायेगा। पुलिस को अपना बल प्रयोग प्रभावशील भूपतियों की सशस्त्र सेनाओं से हरिजनों व अन्य कमजोर वर्गों को बचाने में करना चाहिये। जो स्थिति बिहार में है, जाति संघर्ष व हिंसा की वैसी ही समस्या अन्य प्रान्तों, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु इत्यादि में भी न्यूनतम रूप से पायी जाती है। जाति आधारित हिंसा को एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में ही देखा जाना चाहिये। गरीब, कमजोर व शोषित वर्गों तथा जातियों की सुरक्षा हर कीमत पर की जानी चाहिये, क्योंकि यही सुरक्षात्मक संवैधानिक निर्देश है। स्थानीय पुलिस को अधिक सक्षम बनाने की आवश्यकता है। साथ ही पुलिस नेतृत्व व वरिष्ठ अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना चाहिये कि उनके अधीन पुलिस कर्मचारियों में जाति के अनुसार पक्षपात की भावनायें उत्पन्न न हो। रिपोर्ट सही रूप से दर्ज करना, तथा उनका तत्परता पूर्वक अन्वेषण करके अपराधियों को पकड़ना आवश्यक है। हरिजनों से संबंधित विशेष थाने पुलिस विभाग में बनाये गये हैं। गंभीर अपराधों के अन्वेषण का कार्य अपेक्षा त वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिये। हरिजनों पर अत्याचार या उनके विरुद्ध हिंसा के मामलों में लापरवाही करने वाले पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की व्यवस्था होना भी आवश्यक है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को भी यह सुनिश्चित करना चाहिये कि पुलिस तथा स्थानीय अधिकारी प्रभावशील जातियों और वर्गों का अनुचित पक्ष न लें और न ही उन पर ऐसा करने के लिये राजनैतिक दबाव डाला जाये।

जाति संघर्ष का एक अन्य आयाम, जो इसमें आपराधिक हिंसा का तत्व उत्पन्न करता है, वह है सशस्त्र डाकुओं के गिरोह जो जाति के आधार पर हस्तक्षेप कर जातिगत हिंसा को बढ़ावा देते हैं। यह समस्या विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार इत्यादि प्रान्तों में अधिक गंभीर है। डकैत गिरोह अब अपनी जाति के संरक्षक बनते जा रहे हैं, तथा प्रत्येक जाति के सदस्य भी कानून की एजेन्सियों की अपेक्षा अपनी जाति के डकैत गिरोहों पर अपनी सुरक्षा के लिये अधिक निर्भर रहते हैं। डाकुओं को अपनी जाति द्वारा सहायता मिलना इसका एक प्रमुख कारण है, जिसके परिणामस्वरूप इन गिरोहों को

पकड़ने में पुलिस को काफी कठिनाई होती है। ये डकैत अपनी जाति के सदस्यों की दृष्टि में अपराधी न होकर 'हीरो' बन जाते हैं, जिन्हें उसी जाति के लोग हर प्रकार से सहायता देने के लिये तैयार रहते हैं। अधिकतर डाकू जातिगत संघर्षों के परिणामस्वरूप ही पैदा होते हैं। जातिगत विवाद को लेकर किसी की हत्या कर देना और फिर ''बागी'' बन जाना। डाकू बन जाने के पश्चात जातिगत संघर्ष को बनाये रखने में उनका निहित स्वार्थ हो जाता है। जातिगत समर्थन और राजनीतिक संरक्षण इन्हें काफी शक्तिशाली बना देते हैं। कुछ डाकुओं का उपयोग तो चुनाव के समय भी किया जाता है। अतः इनमें से कुछ पर्याप्त प्रभाव सम्पन्न हो जाते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार मध्यप्रदेश इत्यादि प्रान्तों में इस प्रकार के छोटे बड़े सशस्त्र अपराधी गिरोहों की संख्या सैकड़ों में होगी, जो कानून और व्यवस्था के लिये तो समस्या उत्पन्न करते ही हैं, जातीय आधार पर संगठित होने के कारण कुछ विशिष्ट जातियों को अपनी हिंसा का लक्ष्य बनाते है तथा जातिगत संघर्ष को बढ़ाते रहते हैं। मशीनगनों जैसे आधुनिक हथियारों से लैस इन सशस्त्र अपराधियों का पारस्परिक संघर्ष और प्रतिशोध अनवरत चलता रहता है। जाति आधारित डकैत गिरोह लगभग सभी जातियों में पाये जाते हैं। प्रान्तों की सम्मिलित पुलिस कार्यवाही से अनेक दस्यु गिरोहों का उन्मूलन हो गया है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में जात-पात की राजनीति और प्रतिद्वन्दिता, तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनशीलता के कारण उनके बार-बार उभरने की संभावना बनी रहती है। इसे रोकने के लिए आवश्यक है कि पुलिस बल को जात-पात की भावना से मुक्त रखा जाये। हथियारों के लायसेन्स देने में सावधानी बरती जाये, अवैध हथियारों को जब्त किया जाये, पुलिस अधिकारियों की संख्या में वृद्धि की जाये ताकि वे अधीनस्थ पुलिस कर्मियों पर ज्यादा अच्छी तरह निरीक्षण रख सके, पुलिस वाहन, वायरलेस सेट, आधुनिक अस्त्रों जैसे साधनों को उपलब्ध कराया जाये जिससे पुलिस गश्त तेज की जा सके।1

राजनीतिक हिन्सा–

वैसे तो सामान्य रूप से सभी प्रकार के आन्दोलनों में ''राजनीतिक'' तत्व का समावेश किसी न किसी रूप में होता है, परन्तु यहां हमारा तात्पर्य ऐसे आन्दोलनों से है जो प्रमुख रूप से राजनीतिक दलों द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये चलाये जाते हैं। ये पुलिस के लिये बहुत ही संवदेनशील होते हैं। इन आन्दोलनों का उद्देश्य अपने राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना, सत्ता प्राप्त करना, अथवा सत्ता में बने रहना, तथा अपनी राजनीतिक विचारधारा, नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति अधिक से अधिक जन समर्थन प्राप्त करना होता है। भारत में प्रजातंत्र की स्थापना की गई है। अतः विभिन्न दल एक दूसरे के साथ सत्ता प्राप्त करने की होड़ में लगे रहते हैं। इस होड़ में चुनाव और वोट की प्रक्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः राजनीतिक दलों की नीतियां तथा कार्यकलाप ''वोटोन्मुख'' ही अधिकतर होते हैं। इसके लिए उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों और समूहों का समर्थन जुटाने का प्रयास करना आवश्यक हो जाता है। इसी दृष्टि से राजनीतिक दल अन्य सामाजिक आन्दोलनों से संबद्ध हो जाते हैं। कभी-कभी राजनीतिक दल का उदय ही किसी व्यापक आंदोलन के रूप में या उसके एक अंग के रूप में होता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना देश को स्वतंत्रता दिलाने के उद्देश्य से की गई थी और आगे चलकर कांग्रेस ने स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इसी प्रकार

अनेक वामपंथी राजनीतिक दल प्रायः विश्वव्यापी साम्यवादी या वामपंथी विचार धारा और आंदोलन के अंग के रूप में ही पनपे हैं। इन्हीं में हम 'नक्सलवादी' समूहों को भी सम्मिलित कर सकते हैं, जिसका एक वर्ग 'माओवाद' में विश्वास करता है तथा अपनी विचारधारा और तरीकों से गरीब और भूमिहीन षक वर्ग, श्रमिकों, बेरोजगार नवयुवकों इत्यादि को 'न्याय' दिलाने के लिये संगठित करने का प्रयास करता है। यह मुख्य प्रजातांत्रिक धारा से विमुख होने के कारण परंपरागत दृष्टि से राजनीतिक दल तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु एक विशेष राजनीतिक विचारधारा एवं तरीकों में विश्वास रखने वाला राजनीतिक समूह अवश्य है। इस राजनीतिक आंदोलन के अंतर्गत भी विभिन्न विचारधारायें पाई जाती है। इसके सिवाय, राजनीतिक दल किसी विशेष समुदाय की सुरक्षा,कल्याण या उत्थान के उद्देश्य से गठित होते है, जैसे- हिन्दू महासभा, जनसंघ, मुस्लिम लीग, अकाली दल इत्यादि। इस प्रकार के राजनीतिक दल किसी समुदाय विशेष के हितों का ही मुख्य रूप से प्रतिनिधित्व करते है। इन राजनीतिक दलों के द्वारा ही समाज में अधिकतर संप्रदायवाद और सांप्रदायिक हिंसा जैसी समस्यायें उत्पन्न की जाती है। यद्यपि ''वोट की राजनीति'' प्रायः सभी राजनीतिक दलों को ''संप्रदायवाद'' की ओर कुछ न कुछ मात्रा में ले ही जाती है। राजनीतिक दल अन्य आंदोलनों के साथ अपने आपको जोड़ने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि इससे उनका प्रभाव क्षेत्र बढ़ता है। इसी कारण कोई आंदोलन, चाहे व भाषा, क्षेत्र जाति इत्यादि किसी भी आधार पर हो राजनीतिक दल उससे जुड़ने का प्रयास करते हैं।

अपना प्रभावक्षेत्र विस्तृत करने तथा अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने के लिये राजनीतिक दल विभिन्न क्षेत्रों एवं वर्गों में अपने समर्थकों की समितियां या संगठन भी बनाते हैं, जिनके द्वारा वे उस क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाते हैं। जैसे हमारे देश में प्रायः सभी बड़े राजनीतिक दलों के समर्थक संगठन, शिक्षण संस्थाओं में (अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच) उद्योग और व्यवसाय में (ट्रेड यूनियन के रूप में) तथा किसानों के बीच पाये जाते हैं। इसी प्रकार स्त्रियों और युवकों को भी दलीय आधार पर संगठित किया जाता है जैसे महिला वाहिनी, युवा मोर्चा आदि। इन विभिन्न क्षेत्रों में अपने संगठनों द्वारा न केवल वे अपना प्रभाव फैलाते हैं बल्कि अपने दलीय हितों के अनुरूप विभिन्न मुद्दों को लेकर तनाव, संघर्ष व आन्दोलन भी करवाते रहते हैं। राजनीतिक दलों का सबसे महत्वपूर्ण विभाजन सत्ताधारी और विरोधी दलों के रूप में किया जा सकता है। इन दोनों प्रकार के दलों में मुख्य प्रतिस्पर्धा ''सत्ता'' से संबंधित ही होती है। यह राजनीतिक प्रतिस्पर्धा इन दलों को एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये, एक दूसरे के विरुद्ध आंदोलन, प्रदर्शन, घेराव, इत्यादि आयोजित करने के लिये प्रोत्साहित करती है। कानून और व्यवस्था तथा पुलिस के दृष्टिकोण से ये राजनीतिक आंदोलन गंभीर समस्या उत्पन्न करते हैं। क्योंकि प्रजातांत्रिक और स्वतंत्र समाज में न केवल विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है बल्कि शांतिपूर्ण तरीकों से अपना विरोध व्यक्त करने व आंदोलन की भी छूट रहती है। हमारे देश में विरोध व्यक्त करने के कुछ ऐसे सर्वथा नवीन तरीकों का आविष्कार किया गया है जो अब सामान्य राजनीतिक शब्दावली व व्यवहार के जाने माने अंग बन गये हैं। घेराव, रास्ता रोको, रेल रोको, सड़क रोको, आवश्यक सेवाओं को रोको इत्यादि के साथ-साथ आमरण अनशन या क्रमिक भूख हड़ताल इत्यादि भारतीय

राजनीतिक विरोध के प्रचलित अस्त्र बन गये हैं। इन तरीकों और कानून के उल्लंघन के बीच की सीमा रेखा लगभग विलुप्त हो गई है। पुलिस द्वारा घेराव या रास्ता रोकने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करना अत्यन्त विवादास्पद बन जाता है, विशेषकर तब जबकि इनके पीछे राजनीतिक दलों का हाथ हो। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के विरुद्ध कोई भी पुलिस कार्यवाही पुलिस की ''ज्यादती'' बन जाती है जो राजनीतिक आरोप प्रत्यारोप में बदल जाती है। राजनीति में रंगे हुये आन्दोलन में पुलिस को बड़ी हिकमतअमली से संतुलन बनाये रखना होता है। कार्यवाही करने पर ज्यादती और न करने पर निष्क्रियता के आरोप लग जाते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि पुलिस की कभी कोई गलती नहीं होती। परन्तु जहां सत्ता और विपक्ष का संघर्ष हो वहाँ निष्पक्ष रूप से कार्य करना पुलिस का दायित्व होता है।[1]

पुलिस की भूमिका एवं निष्पक्षता–

भारतीय राजनीति में धर्म, साम्प्रदायिकता, वर्ग और जातियों का बढ़ता हुआ प्रभाव देश के धर्म निरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक स्वरूप को आघात पहुंचा रहा है। साम्प्रदायिकता और जातिगत राजनीति के मुख्य उद्देश्य संकुचित हितों की रक्षा करना होता है। इसलिये राष्ट्रीय नेताओं को इस संबंध में गंभीर चिंतन करना चाहिये। उनका यह दायित्व है कि भारत के विभिन्न वर्गों, जातियों एवं सम्प्रदायों के सीमित तथा राष्ट्र के वृहत्तर हितों के बीच संतुलन स्थापित करें और सभी में राष्ट्रीय एकता की भावना को पुष्ट करें। पुलिस नाम के जिस संस्थान से अपराधों की रोकथाम के लगातार वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता की जाती है, उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से विरासत में मिला चरित्र आज भी एक सीमित मात्रा में ही सही प्रमाणित किये हुये हैं। भय पर आधारित इस पुलिस संगठन का भूतकाल में इतना दुरुपयोग हुआ है कि अब भारत के लोकतांत्रिक समाज में उसे लोकसेवक की सही पहचान बनाने में कठिनाई हो रही है। ब्रिटेन में पुलिस की जवाबदेही विधिक अदालतों तक सीमित है। लंदन में पुलिस आयुक्त को संसद हटा सकती है और अन्य पुलिस जनों को मुख्य आयुक्त के अलावा कोई अन्य अभिकरण आदेश भी नहीं दे सकता है। वहां की पुलिस किसी मंत्री या किसी राजनैतिक दल के आदेश पर काम करने के लिये बाध्य नहीं है। भारत में आजादी के इतने के इतने वर्षों के बाद भी यह स्थिति नहीं बन पायी है। यहां पुलिस को राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त करना होगा।

जहां तक साम्प्रदायिक, वर्गीय और जातीय तनावों व संघर्षों का प्रश्न है, भारत की पुलिस यदि राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त कर दी जाय और उसे उचित साधन प्रदान किये जाय तो वह इन्हें नियंत्रित करने में पूरी तरह सफल होगी। ऐसी ही स्थिति में पुलिस कानून का निष्पक्ष पालन कराने में समर्थ हो सकेगी और वह साम्प्रदायिक एवं जातीय तनावों एवं दंगों को काबू करने के लिये निर्भय होकर सभी समाजद्रोही तत्वों और साम्प्रदायिक व मजहबी तनाव पैदा करने वाली ताकतों को पकड़ने में सफल होगी। पुलिस की गुप्तचर शाखा सक्रिय होकर ऐसे तनावों और दंगों को रोकनें में एक अच्छी भूमिका का निर्वाह कर सकती है किंतु इसके लिये पुलिस प्रशासन में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक होगा क्योंकि सूचना प्राप्त होते ही तत्काल निर्णय लेकर कार्यवाही करने से ही भावी वारदातों को रोका जा सकता है। पुलिस को उपद्रवियों धर्मान्धशक्तियों, गुण्डों एवं अन्य समाज विरोधी तत्वों को सूचीबद्ध करना होगा किंतु इसके लिए राजनैतिक अहस्तक्षेप की

आवश्यकता है। यह भी कहा जा सकता कि पुलिस के पास ऐसे भीषण दंगों से निपटाने के लिए न वे साधन उपलब्ध है और न वे शस्त्र जो आज हिंसा प्रधान संगठनों के पास है। वास्तव में साम्प्रदायिक तनावों एवं संघर्षो से निपटने के लिये पुलिस व प्रशासन को अधिक अधिकार स्वायत्ता एवं आधुनिक सुविधायें प्रदान करनी होगी और तभी इनके लिये विशेष रणनीतियां एवं उपाय कारगर होंगें। हिंसा से प्रभावित क्षेत्रों और नगरों में शस्त्र अधिनियम के अंतर्गत छूरे, चाकू, भाले और तलवार जैसे शस्त्रों को भी लाना होगा और इनके लिये भी लाइसेन्स की व्यवस्था करनी होगी। प्रत्येक थाने में पर्याप्त मात्रा में आग्नेय अस्त्र रखने होंगे एवं उनकी सुरक्षा के विशेष प्रबंध करने होगें। प्रत्येक पुलिसकर्मी को निर्धारित आचार संहिता का पालन करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

1. पुलिस के लिए संविधान के प्रति सत्यनिष्ठा और जैसी कि संविधान में गारंटी दी गई है, नागरिकों के प्रति सम्मान तथा उनके अधिकारों को बनाए रखना आवश्यक है।
2. पुलिस को नियमानुसार पारित किसी भी कानून के औचित्य या उसकी आवश्यकता के बारे में प्रश्न नहीं करना चाहिए। उन्हें कानून दृढ़तापूर्वक और भेदभाव, डर या पक्षपात और दुर्भावना या बदले के भाव के बिना लागू करना चाहिए।
3. पुलिस को अपनें अधिकार क्षेत्र और अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए और इनका पालन करना चाहिए। उन्हें न्यायपालिका के अधिकार नहीं हथियाने चाहिए और न ही यह लगना चाहिए कि वे ये ऐसी कोशिश कर रहे है, और न ही व्यक्तियों से बदला लेने तथा अपराधी को दंड देने के लिए फैसले को रोके रहना चाहिए।
4. कानून का पालन करवाने के लिए, जहां तक व्यावहारिक हो, समझा-बुझाकर और सलाह या चेतावनी देकर काम चलाना चाहिए। जब बल का इस्तेमाल करना जरूरी हो ही जाए तो परिस्थितियों के अनुसार कम से कम बल का इस्तेमाल करना चाहिए।
5. पुलिस का प्रथम कर्तव्य है कि अपराध और अशांति को रोके। पुलिस को पक्के तौर पर समझ लेना चाहिए कि उनकी कुशलता की परख इसी में है कि अपराध और अशांति हो ही नहीं।
6. पुलिस को यह महसूस कर लेना चाहिए कि वे जनता में से ही ही, अंतर केवल इतना है कि समाज के हित में और समाज की ओर से उन्हें नियुक्ति किया गया है ताकि वह उन कर्तव्यों के प्रति पूरे समय ध्यान दे सकें जो अन्यथा सभी नागरिकों को भी निर्वाह करने होते हैं।
7. पुलिस को यह अनुभव करना चाहिए कि जितना सहज सहयोग उन्हें जनता से मिलेगा उतना ही उन्हें कुशलता से अपना काम करने में मदद मिलेगी। फिर यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे अपने आचरण और कार्यो के बारे में लोगों का कितना विश्वास प्राप्त कर सकते है।
8. पुलिस को हमेशा लोगों की भलाई दिमाग में रखनी चाहिए उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाना चाहिए। उन्हें लोगों की आर्थिक-सामाजिक प्रतिष्ठा की ओर ध्यान दिए बिना सबकी सेवा और सहायता करने के लिए तैयार रहना चाहिए।
9. पुलिस को स्वयं से पहले कर्तव्य को रखना चाहिए। खतरों के समय किसी के

भला-बुरा कहने पर या किसी के खिल्ली उड़ाने जैसी परिस्थितियों में शांत रहना चाहिए तथा दूसरों की प्राण रक्षा में अपना जीवन बलिदान करने के लिये तैयार रहना चाहिए।

10. पुलिस को हमेशा शिष्ट और सदाचारी रहना चाहिए, उन्हें ऐसा होना चाहिए कि लोग उन पर भरोसा करें उन्हें पक्षपात से अलग रहना चाहिए, उनमें उदारता और साहस होना चाहिए, तथा उन्हें उच्च चरित्र का बनाना चाहिए, ताकि वे लोगों का विश्वास प्राप्त कर सकें।
11. पुलिस की प्रतिष्ठा का मूल आधार ईमानदारी है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्हें अपना निजी जीवन सादा और संयमित रखना चाहिए और उनका निजी तौर पर या सरकारी नौकर के रूप में विचारों और कार्यो में सच्चा तथा ईमानदार होना जरूरी है। ताकि लोग उन्हे आदर्श नागरिक के रूप में सम्मान दे सकें।
12. पुलिस को महसूस करना चाहिए कि राज्य के लिए वे पूरी तरह से तभी उपयोगी हो सकते हैं, जब वे कानून के अनुसार अनुकरणीय अनुशासन और निष्ठा के साथ कर्तव्य-निर्वाह कर सकें तथा अपने उच्चाधिकारियों के कानूनी निर्देशों का सही-सही अनुपालन करें। अपने बल अर्थात पुलिस संगठन के प्रति पूरी वफादारी रखें तथा अपने को लगातार प्रशिक्षण तथा तैयारी की स्थिति में रखें।
13. धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक देश के नागरिक होने के नाते पुलिस को हमेशा व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से ऊपर उठने की कोशिश करनी चाहिए। भारत के सभी लोगों के बीच एकता और भाईचारे की भावना पैदा करनी चाहिए वाहे वे किसी भी धर्म, भाषा, क्षेत्र अथवा वर्ग के हों, और ऐसी रीतियों को त्यागना चाहिए जो नारी जाति तथा समाज के दलित वर्ग की प्रतिष्ठा के प्रति अपमानजनक हो।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. माथुर, कृष्ण मोहन (1991) स्वातंत्रयोत्तर, भारत में जनता का उत्तरदायित्व तथा पुलिस की भूमिका, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो गृह मंत्रालय भारत सरकार, नईदिल्ली
2. मलिक, बी.एन. (1994) पुलिस एक दार्शनिक विवेचना, पुलिस वेलफेयर सेण्टर, भोपाल।
3. यादव, राजाराम (2004) पुलिस अन्वेषण और अभियोजन लॉ बुक कम्पनी, इलाहाबाद।
4. राजकिशोर (2004) भ्रष्टाचार की चुनौती (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)
5. रतन कुमार (2006) भारत में अपराध और राजनीतिक संबंध का एक विधिक आलोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
6. डॉ. एस. अखिलेश (2017), पुलिस एवं समाज, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा (म.प्र.)
7. डॉ. एस. अखिलेश स्वतंत्रोत्तर भारत में पुलिस की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन नईदिल्ली।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

परित्यक्त महिलाओं के आत्म-विश्वास एवं प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन

* पूनम सिंह
** अमृता कुमारी

सारांश- *प्राचीन भारतीय संस्कृति की अवधारण एवं विशेषता रही है, कि पितृसत्तात्मक परिवार होते हुए भी महिलाओं को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यदि प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करते हैं तो धार्मिक कर्यो से लेकर मुख्य अवसरों पर महिलाओं को प्राथमिकता एवं सम्मान मिलता रहा है। वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति कुछ लोगों की मानसिकता में परिवर्त्तन हुआ है। हमारे समाज के कुछ लोग नारियों के प्रति अपना नजरिया परिवर्तित किये हैं, जिसके कारण एक ओर जहाँ हमारे परिवार एवं समाज की महिलाएँ परित्यक्त होती है, वहीं दूसरी तरफ, ऐसा व्यक्ति अपनी मानसिक विकृति का परिचय देते हैं। उदाहरण के लिये, यदि कोई महिला दुर्भाग्यवश विधवा हो जाती है या उन्हें कोई संतान नहीं होती है अथवा सिर्फ लड़की ही जन्म लेती है तो हमारे समाज में गिने चुने लोग उन्हें नजरअंदाज करने लगते हैं। किसी भी महिला को नजर अंदाज करना अथवा तिरस्कृत करना उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान करना होता है। महिलाएँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जब तिरस्कृत होती है, तो उसका प्रभाव उसके मानसिक पटल पर पड़ता है और उसका 'समग्र' प्रभावित होता है।*

मुख्य शब्द- आत्मविश्वास, प्रतिबल की अवस्था, संघर्ष

आत्म विश्वास, किसी भी मनुष्य के व्यक्ति की एक विशेषता होती है। आत्म-विश्वास के द्वारा व्यक्ति अपने अंदर सकारात्मक और वास्तविक प्रत्यक्षण कर पाता है और अपने गुणों की पहचान कर पाता हैं। यह व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषता होती है, जिसके द्वारा व्यक्ति में स्वतंत्रता, विश्वास, स्नेह, आशक्ति, आलोचनाओं को सामना करने की क्षमता और सांवेगिक परिपक्वता इत्यादि विकसित होती है। वसावना (1975) के अनुसार, ''आत्म-विश्वास से तात्पर्य व्यक्ति के वैसे अर्जित गुणों से होता है, जिसके द्वारा प्रभावी रूप से किसी भी परिस्थिति में सही तरीके से करने में सक्षम होता है। महिलाओं का आत्म-विश्वास भी महत्वपूर्ण कारक होता है। विभिन्न शोधों के आधार पर बताया गया है, कि आत्म-विश्वास मजबूत रहने के विपरीत परिस्थिति में भी महिलाएँ अपनी समस्याओं का सामना करने में सफल होती है। दूसरी तरफ, आत्म-विश्वास कमजोर होने पर महिलाएँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कमजोर होने लगती है और उनका समायोजन

* एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
** शोध छात्रा, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

बिगड़ने लगता है।

प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास के संदर्भ में अनेकों पूर्व के अध्ययन जो उपलब्ध है, जिसके द्वारा प्रस्तुत शोध में आवश्यक दिशा प्राप्त किया जा सकता है। लजारस एवं आलपोर्ट (1972) ने अपने अध्ययन परिणाम में पाया है कि प्रतिबल की अवस्था होने पर व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं स्व के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रतिबल की अवस्था होने से व्यक्ति में अंतमुर्खता, आवेग, नियंत्रण में कमी एवं आत्म-विश्वास का स्तर निम्न होता है।

मैखुरी, आर० एवं पनोले, एस०के० (1977) ने किशोरों में प्रतिबल, आत्म-विश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया है और पाया है, कि प्रतिबल की अवस्था में रहने से किशोरों में आत्म-विश्वास का स्तर निम्न होता है। साथ ही, शहरी-ग्रामीण किशोरों में प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास का स्तर भी सार्थक रूप से भिन्न पाया गया।

मेहता, मंजू एवं कौर, तेजिन्दर (1996) ने अपने अध्ययन परिणाम में पाया है कि आत्म-विश्वासी लड़कियों में समायोजन की कुशलता अधिक होती है। ऐसी लडकियाँ, पारिवारिक, स्वास्थ्य, सामाजिक एवं संवेगिक रूप से समायोजित होती हैं।

सैनी, सरिता (2005) ने अपने अध्ययन में पाया है कि कार्य करनेवाली महिलाओं के बच्चों में आत्म-विश्वास के स्तर में भिन्नता पाई जाती है अर्थात् कार्यरत महिलाओं में बच्चों में आत्म-विश्वास का स्तर, कार्य नहीं करने वाले माताओं के बच्चों में आत्म-विश्वास के स्तर की अपेक्षा ऊँचा होता है।

अंजली (2005) के अनुसार, परिवार में संघर्ष, असंतुलित आहार, दण्ड, व्यक्तिगत यौनिक शिक्षा की कमी और हार्मोनल परिवर्त्तन बच्चो में प्रतिबल का मुख्य कारण होता है। साथ ही, इन्होंने अपने अध्ययन परिणाम में यह भी पाया है, कि विद्यालय जाने की उम्र के बच्चों में प्रतिबल का स्तर बढ़ने से उसके स्वप्रत्यय एवं समायोजन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस तरह, प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास से संबंधित अनेकों शोध अध्ययन उपलब्ध है, लेकिन इन अध्ययनों की समीक्षा में परित्यक्त महिलाओं से संबंधित अध्ययनों का अभाव है। अतः ऐसी स्थिति में शोधार्थी द्वारा परित्यक्त महिलाओं के प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास के अध्ययन से संबंधित शीर्षक पर शोध कार्य करने का निर्णय लिया गया है।

शोध का उद्देश्य– प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित है :

1. परित्यक्त की अवधारणा के साथ प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास की अवधारणा का वर्णन करना।
2. व्यक्तियों के प्रतिबल एवं आत्म-विश्वास पर उनके परित्यक्त होने संबंधी प्रभावों का वर्णन करना।
3. इस शोध परिणाम के आधार पर संबंधित व्यक्तियों शोधार्थियों, सलाहकारों एवं परामर्शदाताओं के आवश्यक जानकारी प्रदान करना।

परिकल्पनाएँ– प्रस्तुत शोध की मुख्य परिकल्पनाएँ निम्नांकित है :

1. परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर होगा,
2. परित्यक्त महिलाओं में आत्म-विश्वास का स्तर कम होगा जबकि सामान्य महिलाओं

में आत्म-विश्वास का स्तर अच्छा होगा।

(3) कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर होगा।

(4) आत्म-विश्वास की दृष्टि से कार्यरत एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं में सार्थक अंतर होगा।

प्रविधि–

1. **प्रतिदर्श–** प्रस्तुत शोध में कुल 200 (100 सामान्य एवं 100 परित्यक्त) महिलाओं का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया। प्रतिदर्शों की उम्र 24 वर्ष से 34 वर्ष (औसत उम्र 29 वर्ष) थी।
2. **प्रतिदर्श चयन की विधि–** प्रतिदर्शों के चयन में उद्देश्यपूर्ण चयन विधि का अवलोकन किया गया।
3. **अध्ययन क्षेत्र–** अध्ययन क्षेत्र के रूप में सारण जिला के ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों का चयन किया गया।
4. **मापनियाँ–** प्रस्तुत शोध में निम्नांकित मापनियों का प्रयोग प्रदत्त-संग्रह के लिए किया गया :
    1. **प्रतिबल मापनी–** उत्तरदाताओं के प्रतिबल स्तर की माप के लिये सिन्हा एवं सिंह (1996) द्वारा विकसित प्रतिबल मापनी का प्रयोग किया गया।
    2. **आत्म-विश्वास मापनी–** प्रतिदर्शों के आत्म-विश्वास के स्तर की जाँच के लिए रेखा गुप्ता (1987) द्वारा विकसित आत्म-विश्वास मापनी का प्रयोग किया गया। इस मापनी में प्रतिदर्श द्वारा प्राप्त उच्चतम अंक निम्न आत्म-विश्वास तथा निपम्नतम अंक उच्च आत्म-विश्वास के स्तर को दर्शाता है। यह मापनी भारतीय संदर्भ में मनोवैज्ञानिक शोध के लिये अधिक उपयुक्त, विश्वसनीय, वैध एवं वास्तविक मापनी है।
    3. **व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र–** उत्तरदाताओं के संबंध में व्यक्तिगत सूचनाओं जैसे, नाम, उम्र, यौन, शहरी-ग्रामीण अधिवास, परिवार के सदस्यों की शैक्षिक पृष्ठभूमि, परिवार का आकार, परिवार में सदस्यों की संख्या, उत्तरदाताओं के प्रति परिवार एवं समाज के लोगों की मनोवृत्ति इत्यादि की जानकारी हेतू स्वयं द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना-प्रपत्र का प्रयोग किया गया।

प्रदत्त–संग्रह की प्रक्रिया– उत्तरदाताओं से प्रदत्त संग्रह के लिये शोधार्थी द्वारा अच्छे तरीके से योजना बनाई गई। तत्पश्चात् बनाई गई योजना के अनुसार चयनित किये गये मापनियों के सेट के साथ अध्ययन क्षेत्र का भ्रमण किया गया एवं उत्तरदाताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क किया गया। उत्तरदाताओं को यह विश्वास दिलाया गया कि उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को गोपनीय रखा जायेगा। उसके बाद आपसी सहमति के आधार पर तय किये गये स्थान, तिथि एवं समय पर एक छोटा समूह स्थिति में प्रदत्त संग्रह का कार्य पूर्ण किया गया एवं उत्तरदताओं को आवश्यक सहयोग के लिए धन्यवाद दिया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण–

संग्रहित किये गये प्रदत्तों का सांख्यिकीय (टी-परीक्षण) विधि द्वारा विश्लेषित किया

गया एवं परिणाम तैयार किया गया।

परिणाम–

1. परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम :

परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के बीच प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इस संदर्भ में प्राप्त परिणाम को निम्नांकित सारणी में दर्शाया गया है :

सारणी संख्या : 01

परित्यक्त एवं सामान्य महिलाओं के प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन संबंधित परिणाम

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	विश्वास का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
परित्यक्त महिलाएं	100	39.22	8.32	5.4	<-05	198
सामान्य महिलाएं	100	33.54	6.49			

उपरोक्त सारणी संख्या-01 के अवलोकन से स्पष्ट है, कि प्रतिबल मापनी में जहाँ परित्यक्त महिलाओं ने अधिक माध्य (39.22) एवं मानक विचलन (8.32) प्राप्त किया है, वहीं सामान्य महिलाओं ने प्रतिबल मापनी पर कम माध्य एवं मानक-विचलन अंक (क्रमशः 33.54 एवं 6.49) प्राप्त किया है। दोनों समूहों के द्वारा प्राप्त माध्यम एवं मानक विचलन के आधार पर परिकलित किये गये टी-मूल्य विकास का (5.40) विश्वास के स्तर पर सार्थक पाया गया। इस परिणाम के आधार पर स्पष्ट है, कि परित्यक्त महिलाओं में सामान्य महिलाओं की अपेक्षा प्रतिबल का स्तर अधिक है। परित्यक्त महिलाओं में प्रतिबल अधिक होने के पीछे उनके परित्यक्त होने को मान सकते हैं। इस तरह, यह परिणाम पूर्व में बनाई गई परिकल्पना संख्या-1 को साबित करती है।

2. परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के आत्म-विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम–

शोधकार्य के क्रम में परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के आत्म-विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इस संदर्भ में प्राप्त परिणाम को निम्नांकित सारणी में दर्शाया गया है।

सारणी संख्या : 02

परित्यक्त एवं सामान्य महिलाओं के आत्म-विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	विश्वास का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
परित्यक्त महिलाएं	100	48.65	4.92	9.89	<-05	198
सामान्य महिलाएं	100	42.11	2.81			

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि परित्यक्त महिलाओं एवं सामान्य महिलाओं के आत्म-विश्वास के स्तर में सार्थक अंतर है। अर्थात् सामान्य महिलाओं में आत्म-विश्वास का स्तर अच्छा है एवं परित्यक्त महिलाओं में आत्म-विश्वास का स्तर निम्न है। इस संदर्भ में दोनों समूहों के उत्तरदाताओं के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक विचलन के

आधार पर परिकल्पित टी-मूल्य (9.89) विश्वास के ढ05 स्तर पर सार्थक पाया गया। इस तरह के परिणाम के संबंध में यही कहा जा सकता है, कि परित्यक्त होने के कारण महिलाओं में आत्म-विश्वास का स्तर कम है। अतः यह परिणाम की पूर्व में बनाई गई परिकल्पना को प्रमाणित करती है, एवं मैखुरी एवं पनोले (1977) के द्वारा किये गये अध्ययन परिणाम की पुष्टि करता है।

3. कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के प्रतिबल का अध्ययनः

प्रतिबल का कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन टी-परीक्षण विधि के आधार पर किया गया और निम्नांकित परिणाम प्राप्त किया गया :

सारणी संख्या : 03

कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी—मूल्य	विश्वास का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
परित्यक्त कार्यरत महिलाएं	50	38.38	6.44	2.78	<-05	98
सामान्य अकार्यरत महिलाएं	50	41.91	4.28			

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है, कि प्रतिबल मापनी पर जहाँ कार्यरत परित्यक्त महिलाओं ने निम्न माध्य (38.38) और मानक विचलन (6.44) प्राप्त किया है, वहीं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं ने अधिक माध्य (41.91) और मानक विचलन (4.28) प्राप्त किया है। साथ ही, दोनों समूह के द्वारा प्राप्त माध्यय एवं मानक विचलन के अंकों के आधार पर परिकलित टी-मूल्य (2.78) विश्वास के <.05 स्तर पर सार्थक पाया गया। इस परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है, कि वैसी परित्यक्त महिलाऐं जो किसी भी तरह के कार्य नहीं करती है प्रतिबल की समस्या से अधिक ग्रसित रहती है, जबकि कार्यरत परित्यक्त महिलाऐं प्रतिबल की समस्या से कम ग्रसित रहती है। इस तरह, के परिणाम के पीछे हम उनको परित्यक्त होने के साथ किसी भी तरह के कार्य नहीं करने संबंधी कारक को मान सकते हैं।

4. आत्म-विश्वास की दृष्टि से कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम :

शोधकार्य के क्रम में आत्म-विश्वास का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इसके लिऐ कार्यरत एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के बीच आत्म-विश्वास मापनी को प्रशासित करते हुए प्रदत्त संग्रह किया गया और टी-परीक्षण विधि द्वारा तुलनात्मक परिणाम प्राप्त किया गया जिसे निम्नांकित सारणी संख्या 4 में दर्शाया गया है।

सारणी संख्या - 04

कार्यरत परित्यक्त एवं अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं के आत्म-विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन संबंधी परिणाम :

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	विश्वास का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
परित्यक्त कार्यरत महिलाएं	50	47.43	4.21	3.39	<-05	98
सामान्य अकार्यरत महिलाएं	50	51.02	6.33			

उपरोक्त सारणी संख्या 4 के अवलोकन से स्पष्ट है, कि कार्यरत परित्यक्त महिलाओं में आत्म-विश्वास का स्तर अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं की अपेक्षा बेहतर है। क्योंकि कार्यरत परित्यक्त महिलाओं ने अकार्यरत परित्यक्त महिलाओं की अपेक्षा आत्म-विश्वावस मापनी पर कम माध्य (47.43) एवं मानक विचलन (4.21) प्राप्त की है। साथ ही, प्राप्त टी'-मूल्य (3.39) विश्वास के <.05 स्तर पर सार्थक पाया गया। यहाँ स्पष्ट है कि आत्म-विश्वास मापनी पर उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त निम्नतम अंक अच्छा आत्म-विश्वास के स्तर को सूचित करता है, जबकि उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त अधिकतम अंक खराब आत्म-विश्वास के स्तर को सूचित करता है। इस तरह, के परिणाम के पीछे हम उत्तरदाताओं को कार्यरत रहने अथवा नहीं रहने संबंधी कारक को मान सकते हैं।

निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महिलाओं का परित्यक्त होना एक समस्यात्मक सूचक है। परित्यक्त महिलाओं में प्रतिबल का स्तर अधिक होता है एवं आत्म-विश्वास निम्न स्तर का होता है।

शोध की सीमा– प्रस्तुत शोध में सीमाओं के प्रविष्टकरण से इंकार नहीं किया जा सकता है। शोध कार्य संबंधी सुविधाओं का अभाव, प्रदत्त-संग्रह के लिये शोध मापनियों की उपलब्धता संबंधी कठिनाईयाँ, अध्ययन क्षेत्र का भ्रमण, प्रदत्तों के विश्लेषण में तकनीकी समस्याएँ इत्यादि के कारण शोधकार्य में कमियों का होना स्वाभाविक है, लेकिन इन कमियों के बावजूद यह शोधकार्य वर्त्तमान परिपेक्ष्य में अधिक प्रासंगिक है।

सुझाव– सुझाव के रूप में स्पष्ट है कि महिलाओं का किसी न किसी कारण से परित्यक्त होना एक अहम मुद्दा है। इसका महिलाओं के मानसिक, शारीरिक एवं अन्य पक्ष पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने हेतु यह संदर्भ अति महत्वपूर्ण है। इस दृष्टिकोण में इस शीर्षक से संबंधित राष्ट्रीय प्रतिदर्श बनाकर शोधकार्य करने की आवश्यकता है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. अंजली, के० (2005) : द काउजेज ऑफ सोशल डैमेजेज पेस्टॉन, पब्लिकेशन सेकेण्ड इडिसन।
2. मेहता, मंजू एवं कौर, तेजिंदर (1996) : स्टडी ऑफ एडजेस्टमेंट एंड सेल्फ-कंन्फीडेंस, एमांग स्कूल गोइंग गर्ल्स, रिसर्च आर्टिकिल पब्लिशड् इन रिसर्च जर्नल ऑफ यूनिवर्सल एजुकेशन, नई दिल्ली-वॉल्युम, II, इश्यू-1, 177-184
3. मैखूरी आर० एंड पनोले, एस०के० (1977) : ''सेल्फ कॉन्फीडेंस ऑफ एडोल्सेन्ट्स इन रिलेशन टू दीअर एकेडमिक एचीवमेंट, गढ़वाल यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, श्रीनगर।
4. जलारस एवं आलपोर्ट (1972) : ''द सेल्फ कंट्रोल ऑफ इमोशनल रिऐक्शन्स टू स्ट्रेसफुल फिल्म'' जर्नल ऑफ पर्सनॉलिटी, वॉल्यूम-4, अश्यू-II, 601-619

5. वसावना, (1975) : मैनूअल ऑफ सेल्फ कंन्फीडेन्स इन्वेन्ट्री, आगरा साइकॉलॉजिकल रिसर्च सेसल, आगरा, इंडिया।
6. सैनी, सरिता (2005) : ''कार्यरत महिलाओं के बच्चों में आत्म-विश्वास का अध्ययन'' इंडियन जर्नल ऑफ ह्यूमेन विहेवियर एंड साइंसेज, नई दिल्ली, वॉल्यूम-II, 174-182

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

छत्तीसगढ़ में प्रजननता का विश्लेषण (1981 से 2017)

* पुष्पा श्रीवास
** जे.एल. भारद्वाज

सारांश– *भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है। इस बढ़ती जनसंख्या का प्रमुख कारण महिलाओं की उच्च प्रजनन दर है। विश्व बैंक के अनुसार भारत की प्रजनन दर वर्ष 1970 में 5.8 थी जो घटकर 1995 में 3.2 हो गयी और वर्ष 2016-17 में यह 2.11 हो गयी है। इसके विपरीत, विकसित देशों में प्रजनन दर 1.2 से 1.5 के मध्य है। छत्तीसगढ़ में प्रजनन दर अखिल भारतीय स्तर से अधिक है। देश के 30 राज्यों में छत्तीसगढ़ का क्रम वर्ष 2004 एवं 2017 दोनों में 21वां है। राज्य में प्रजनन दर को प्रभावित करने वाले कारकों में शिशु मृत्युदर, स्त्रियों की विवाह की आयु, प्रति व्यक्ति आय, स्त्रियों में साक्षरता की दर, स्त्री श्रम सहभागिता दर, नगरीकरण, खाद्यान्न उत्पादन एवं विवाहित महिलाओं का प्रतिशत सभी सार्थक पाये गये है। राज्य में प्रजनन दर को कम करने के लिए स्त्रियों में जागरूकता, साक्षरता दर में वृद्धि, लैंगिक समानता, विवाह आयु में वृद्धि, परिवार नियोजन की अनिवार्यता, दो बच्चों के परिवार को आदर्श परिवार बनाये जाने के साथ ही महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य स्तर में सुधार एवं रोजगार में वृद्धि करके आत्मनिर्भर बनाये जाने की आवश्यकता है।*

मुख्य शब्द– प्रजननता दर, आयु विशिष्ट प्रजनन दर, सकल प्रजनन दर, शिशु मृत्यु दर, स्त्रियों की विवाह आयु, स्त्री साक्षरता दर, प्रति व्यक्ति आय, स्त्रियों की सहभागिता दर, विवाहित स्त्रियों का प्रतिशत।

प्रस्तावना– **भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है। पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास के लक्ष्यों का जो ताना-बाना बुना जाता है, वह बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण योजनाओं के उपरांत प्राप्त नहीं हो पाती है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या का एक प्रमुख कारण महिलाओं की उच्च प्रजनन दर है। विश्व बैंक के अनुसार विकासशील देशों में प्रजनन दर ऊंची होती है, वर्ष 1970 में विकासशील देशों जैसे भारत में कुल प्रजनन दर 5.8, पाकिस्तान में 7.0, इंडोनेशिया 5.5, इरान 6.7, इराक 7.1, बंगलादेश 7.0, नेपाल 6.4, अफगानिस्तान 7.9, चीन 5.8, ब्राजील 5.0 और श्रीलंका में 4.3 थी, जो घटकर वर्ष 1995 में क्रमशः भारत में 3.2, इंडोनेशिया 2.7, इरान 4.5, इराक 5.4, बंगलादेश 3.5, नेपाल 5.3, अफगानिस्तान 6.9, ब्राजील 2.4, श्रीलंका 2.3 एवं चीन में 1.9 हो गयी थी। इसके विपरीत, विकसित राष्ट्रों में यह प्रजनन दर वर्ष 1970 में ही फ्रांस 2.5, जर्मनी 2.0, इटली 2.4, जापान 2.1, सिंगापुर 3.1, यूनाईटेड किंगडम**

=========================

* शोधकर्ता, अतिथि सहायक प्राध्यापक, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
** पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

2.4, कनाडा 2.3, डेनमार्क 2.0, यू.एस.ए. 2.5 और आस्ट्रेलिया में 2.9 थी, जो घटकर 1995 में क्रमशः फ्रांस 1.9, जर्मनी 1.7, इटली 1.2, जापान 1.5, सिंगापुर 1.7, यूनाईटेड किंगडम 1.7, कनाडा 1.7, डेनमार्क 1.8, यू.एस.ए. 2.1 और आस्ट्रेलिया में 1.9 हो गयी थी। स्पष्ट है कि विकासशील देशों की प्रजनन दर 1995 में भी विकसित देशों के वर्ष 1970 के स्तर से चीन, श्रीलंका एवं ब्राजील को छोड़कर अधिक रही है। अतः विकासशील देशों के लिए उच्च प्रजनन दर गंभीर समस्या है।

थामसन एवं लिविस के शब्दों में ''महिलाओं की प्रजननता हमेशा से ही सभी लोगों के लिए महत्वपूर्ण विचारणीय मुद्दा रही है।'' "The fertility of women has always been a matter of vital concern to the all people."

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना 1 नवम्बर 2000 को हुई थीं इस राज्य का निर्माण अविभाजित मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के तीन प्रशासकीय संभाग रायपुर, बिलासपुर एवं बस्तर थे। वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य में 05 प्रशासकीय संभाग- रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर, सरगुजा एवं बस्तर है और इनमें 27 जिले है। छत्तीसगढ़ राज्य का 43 प्रतिशत भूभाग वनाच्छादित एवं विपुल खनिज संपदा से सम्पन्न तथा कम जन घनत्व वाला प्रदेश है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की जनसंख्या 2.55 करोड़ रही है। जनसंख्या की दृष्टि से यह देश का 16वां बड़ा राज्य है। राज्य में सकल लिंगानुपात 991 (ग्रामीण क्षेत्र में 1001 एवं शहरी क्षेत्र में 956) है। राज्य की साक्षरता दर 70.3 प्रतिशत है। इसमें पुरूष साक्षरता दर 81.45 प्रतिशत जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 60.59 प्रतिशत है। राज्य में शिशु मृत्यु दर वर्ष 2000 में प्रति हजार 77 थी जो घटकर वर्तमान में 46 है। प्रजननता का विश्लेषण हमने अविभाजित मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के लिए वर्ष 1981 से 1991 की अवधि के लिए किया है। जबकि वर्ष 2017 तक का विश्लेषण राष्ट्रीय परिवार एवं स्वास्थ्य सर्वेक्षण एक (1992-93) द्वितीय (1996-98), तृतीय (2001-03) एवं चतुर्थ (2013-15) के आधार पर किया है। प्रजननता के विभिन्न माप सूत्रों का विश्लेषण किया गया है-

अध्ययन का उद्देश्य- इस शोध विश्लेषण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. अध्ययन अवधि में छत्तीसगढ़ राज्य में प्रजननता की प्रवृत्ति को ज्ञात करना।
2. प्रजननता को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करना।
3. प्रजननता को नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त सुझाव देना।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के जिलेवार सामाजिक आर्थिक विकास संकेतक आर्थिक एवं सांख्यिकीय संचालनालय से एकत्रित किए गये है। प्रजननता संबंधी आंकड़े विशेषकर जिलों के संदर्भ में जनगणना 1981 एवं 1991 से एकत्रित किए गये है। आंकड़ों के विश्लेषण के लिए अंकगणितीय माध्य, प्रमाप विचलन, विचलन गुणांक, सहसंबंध मैट्रिक्स तथा बहुगुणीय प्रतिपगमन गुणांक का प्रयोग किया गया है। प्रजननता का विश्लेषण करने के लिए निम्न चरों का प्रयोग किया गया है। प्रजननता दर (आश्रित चर (y) के रूप में तथा स्वतंत्र चर (कारकों के रूप में) शिशु मृत्यु दर (x_1), स्त्रियों में विवाह की आयु (x_2), प्रति व्यक्ति आय (x_3), स्त्री साक्षरता (x_4), स्त्री श्रम सहभागिता दर (x_5), नगरीकरण (x_6), खाद्यान्न उत्पादन (x_7)

एवं विवाहित महिलाओं का प्रतिशत (x_8)। विश्लेषण के पूर्व प्रजननता दर का अभिप्राय एवं इसे मापने के सूत्रों को परिभाषित किया गया है।

प्रजननता का अर्थ–

प्रजननता का अभिप्राय किसी स्त्री या उसके समूह द्वारा समयावधि (15 से 49) वर्ष में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविकता से है। विश्व बैंक ने स्त्रियों की प्रजननता की गणना प्रतिस्त्री 15 से 49 वर्ष की आयु वर्ग में करके आयु विशिष्ट प्रजनन दर एवं सकल प्रजनन दर की गणना की है।

सामान्य प्रजनन दर (General Fertility Rate)

$$GFR = \frac{B}{Mf\ (15 - 49\ years)} \times 1000$$

यहॉ B (birth) का आशय है कि एक वर्ष में जन्में जीवित बच्चों की संख्या।

Mf – पुनरूत्पादनीय आयु 15 से 49 वर्ष की विवाहित स्त्रियों की संख्या

आयु विशिष्ट प्रजनन दर (Age Specific Fertility Rate)

$$ASFR = \frac{bi\ (x\text{-}y)}{pi\ (x\text{-}y)} \times 1000$$

यहॉ bi (x-y) – आयु विशिष्ट के अंतराल के अंतर्गत महिलाओं के द्वारा वर्ष में जन्में बच्चों की संख्या

pi (x-y) – आयु विशिष्ट अंतराल में विवाहित महिलाओं की संख्या

$$ASFR = \frac{\text{Births in specified age group}}{\text{Mid year women population of that group}}$$

कुल प्रजनन दर (Total Ferlity Rate)

$$TFR = \sum_{i=15}^{49}\left(\frac{bi}{Pi}\right) \times K$$

$$= \sum_{15}^{49} SFR \times i$$

15 से 49 आयु वर्ग के स्त्रियों के आयु विशिष्ट प्रजनन दर का योग

विश्लेषण, निष्कर्ष एवं सुझाव–

तालिका 1.1 में छत्तीसगढ़ के विभिन्न जिलों की वर्ष 1991 की आयु विशिष्ट प्रजनन दर को दिखाया गया है -

तालिका 1.1

छत्तीसगढ़ में जिलेवार आयु, विशिष्ट प्रजनन दर प्रति महिला (वर्ष 1991 में)

आयु वर्ग	रायपुर	दुर्ग	राजनांदगांव	बिलासपुर	रायगढ़	सरगुजा	बस्तर	छ.ग.
15–19	0.144	0.139	0.154	0.135	0.141	0.106	0.148	0.135
20–24	0.236	0.219	0.278	0.228	0.218	0.178	0.221	0.225
25–29	0.185	0.174	0.237	0.193	0.177	0.160	0.188	0.188
30–34	0.119	0.096	0.139	0.142	0.115	0.112	0.137	0.123
35–39	0.066	0.018	0.071	0.082	0.072	0.063	0.085	0.065
40–44	0.037	0.031	0.038	0.047	0.045	0.039	0.052	0.041
45–49	0.019	0.021	0.025	0.032	0.027	0.015	0.032	0.041
योग	0.806	0.698	0.942	0.859	0.795	0.673	0.863	0.804
कुल प्रजनन दर	4.03	3.49	4.71	4.30	3.98	3.37	4.32	4.03
क्रम	4	6	1	3	5	7	2	

तालिका 1.1 से स्पष्ट है कि प्रति महिला उनके संपूर्ण प्रजनन काल 15 से 49 वर्ष की अवधि में छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव जिला में सबसे अधिक प्रजनन दर 0.942 है और सबसे कम प्रजनन दर सरगुजा जिले में 0.673 है। छत्तीसगढ़ के 7 जिलों में प्रति महिला प्रजनन दर का क्रम-प्रथम राजनांदगांव 0.942 द्वितीय बस्तर 0.863, तृतीय बिलासपुर 0. 859, चतुर्थ रायपुर 0.806, पंचम रायगढ़ 0.795, छठवे क्रम दुर्ग 0.698 और सातवें क्रम पर सरगुजा 0.673 है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रति महिला प्रजनन दर 0.804 रही है।

आयु विशिष्ट प्रजनन दर के अंतर्गत महिलाओं में सबसे अधिक प्रजनन दर वर्ष 20-24 वर्ष में रही है। इसके बाद अधिक प्रजनन दर वर्ष 25 से 29 वर्ष की आयु वर्ग एवं 15-19 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं में रहीं है। यह विशेषता छत्तीसगढ़ के साथ सभी 7 जिलों में पायी गयी है।

आयु विशिष्ट प्रजनन दर वर्ष 35-39 से 45-49 वर्ष के अंतर्गत घटती रही है तथा वर्ष 45-49 वर्ष की आयु वर्ग के अंतर्गत प्रजनन दर सबसे कम रही है।

वर्ष 1991 में छत्तीसगढ़ की कुल प्रजनन दर प्रति महिला 4.03 बच्चे रहे है। कुल प्रजनन दर प्रति महिला राजनांदगांव जिले में सबसे अधिक 4.71 रहीं है जबकि सबसे कम 3.37 प्रजनन दर सरगुजा जिले की रही है।

तालिका 1.2

छत्तीसगढ़ में जिलेवार वर्ष 1981 एवं 1991 में प्रति महिला कुल प्रजनन दर

जिला	1981	1991	परिवर्तन
रायपुर	4.70	4.03	− 0.67
दुर्ग	4.50	3.49	− 1.01
राजनांदगांव	5.0	4.71	− 0.29
बिलासपुर	4.70	4.30	− 0.40
रायगढ़	3.80	3.98	+ 0.18
सरगुजा	4.40	3.37	− 1.03
बस्तर	4.70	4.32	− 0.38
छ.ग.	4.54	4.03	− 0.51

तालिका 1.2 में छत्तीसगढ़ एवं इसके विभिन्न जिलों में वर्ष 1981 एवं वर्ष 1991 में कुल प्रजनन दर में हुए परिवर्तन को दिखाया गया है। छत्तीसगढ़ में वर्ष 1981 में सकल प्रजनन दर प्रति महिला 4.54 थी जो घटकर वर्ष 1991 में 4.03 हो गयी। इस प्रकार 10 वर्षों में प्रति महिला प्रजनन दर में 0.51 की कमी आयी है। छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले को छोड़कर सभी जिलों में प्रति महिला प्रजनन दर में कमी आयी है। यह कमी सबसे अधिक सरगुजा जिले में 1.03 की है, जबकि दुर्ग जिले में यह 1.01 की रही है। सबसे कम राजनांदगांव जिले में 0.27 की रही है।

तालिका 1.3

वर्ष 1991 में छत्तीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्र में प्रति महिला आयु विशिष्ट प्रजनन दर

आयु–वर्ग	रायपुर	दुर्ग	राजनांदगांव	बिलासपुर	रायगढ़	सरगुजा	बस्तर	छ.ग.
15–19	0.146	0.139	0.152	0.134	0.140	0.166	0.145	0.146
20–24	0.242	0.232	0.284	0.232	0.116	0.173	0221	0.214
25–29	0.192	0.179	0.244	0.200	0.176	0.158	0.191	0.191
30–34	0.124	0.100	0.145	0.150	0.116	0.115	0.141	0.127
35–39	0.070	0.050	0.078	0.089	0.072	0.064	0.088	0.073
40–44	0.038	0.029	0.040	0.048	0.045	0.036	0.054	0.041
45–49	0.018	0.016	0.026	0.031	0.026	0.014	0.033	0.023
योग	0.830	0.745	0.963	0.884	0.691	0.726	0.873	0.815
क्रम	4	5	1	2	7	6	3	
कुल प्रजनन दर	4.15	3.725	4.815	4.42	3.455	3.63	4.365	4.075

तालिका क्र. 1.3 में वर्ष 1991 में छत्तीसगढ़ क्षेत्र के विभिन्न जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजनन दर को दिखाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ में कुल प्रजनन दर प्रति महिला 4.08 रही थी। जिलेवार सबसे अधिक प्रजनन दर 4.815 राजनांदगांव जिले में थी। इसके बाद द्वितीय एवं तृतीय क्रम में क्रमशः बिलासपुर 4.42 एवं बस्तर 4.365 रही। इसके विपरीत सबसे कम प्रजनन दर रायगढ़ 3.455 एवं 3.63 सरगुजा जिले में रही है।

तालिका 1.4

छत्तीसगढ़ में जिलेवार शहरी क्षेत्रों में प्रति महिला प्रजनन दर (वर्ष 1991)

आयु–वर्ग	रायपुर	दुर्ग	राजनांदगांव	बिलासपुर	रायगढ़	सरगुजा	बस्तर	छ.ग.
15–19	0.132	0.140	0.182	0.143	0.143	0.101	0.197	0.148
20–24	0.208	0.193	0.243	0.204	0.244	0.220	0.224	0.219
25–29	0.158	0.166	0.200	0.161	0.190	0.177	0.140	0.170
30–34	0.101	0.088	0.108	0.102	0.104	0.091	0.089	0.098
35–39	0.049	0.044	0.035	0.050	0.094	0.059	0.072	0.058
40–44	0.035	0.034	0.025	0.045	0.035	0.040	0.003	0.031
45–49	0.020	0.029	0.020	0.035	0.040	0.017	0.001	0.022
योग	0.703	0.694	0.813	0.740	0.850	0.705	0.726	0.746
रेंक	VI	VII	II	III	I	V	IV	
कुल प्रजनन दर	3.515	3.47	4.065	3.70	4.25	3.525	3.63	3.73

तालिका 1.4 में शहरी क्षेत्रों के प्रजनन दर को दिखाया गया है। छत्तीसगढ़ में शहरी प्रजनन दर वर्ष 1991 में 3.73 थी। इस वर्ष सबसे अधिक प्रजनन दर 4.25 रायगढ़ जिले में थी, जबकि सबसे क्रम 3.47 रहीं।

तालिका 1.5 में भारत के राज्यवार वर्ष 2004 एवं वर्ष 2013 से 2016-17 के कुल प्रजननता को दिखायी गयी है। तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2004 में भारत की कुल प्रजननता दर 2.94 थी। जो घटकर वर्ष 2016-17 में 2.11 हो गयी है। इस अवधि में कुल प्रजनन दर में 0.83 की कमी आयी है। वर्ष 2004 में सबसे कम प्रजनन दर केरल में 1.75 प्रति महिला थी और सबसे अधिक उत्तर प्रदेश में 4.46 थी। 27 राज्यों में 16 राज्यों की प्रजनन दर देश के कुल प्रजनन दर से कम और 11 राज्यों की प्रजनन दर अधिक थी। छत्तीसगढ़ की प्रजनन दर 3.33 थी और इसका क्रम 27 राज्यों में 21वॉ रहा है जो बहुत अधिक है।

वर्ष 2016-17 में सिक्किम की प्रजनन दर सबसे कम 1.24 रही, पंजाब 1.61 द्वितीय क्रम पर तथा केरल 1.63 तृतीय क्रम पर रही। सबसे अधिक प्रजनन दर बिहार 3. 34 रही। इसका क्रम 30वॉ रहा। इसके बाद मेघालय 2.91 (29 वा) एवं उत्तरप्रदेश 2. 64 का क्रम 28 वॉ रहा। छत्तीसगढ में प्रजनन दर 2.21 है और इसका क्रम वर्तमान में भी 21 वॉ बना हुआ है। इस अवधि में प्रजनन दर में कमी का मुख्य कारण साक्षरता दर में वृद्धि, परिवार नियोजन के प्रति बढ़ती जागरूकता, महिलाओं के रोजगार एवं कार्यभागिता दर में वृद्धि तथा उच्च एवं उन्नत राज्यों में बढ़ती भ्रूण हत्या में 0-6 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात में कमी प्रमुख रहा है।

तालिका - 1.5 राज्यवार, प्रतिस्त्री उर्वरता दर

S.No.	State/UT	Rank in 2004-2015	क्रम	2013	2014	2015	2016	2017	क्रम	Change 2004-17
1	J & K	2.04	5	1.98	1.7	1.6	2.01	1.97	15	-0.07
2	Tamil Nadu	1.82	2	1.77	1.7	1.6	1.7	1.67	4	-0.15
3	West Bengal	2.25	9	1.64	1.6	1.6	1.81	1.79	7	-0.46
4	Andhra Pt.	2.85	16	2.05	1.8	1.7	1.83	1.80	10	-1.05
5	Delhi	2.36	11	1.78	1.7	1.7	1.74	1.72	5	-0.64
6	Himanchal Pr.	2.13	7	1.99	1.7	1.7	1.91	1.87	12	-0.26
7	Punjab	2.29	10	1.85	1.7	1.7	1.64	1.61	2	-0.68
8	Karnataka	2.38	17	1.93	1.8	1.8	1.86	1.84	11	-0.54
9	Kerala	1.75	1	1.81	1.9	1.8	1.66	1.63	3	-0.12
10	Maharashtra	2.23	8	1.86	1.8	1.8	1.92	1.91	13	-0.32
11	Odisha	2.65	14	2.18	2.1	2	2.12	2.07	16	-0.58
12	Gujrat	2.84	15	2.37	2.3	2.2	2.04	1.94	14	-0.90
13	Haryana	3.02	18	2.24	2.3	2.2	2.13	2.12	19	-0.90
	All India	2.94		2.34	2.3	2.3	2.23	2.11		-0.83
14	Assam	2.95	17	2.36	2.3	2.3	2.20	2.17	20	-0.78
15	Chhattisgarh	3.33	21	2.63	2.6	2.5	2.23	2.21	21	-1.12
16	Jharkhhand	3.50	22	2.77	2.8	2.7	2.57	2.53	24	-0.97
17	Rajasthan	3.70	23	2.86	2.8	2.7	2.40	2.34	22	-1.36
18	Madhya pr.	3.75	24	2.93	2.8	2.8	2.29	2.24	25	-1.51
19	Uttar Pr.	4.46	26	3.16	3.2	3.1	2.72	2.64	30	-1.84
20	Bihar	4.35	25	3.40	3.2	3.2	3.37	3.34	8	-1.01
21	Telangana	2.63	13	1.48	1.8	-	1080	1.78	17	-0.85
22	Uttarakhand	1.91	35	2.27	2	-	2.13	2.11	7	+0.20
23	Goa	1.91	35	1.85	-	-	1.76	1.74		-0.17
24.	Sikkim	2.06	6	1.45			1.24	1.24	1	-0.82

25.	Tripura	-		1.88			1.75	1.73	6	-0.05 (2013)
26	Andhra Pr.	3.22	19.5	2.18			2.14	2.11	7.5	-1.11
27	Mizoram	3.22	19.5	2.65			2.38	2.33	23	-0.89
28	Manipur	-		2.62			2.60	2.55	26	-0.07 (2013)
29	Nagaland	-		2.71			2.68	2.64	27.5	-1.14
30	Meghalay	4.5	27	3.12			3.04	2.91	28	

प्रजनन दर को प्रभावित करने वाले कारकों के अंतर्गत हमने निम्न कारकों को शामिल किया है :-

Y_1 (आश्रित चर) - प्रजनन दर
X_1 (स्वतंत्र चर) - शिशु मृत्यु दर
X_2 (स्वतंत्र चर) - स्त्रियों में विवाह की आयु
X_3 (स्वतंत्र चर) - प्रति व्यक्ति आय
X_4 (स्वतंत्र चर) - स्त्री साक्षरता दर
X_5 (स्वतंत्र चर) - स्त्री सहभागिता दर
X_6 (स्वतंत्र चर) - नगरीकरण
X_7 (स्वतंत्र चर) - खाद्यान्न उत्पादन
X_8 (स्वतंत्र चर) - विवाहित महिलाओं का प्रतिशत

तालिका - 1.6

प्रजनन को प्रभावित करने वाले कारकों का सहसंबंध मैट्रिक्स जनगणना 1991

चरों का विवरण	प्रजनन दर	शिशु मृत्यु दर	स्त्रियों में विवा. की आयु	प्रति व्यक्ति आय	स्त्री साक्षरता	स्त्री श्रम सहभागिता	नगरीकरण	खाद्यान्न उत्पादन	विवाहित महिलाओं का प्रतिशत
	(YI)	(XI)	(X2)	(X3)	(X4)	(X5)	(X6)	(X7)	(X8)
प्रजनन दर (प्रति हजार में) (YI)	1.0	−0.047	0.064	0.374	0.145	0.379	0.089	0.046	0.343
शिशु मृत्यु दर (XI)		1.0	−0.135	−0.128	0.256	0.635 **	0.159	0.369	0.157
स्त्रियों में विवाह की आयु (X2)			1.0	−0.273	−0.334	−0.090	−0.709 **	0.131	−0.560 *
प्रति व्यक्ति आय (X3)				1.0	0.186	0.130	0.585	0.148	−0.058
स्त्री साक्षरता (X4)					1.0	0.292	0.331	0.175	0.403
स्त्री श्रम सहभागिता दर (X5)						1.0	0.091	0.564 *	0.155
नगरीकरण (X6)							1.0	0.44	0.399
खाद्यान्न उत्पादन (X7)								1.0	0.183
विवाहित महिलाओं का प्रतिशत (X8)									1.0

* सार्थकता स्तर $P < .05$

** सार्थकता स्तर $P < .01$

तालिका 1.6 से स्पष्ट है कि शिशु मृत्यु दर (X_1) का स्त्री श्रम भागिता दर की आयु (X_5) के साथ सहसंबंध गुणांक 1 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्त्रियों के विवाह

की आयु (X_2) का नगरीकरण (X_6) के साथ सहसंबंध गुणांक ऋणात्मक जो 1 प्रतिशत पर सार्थक है। स्त्रियों के विवाह की आयु (X_2) का विवाहित महिलाओं के प्रतिशत (X_8) का सहसंबंध गुणांक ऋणात्मक है और यह 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्त्री श्रम सहभागिता दर (X_5) का खाद्यान्न के उत्पादन (X_7) के साथ संबंध धनात्मक है, जो 01 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

तालिका क्र. 1.7
प्रतीपगमन गुणांक

Source	SS	df	MS	F	P
Total	18.18099375	15			
Regression	16.624164165	8	2.0780205206	9.3434398869	.0041**
X1	0.0398817356	1	0.0398817356	0.179320931	.06847NS
X2	0.061165681	1	0.061165681	0.2750203175	.6162NS
X3	2.9965108113	1	2.996510113	13.47326379	.0080**
X4	0.3152448904	1	0.3152448904	1.4174410954	.2726NS
X5	3.1645086575	1	3.1645086575	14.228635434	.0070**
X6	0.598052951	1	0.5958052251	2.6789297332	.1457NS
X7	1.0226634716	1	1.0226634716	4.5982195926	0.0692NS
X8	8.4283836223	1	8.4283836223	37.896688189	.0005***
Error	1.5568295853	7	0.2224042265		

प्रजनन दर पर इन्हीं कारकों का प्रमाण ज्ञात करने के लिए हमने बहुगुणीय प्रतिगमन गुणांक का विश्लेषण किया है। तालिका 1.7 से स्पष्ट है कि त2 का मूल्य 0. 914 है। इससे इंगित होता है कि इन कारकों का संयुक्त प्रभाव प्रजनन दर (Y_1) पर 91 प्रतिशत है, जो एक प्रतिशत स्तर पर सार्थक है। इन कारकों में शिशु मृत्यु दर (ग1), स्त्रियों में विवाह की आयु (X_2), प्रति व्यक्ति आय (X_3), स्त्रियों में साक्षरता दर (X_4), स्त्री श्रम सहभागिता दर (X_5), नगरीकरण (X_6), खाद्यान्न उत्पादन (X_7) एवं विवाहित महिलाओं का प्रतिशत (X_8) सभी 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

निष्कर्ष– उपर्युक्त विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए है-

प्रथम- छत्तीसगढ़ में प्रजनन की दर ऊंची है, यद्यपि इसमें कमी आयी है,किन्तु अभी भी यह राज्य में बढ़ती हुई जनसंख्या का उत्तरदायी घटक है।

द्वितीय- छत्तीसगढ़ का प्रजनन दर का अखिल भारतीय स्तर पर राज्यों के बीच क्रम (Rank) वर्ष 2004 एवं वर्ष 2016-2017 दोनों में 21 वॉ बना हुआ है।

तृतीय- छत्तीसगढ़ के विभिन्न जिलों के बीच प्रजनन दरों में विचरण गुणांक बहुत कम है अर्थात उनके बीच परिवर्तन की दरों में बहुत कम अंतर है।

चतुर्थ- वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार छत्तीसगढ़ में सरगुजा जिला में सबसे कम प्रजनन दर है, क्योंकि सबसे अधिक प्रजनन दर राजनांदगांव में है। प्रजनन दर में सबसे अधिक गिरावट सरगुजा जिले में आयी है।

पंचम- आयु विशिष्ट प्रजनन दर सबसे अधिक आयु पूर्ण 20-24 वर्ष में हो रही है। इसके बाद आयु 25 से 29 वर्ष में हो रही है।

छठवॉ- प्रजनन दर आयु वर्ग 35-39 से घटती जाती है और आयु वर्ग 45-49 में सबसे कम रही है।

सातवॉं- छत्तीसगढ़ में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजनन दर ऊंची है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह कम है।

आठवॉं- शिशु मृत्यु दर (X_1) का स्त्री श्रम सहभागिता दर (X_5) के साथ, स्त्रियों के विवाह की आयु (X_2) का नगरीकरण (X_6) एवं स्त्रियों की विवाह की आयु (X_2) का विवाहित महिलाओं के प्रतिशत के साथ सहसंबंध सार्थक रहा है।

नवॉं- प्रजनन दर के प्रभावित करने वाले कारकों में सभी कारक सार्थक है।

सुझाव- छत्तीसगढ़ में प्रजनन दर को कम करने के लिए लोगों में जागरूकता में वृद्धि की जाय। इसके लिए महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि की जाय। वर्तमान में पुरूषों एवं स्त्रियों की साक्षरता दर में 16 प्रतिशत का अंतराल है। इसे कम करने को प्राथमिकता दी जाय। विशेषकर अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं में साक्षरता दर अत्यंत कम है। इसमें वृद्धि करने के लिए इन क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना की जाय, शिक्षकों की नियुक्ति की जाय। महिलाओं की विवाह आयु में वृद्धि की जाय, विशेषकर महिलाओं के लिए भी विवाह की आयु पुरूषों के बराबर 21 वर्ष की जाय। लड़के एवं लड़कियों में भेद की प्रवृत्ति को समाप्त किया जाय। परिवार नियोजन को बढ़ावा दिया जाय। दो बच्चों के प्रति परिवार को आदर्श एवं अनिवार्य किया जाय। लड़कियों को रोजगार में प्राथमिकता देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाय। स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार एवं सुधार कर जीवन प्रत्याशा आयु में वृद्धि की जाय।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. World Bank Indicators 1997
2. Statewise Total Fertility Rates in India 2017
3. Age specific & Total Fertiliy Rates from NFHS-1, NFHS-2 and the SRS by residence India.
4. Demography - Thamson & Levis

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार का अध्ययन

* अर्चना गोमास्ता
** कविता गर्ग

सारांश– *प्रस्तुत शोध का उद्देश्य महाविद्यालयीन एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के रुप में रायपुर शहर के शासकीय और अशासकीय महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत 600 विद्यार्थियों जो इन उभय संगठनों के सदस्य है, को गैर अनुपातिक स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श द्वारा चयनित किया गया है। उपकरण के रुप में जीवन कौशल के आयामों पर आधारित स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग कर प्रदत्त संकलन किया गया। प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण* $2\times2\times2$ *फैक्टोरियल डिजाइन का प्रयोग कर प्रसरण विश्लेषण अनोवा (*ANOVA F-Ratio*) द्वारा परिणाम प्राप्त किया गया। इस अध्ययन से यह परिणाम प्राप्त हुआ कि जीवन कौशल व्यवहार के संदर्भ में शासकीय महाविद्यालयों के विद्यार्थी अशासकीय महाविद्यालयों के विद्यार्थियों से श्रेष्ठ एवं एन.सी.सी. के विद्यार्थी एन.एस.एस. के विद्यार्थियों से श्रेष्ठ एवं उच्च पाए गए तथा लिंग के संदर्भ में कोई अंतर नहीं पाया गया।*

मुख्य शब्द– एन.सी.सी., एन.एस.एस., जीवन कौशल

प्रस्तावना– किसी भी राष्ट्र के युवा उस राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य सम्पत्ति और धरोहर होते हैं। वे राष्ट्र के भविष्य निर्माता, नेतृत्वकर्ता, संचालनकर्ता, विकास के प्रतीक, उत्साही और ऊर्जा के स्त्रोत होते हैं। शिक्षा का उद्देश्य क्या केवल किताबी ज्ञान देना या नौकरी के द्वार तक पहुँचाने का जरिया रह गया है। वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगींण विकास कर उसे सफलतापूर्वक जीवन जीने योग्य बनाना है। जब युवा भटकाव के रास्ते पर जाने लगे तो सम्पूर्ण समाज का दायित्व है कि वो उन्हें सही रास्ते पर लाकर देश समाज व परिवार के प्रति निष्ठावान बनाए। विद्यार्थियों में निहित विभिन्न मानवीय गुणों जैसे नियमितता, आत्म नियंत्रण, कर्तव्य बोध, सेवा भावना, उत्तरदायित्व की भावना को उभारने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में कुछ उभय संगठन जैसे एन.सी.सी., एन.एस.एस, स्काउट, गाइड आदि लगातार कार्यरत है जिनका उद्देश्य युवा ऊर्जा को समाज और राष्ट्र सेवा में उपयोग करना है। राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का अटल विश्वास था कि जब तक युवा वर्ग को उनकी जिम्मेदारी का एहसास नहीं कराया जाएगा तब तक उनका शिक्षित

* शोधार्थी, सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग) दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
** सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग) कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छ.ग.)

होना निरर्थक है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इन उभय संगठनों को विद्यालय व महाविद्यालय स्तर पर स्थान दिया गया है। शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार ''भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। शिक्षा का वास्तविक एवं आदर्श दायित्व है कि वह छात्रों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रखें। शिक्षा ऐसी हो जो जीवन कौशल व सामाजिक मूल्यों से जुड़ी हुए हो। जीवन कौशल जैसे स्वजागरुकता, परानुभूति, तार्किक सोच, रचनात्मक सोच, निर्णय क्षमता, समस्या निवारण, प्रभावी सम्प्रेषण, अन्तर्वैयक्तिक संबंध, तनाव का सामना करना, भावना पर नियंत्रण पाना व उनसे जोड़ने वाली शिक्षा दी जाए। मूल्य आधारित शिक्षा सभी प्रकार की कट्टरता, दुर्भावनाओं, हिंसा, समस्याओं आदि से लड़ने में मद्दगार साबित होगी। महात्मा गांधी (1933) के अनुसार ''सही शिक्षा तो छात्र-छात्राओं में अंतर्निहित सर्वोत्तम गुणों को प्रकाशित करना है। केवल अव्यवस्थित और अवांछित सूचनाएँ विद्यार्थियों के दिमाग में भर देने से ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह तो उनके मन पर निष्प्राण बोझ बनकर उनकी समग्र मौलिकता को नष्ट कर देता है और उन्हें यंत्रवत बना देता है। क्रोनिन (1996) ने अपने अध्ययन में पढ़ने में असमर्थ बच्चों के लिए जीवन कौशल पाठ्यक्रम एवं आधुनिक साहित्य का पुनरावलोकन कर भावी अनुसंधान के लिए सुझाव दिए।

फिट्जपेट्रिक (2005) ने अध्ययन के निष्कर्ष में जीवन कौशल में दीर्घ कालीन प्रभाव सदस्यता विद्यमान पाया जिसका मापन किया जा सकता है। किन्सनार्थ एवं अन्य (2007) ने शारीरिक रुप से असक्षम युवकों के जीवन में स्वतंत्र रुप से कार्य करने की तैयारी में जीवन कौशल के प्रशिक्षण के महत्व का निष्कर्ष निकाला। स्टीडली एवं अन्य (2008) ने निष्कर्ष में पाया कि कौशलों व विशेषज्ञों के समूह व परिवार के सदस्यों के साथ सहयोगात्मक रवैया अपनाकर बालकों के सामाजिक कौशल व उनकी शैक्षिक उपलब्धि में विकास किया जा सकता है। कोलोसवा एवं लेसोयो (2009) ने किशोरों के जीवन कौशल पर आधारित निष्कर्ष में सरकार को जीवन कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का दायित्व दूरवर्ती व ओपन स्कूल को सौंप देने का निष्कर्ष निकाला। यादव एवं इकबाल (2009) ने जीवन कौशल के प्रशिक्षण से सकारात्मक परिवर्तन लाए जाने का निष्कर्ष निकाला। श्रीकला एवं कुमार (2010) ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में जीवन कौशल द्वारा सकारात्मक परिवर्तन लाकर कक्षा के अंदर के व्यवहार एवं अन्तः क्रिया में इसके प्रभाव को महसूस किया। अपर्णा व राखी (2011) ने अपने निष्कर्ष में शिक्षा पाठ्यक्रम के अंतर्गत जीवन कौशल के शिक्षा को शामिल करने का कहा। अवस्थी एवं चंद्रकुमारी (2012) ने जीवन कौशल शिक्षा को योजनाबद्ध तरीके से लागू करे जिससे बालक का सर्वांगींण विकास हो यह निष्कर्ष निकाला। खेड़ा एवं खोसला (2012) ने जीवन कौशल एवं स्वभावना में सकारात्मक अन्तः सम्बंध का निष्कर्ष निकाला। पंडित (2013) ने समस्त जीवन कौशल क्रियाओं का प्रयोग कर शिक्षक-शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सहभागिता को बढ़ाने का निष्कर्ष निकाला। सरकार एवं मार्गेज (2015) ने उदारता कौशल के विकास में एन.सी.सी. की भूमिका के अध्ययन में यह निष्कर्ष पाया जीवन के हर क्षेत्र में आत्मविश्वास, सक्षम नेतृत्व क्षमता, चेतना के विकास, साहसिक अभियान द्वारा चेतना जागृत करने हेतु एन.सी.सी. का प्रशिक्षण को अनिवार्य करने का निष्कर्ष निकाला।

संबंधित शोध सभीक्षा से स्पष्ट होता है कि एन.सी.सी. और एन.एस.एस. के विद्यार्थियों के साथ उपयुक्त चर जीवन कौशल के मध्य अल्प शोध हुए है। प्रस्तुत अध्ययन इस कमी को कुछ हद तक पूरा करने में सहायक होगा एवं शैक्षिक एवं व्यावहारिक प्रश्नों के समाधान प्रस्तुत करेगा। प्रस्तुत अध्ययन में शोध से प्राप्त परिणाम शिक्षकों, विद्यालयों, विद्यार्थियों व शिक्षा नीति-निर्देशकों के मार्ग दर्शन के लिए महत्वपूर्ण होगा।

अध्ययन का उद्देश्य–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह, एवं लिंग का मुख्य एवं अन्तःक्रियात्मक प्रभाव ज्ञात करना ।

परिकल्पना–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह एवं लिंग का स्वतंत्र एवं अन्तःक्रियात्मक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

परिसीमा–

अध्ययन के लिए रायपुर शहर के शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालय में अध्ययनरत स्नातक स्तर के विद्यार्थी जो एन.सी.सी. और एन.एस.एस. में हैं, लिया गया है।

शोध की विधि–

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श–

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु गैर अनुपातिक स्तरीकृत याद्धच्छिक न्यादर्श द्वारा 600 विद्यार्थियों का चयन किया गया। जिसमें 300 एन.सी.सी. एवं 300 एन.एस.एस. के छात्र-छात्राओं यथा शासकीय महाविद्यालयों के 150 एन.सी.सी. के छात्र-छात्राओं व 150 एन.एस.एस. के छात्र-छात्राओं, अशासकीय महाविद्यालयों के 150 एन.सी.सी. के छात्र-छात्राओं. व 150 एन.एस.एस. के छात्र-छात्राओं को लिया गया।

उपकरण–

प्रस्तुत अध्ययन में शोध कर्ता द्वारा जीवन कौशल के दस आयामों पर आधारित स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है जिसमें 10 आयाम यथा स्वजागरुकता, परानुभूति, तार्किक सोच, रचनात्मक सोच, निर्णय क्षमता, समस्या निवारण, प्रभावी सम्प्रेषण, अंतर्वैयक्तिक संबंध, तनाव का सामना करना एवं भावना पर नियंत्रण पाना हैं। यह परीक्षण पूर्णतः विश्वसनीय तथा वैध पाया गया जिनके सहसम्बंध गुणांक .79 से लेकर .82 तक पाए गए जो सार्थक थे।

सांख्यिकी प्रयोग–

प्रस्तुत शोध-अध्ययन में शून्य परिकल्पना से प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण, मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर अंतःक्रियात्मक परिकल्पना हेतु प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण $2 \times 2 \times 2$ फैक्टोरियल डिजाइन का प्रयोग कर प्रसरण विश्लेषण अनोवा (ANOVA F-Ratio) द्वारा प्राप्त किया गया।

परिणाम एवं विवेचना–

तालिका क्रमांक-1

सम्पूर्ण परीक्षण पर प्रसरण विश्लेषण का सारांश

क्रमांक	प्रसरण का स्त्रोत	वर्गों का योग	स्वतंत्रता की कोटि	मध्यमान वर्ग	एफ अनुपात
1	महाविद्यालय प्रकार (A)	6091.31	1	6091.31	5.26*
2	छात्र संगठन समूह (B)	11477.81	1	11477.81	9.90**
3	लिंग (C)	345.42	1	345.42	0.30 NS
4 (i)	अन्त:क्रियात्मक प्रभाव प्रथम कम				
(a)	A x B	461.25	1	461.25	0.40 NS
(b)	A x C	222.35	1	222.35	0.19 NS
(c)	B x C	659.93	1	659.93	0.57 NS
(ii)	द्वितीय कम A x B x C	2576.20	1	2576.20	2.22 NS
5	त्रुटि	686137.00	592	1159.02	
	संशोधित योग	707971.27	599		

*=0.05 स्तर तक सार्थक ** = 0.01 स्तर पर सार्थक NS= सार्थक नहीं

स्वतंत्र प्रभाव–

महाविद्यालय प्रकार–

तालिका का सावधानी पूर्वक निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों के महाविद्यालय प्रकार जीवन कौशल व्यवहार पर सार्थक प्रभाव डालती है। क्योंकि इस कारक के लिए एफ का मान 5.26 स्वतंत्रता की कोटि [df=1/592, 0.05 स्तर पर सार्थक है इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के महाविद्यालय प्रकार जीवन कौशल व्यवहार को सार्थक रुप से प्रभावित करता है। अतः परिकल्पना महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर महाविद्यालय प्रकार का स्वतंत्र प्रभाव नहीं पाया जाएगा, अस्वीकृत होती है।

पुनः यह ज्ञात करने के लिए कि क्या महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के महाविद्यालय प्रकार पर जीवन कौशल व्यवहार घनात्मक रुप से प्रभाव डालती है? इस उद्देश्य हेतु महाविद्यालय प्रकार पर जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों के मध्यमानों की तुलना की गई। मध्यमान मूल्यों को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 2

महाविद्यालय प्रकार के आधार पर जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों के मध्यमान मूल्य

महाविद्यालय प्रकार	N	M
शासकीय	300	339.46
अशासकीय	300	333.08

उपरोक्त तालिका में प्रदर्शित शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार के प्राप्तांकों के मध्यमान मूल्यों से स्पष्ट होता है कि शासकीय

महाविद्यालय के विद्यार्थियों का जीवन कौशल व्यवहार (M=339.46) अशासकीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार (M=333.087) से सार्थक रुप से श्रेष्ठ है। अर्थात शासकीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों में जीवन कौशल व्यवहार अशासकीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ पाए गए।

छात्र संगठन समूह–

प्रसरण विश्लेषण तालिका से स्पष्ट होता है कि छात्र संगठन समूह का जीवन कौशल व्यवहार पर सार्थक प्रभाव पड़ता है क्योंकि इस व्यवहार के लिए एफ का मान 9.90 स्वतंत्रता की कोटि (कत्रि1/592) 0.01 स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छात्र संगठन समूह का प्रकार विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार को सार्थक रुप से प्रभावित करता है अतः परिकल्पना महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार के प्राप्तांकों पर छात्र संगठन समूह का स्वतंत्र प्रभाव नहीं पाया जाएगा, अस्वीकृत होती है।

पुनः यह ज्ञात करने के लिए कि छात्र संगठन समूह विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर धनात्मक रुप से प्रभाव डालती है? इस हेतु छात्र संगठन समूह के दो स्तरों पर जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों के मध्यमानों की तुलना की गई। मध्यमान मूल्यों को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 3

छात्र संगठन समूह के आधार पर जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों के मध्यमान मूल्य

छात्र संगठन समूह	N	M
एन.सी.सी.	300	340.6475
एन.एस.एस.	300	331.90

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि एन.सी.सी. के महाविद्यालयीन विद्यार्थियों का जीवन कौशल व्यवहार (M=340.6475) एन.एस.एस. के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार (M=331.90) की अपेक्षा सार्थक रुप से श्रेष्ठ है।

लिंग–

लिंग का महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस हेतु प्रसरण विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि लिंग कारक के लिए एफ का मान 0.30 स्वतंत्रता की कोटि (कत्रि1/592) 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार में लिंग के आधार पर स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है अतः परिकल्पना महाविद्यालयीन स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर लिंग का स्वतंत्र प्रभाव नहीं पाया जाएगा, स्वीकृत होती है।

तालिका क्रमांक 4

लिंग के आधार पर जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों के मध्यमान मूल्य

लिंग	N	M
छात्र	300	335.515
छात्रा	300	337.0325

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि छात्राओं का जीवन कौशल व्यवहार (M=337.0325) छात्रों के जीवन कौशल व्यवहार (M=335-515) की अपेक्षा सार्थक रुप से श्रेष्ठ हैं।

अंत:क्रियात्मक प्रभाव–

द्विकारक अन्यान्योश्रित प्रभाव–

महाविद्यालय प्रकार x छात्र संगठन समूह–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर उनके महाविद्यालय प्रकार एवं छात्र संगठन समूह के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन करने हेतु तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि महाविद्यालय प्रकार एवं छात्र संगठन समूह का संयुक्त प्रभाव विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर सार्थक रुप से नहीं पड़ता है, क्योंकि इन कारकों के संयुक्त प्रभाव के लिए एफ का मान 0.40 (1/592), 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि महाविद्यालय प्रकार एवं छात्र संगठन समूह के विभिन्न स्तर विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार में उत्पन्न विचलनशीलता के लिए उत्तरदायी नहीं है अत: परिकल्पना महाविद्यालयीन स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर महाविद्यालय प्रकार एवं छात्र संगठन समूह का अंत:क्रियात्मक प्रभाव नहीं पाया जाएगा, स्वीकृत होती है।

महाविद्यालय प्रकार x लिंग–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर उनके महाविद्यालय प्रकार एवं लिंग के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन करने हेतु तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि महाविद्यालय प्रकार एवं लिंग का संयुक्त प्रभाव विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर सार्थक रुप से नहीं पड़ता है, क्योंकि इन कारकों के संयुक्त प्रभाव के लिए एफ का मान [0.19 (1/592), 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि महाविद्यालय प्रकार एवं लिंग के मध्य कि अंत:क्रिया विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार में उत्पन्न विचलनशीलता के लिए उत्तरदायी नहीं है अत: परिकल्पना महाविद्यालयीन स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर महाविद्यालय प्रकार एवं लिंग का अंत:क्रियात्मक प्रभाव नहीं पाया जाएगा, स्वीकृत होती है।

छात्र संगठन समूह x लिंग–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर उनके छात्र संगठन समूह एवं लिंग के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन करने हेतु तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि छात्र संगठन समूह एवं लिंग का संयुक्त प्रभाव विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर सार्थक रुप से नहीं पड़ता है, क्योंकि इन कारकों के संयुक्त प्रभाव के लिए एफ का मान [0.57 (1/592), 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है, इससे स्पष्ट होता है कि छात्र संगठन समूह एवं लिंग के विभिन्न स्तर विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार में उत्पन्न विचलनशीलता के लिए उत्तरदायी नहीं है अत: परिकल्पना महाविद्यालयीन स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर छात्र संगठन समूह एवं लिंग का अंत:क्रियात्मक प्रभाव नहीं पाया जाएगा, स्वीकृत होती है।

त्रिकारकीय अन्यान्योश्रित प्रभाव–

महाविद्यालय प्रकार x छात्र संगठन समूह ग लिंग–

महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर तीनों कारकों यथा महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह एवं लिंग का क्या संयुक्त प्रभाव पड़ता है ? इस अध्ययन हेतु तालिका क्रमांक 1 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार पर तीनों स्वतंत्र चरों महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह एवं लिंग की त्रि-पक्षीय परस्पर क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि इन कारकों के संयुक्त प्रभाव के लिए प्राप्त एफ का मान [2.25 (1/592), 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह एवं लिंग विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार में उत्पन्न विचलनशीलता के लिए उत्तरदायी नहीं है अतः परिकल्पना महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के जीवन कौशल व्यवहार प्राप्तांकों पर महाविद्यालय प्रकार, छात्र संगठन समूह एवं लिंग का अंतःक्रियात्मक प्रभाव नहीं पाया जाएगा, स्वीकृत होती है।

शैक्षिक उपयोगिता-

शिक्षा के क्षेत्र में जीवन कौशल विकास के लिए कक्षा-शिक्षण के अलावा छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु एन.सी.सी. तथा एन.एस.एस. की योजनाओं को लागू किया गया है। दोनों ही योजनाओं का मुख्य उद्देश्य छात्रों में आत्मविश्वास, सेवाभाव, कर्तव्यबोध, जीवन जीने की कला, निडरता, उत्तरदायित्व की भावना, आत्म नियंत्रण, मानवता की सेवा आदि जीवन कौशलों का विकास करना है। यद्यपि दोनों ही योजनाओं का क्रियान्वयन तरीका अलग-अलग है तथापि मूल उद्देश्य के फलस्वरुप प्रस्तुत शोध में एन.सी.सी. के विद्यार्थी एन.एस.एस. विद्यार्थियों की तुलना में जीवन कौशल व्यवहार के संदर्भ में उच्च पाए गए। अतः यह अध्ययन युवा वर्ग के साथ जिम्मेदार नागरिकों के लिए भी शिक्षा का माध्यम बनेगा। जीवन व्यवहार में कौशल परम आवश्यक है। एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. के साथ जीवन कौशल की शिक्षा को शैक्षणिक पाठ्यक्रम में अनिवार्य रुप से सम्मिलित किया जाना चाहिए।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. Awasthi, S. and Kumari, C. (2012). 'The Need Of Life Skills Among Adolescents'. *Indian Educational Review*,50(1),92-103.
2. Aparna and Rakhee (2011). 'Importance Of Life Skills Education in Curriculam'. cited in ///c:users/r... bag/desktop.
3. Cronin, M.E. (1996). 'Life Skills Curricula For Students With Learning Disabilities : 'A Review Of The Literature'. *Journal Of Learning Disability* ,29(1), 53-68.
4. Fitzpatric, C. (2005). 'Life Skills Development In Youth : Impact Research In Action' *Journal Of Extension,* 43(3), cited in www.joe-org.
5. Khera and Khosla (2012). 'The Relastionship Between Self Concept and Core Life Skills Of Adolescents'. Cited in www.joe-org.
6. Kingsnorth, S. (2007). 'Adolescent Health'.41(4), 323-32. cited in www-ncbi.n/m – bih.gov,googleweblight.com.
7. NCF (2000). 'National Curriculum Framwork'. National Council of Educational Research and Training, New Delhi, Shree Arvindo Marg, Vajeepura.
8. Pandit, M.S. (2013). प्रशिक्षण अधिगम प्रक्रिया में जीवन कौशल शिक्षण की उपयोगिता. *Edu Junction*, 3(3),33-35.
9. Sarkar, U. and Margaj, S.M. (2015). 'Role Of National Cadet Corps In Developing Soft Skills Among Youth In India'. *International Journal Of Scientific & Engineering*

Research.6(11), 1322-1325. cited in http://www.ijser.org.

10. Steedly, K. M., Schwartz, A., Levin, M., and Luke, D. (2008). 'Social Skills and Acadamic Achievement'. *(NICHCY) Evidence For Education*.111 (11). cited in www.nichcy.org.
11. Srikala, B. and Kumar, V. (2010). 'Emparting Adolescents With Life Skills Education In School – School Mental Health Program'. *Indian Journal Of Psychiatry.* cited in www.ncbi-n/m min.gov.
12. Yadav and Iqbal (2009). 'The Impact Of Like Skill Learning On Self Esteem, Adjustment and empathy among adolescents'.cited in file : ///c:users/r... bag/desktop.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

युवाओं में जनसंचार तथा आधुनिकता के प्रतिमान (दिल्ली के नगरीय क्षेत्रों के विशेष सन्दर्भ में)

* रेणु वर्मा

सारांश– *आधुनिक जनसंचार माध्यम प्रमुख रूप से शिक्षा, सूचना, मनोरंजन, उपभोक्ता व्यवहार और सामाजीकरण के रूप में व्यापक और विस्तृत है। आज न जाने कितने ही चैनलों और कार्यक्रमों के माध्यम से टेलीविजन ने संचार को वास्तविकता के समांनातर ला खड़ा किया है। वर्तमान मे संचार माध्यम आधुनिक समाज की धुरी है जिसे जनसंचार के रूप में युवाओं ने प्रस्तुत अध्ययन में सहर्ष अभिव्यक्त किया है। दिल्ली के युवा विद्यार्थियों के नजरिए से देखा जाए तो अधिकतर मनोरंजन खेल और समाचार खबरों से सम्बन्धित चैनल देखना पसन्द करते है।देश और अन्य मुद्दों की बात करें तो आज का आधुनिक युवा राजनीति में क्या हो रहा है और सामाजिक परिवर्तनों को लेकर भी सजग एवं जागरूक है क्योंकि इनका मानना है कि टेलीविजन की खबरे सही और विश्वसनीय है। दिल्ली के युवा विद्यार्थी आज टेलीविजन को हाथों–हाथ लेते है अर्थात् आज टेलीविजन, मोबाइल और कम्प्यूटर–इंटरनेट के माध्यम से इनके हाथों में है जो कि इन्हें आधुनिक और सक्रिय दोनों रूपों में विकसित करता है।*

मुख्य शब्द– विद्यार्थी, आधुनिक, जनसंचार, दूरदर्शन, टेलिविजन चैनल, सामाजिक धारा।

परिचय– आधुनिकता की इस दौड़ में युवा पीढ़ी संचार प्रक्रिया में जनसंचार साधनों का बड़े ही महत्वपूर्ण ढंग से प्रयोग करती है। आदिकाल से ही समाज में परिवर्तन लाने तथा संरचना के लिए संचार की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि हम समाज को सामाजिक संबंधों की व्यवस्था के रूप में स्वीकार करे तो यह कहना पड़ेगा कि बिना संचार के यह व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। वर्तमान में जनसंचार माध्यम प्रमुख रूप से शिक्षा, सूचना, मनोरंजन, उपभोक्ता व्यवहार और सामाजीकरण के रूप में व्यापक और विस्तृत है। आज न जाने कितने ही तकनीकि साधनों, चैनलों और कार्यक्रमों के माध्यम से टेलीविजन ने संचार को वास्तविकता के समानांतर ला खड़ा किया है। वर्तमान में संचार माध्यम आधुनिक समाज की धुरी है जिसे जनसंचार के रूप में युवाओं ने प्रस्तुत शोध द्वारा सहर्ष अभिव्यक्त किया है।इसलिए ये जानना बहुत रोचक है कि कितने बड़े पैमाने पर इनका विस्तार हुआ है और ये किन हाथों में है।

रेडियों, सिनेमा, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाईल फोन, पत्रिकाएं और पुस्तके जनसंचार के प्रमुख साधन है। इन माध्यमों ने आज सारे विश्व को अपने प्रभाव में ले रखा है इसके माध्यम से जिस किसी भी प्रकार का संचार होता है, अधिकांश वर्तमान

* शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जनमानस के लिए यही सूचना ज्ञान और मनोरंजन है। जनसंचार के अनेक रूपों के अनेक माध्यमों, जिसमें टेलीविजन, रेडियों, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं और टेलीफोन आदि है वहीं दूसरी तरफ फिल्म, इंटरनेट, एनिमेशन, गेमिंग, विज्ञापन आदि भी जनंसचार के आधुनिक स्वरूप है। पहले यहां मनोरंजन के क्षेत्र में सिर्फ दूरदर्शन नाम का ही चैनल हुआ करता था, वह अब देशभर में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर हजार से भी ज्यादा न्यूज चैनल और मनोरंजन चैनल हमारे बीच में काम कर रहे है। अगर बड़े परिप्रेक्ष्य में देखें तो टेलीविजन आधुनिक युवा समाज में परिवर्तन के साथ-साथ बड़ी उपलब्धियों और अवसरों को इनके और हमारे दरवाजे पर लाकर खड़ा कर दिया है।

आज प्रत्येक व्यक्ति टेलीविजन मीडिया से प्रभावित है और इसका उपयोग युवाओं में विभिन्न स्वरूपों में हो रहा है। आज का युवा टेलीविजन को इंटरनेट के माध्यम से कम्प्यूटर, मोबाईल और लैपटॉप के माध्यम से कही भी-कभी भी इस्तेमाल कर सकता है। आज टेलीविजन हमें बताता है कि हमें क्या पहनना है, क्या खाना है, क्या पीना है और कैसे बातचीज करनी है। जनसंचार माध्यम आज शादी-समारोह, सामाजिक आचार-विचार, व्यक्तिगत व्यवहार, में संपूर्ण परिवर्तन ला रहा है। आधुनिक परिपेक्ष्य में टेलीविजन हमें सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से प्रभावित कर रहा है। हाल ही के दिनों में अनेको ऐसी घटनाएं घटी है जिनसे सीधे तौर पर आमजन का जुड़ाव रहा है, चाहे बाबा रामदेव का पतंजलि उत्पादनों पर विवाद हो, या फिर विजय माल्या द्वारा पैसों के घोटाले का मामला हो या अन्ना हजारे जी का अनशन, वहीं दिल्ली के रेप कांड के बाद युवा क्रांति में जोश भरने और सरकार को नींद से जगाने का भी काम,जनता और टेलीविजन मीडिया ने मिलकर किया है। इस क्षेत्र में अपार संभावनाओं को देखते हुए यह महत्वपूर्ण शोध किये जाने की आवश्यकता है, ताकि दिल्ली के युवाओं की रूचि, महत्वकांक्षाओं और आवश्यकताओं का पता लगाया जा सकें।[1]

सर्वप्रथम सन 1956 में दिल्ली में युनेस्को में एक सम्मेलन के दौरान युनेस्को सभी विकाशील देशों में विकास के लिए टेलीविजन के प्रयोग को प्रोत्साहित कर रहा था[2] सर्वप्रथम 1958 में टेलीविजन स्टूडियों के रिसर्च लेबोरेटरी में ही 16 और 33 मिलीमीटर की फिल्में दिखाने की व्यवस्था की गई। सर्वप्रथम राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सूचना एवं प्रसारण मंत्री के अलावा कुछ अन्य विशिष्ट जनो के घरो में टेलीविजन की सुविधाएं दी गयी।[3] सन् 1993 में एशियाई कंपनी स्टार चैनल शुरू हुआ। 02 अक्टूबर 1992 को जी टेलीविजन और स्टार आधी-आधी साझेदारी वाली कंपनी एशिया टूडे लिमिटेड का गठन किया गया। 1998 में रूपर्ट मार्डोक ने 24 घण्टे का एक समाचार चैनल आरंभ करने का फैसला किया। एन.डी.टी.वी. चैनल शुरू हुआ प्रतिस्पर्धा बढ़ी और दिल्ली में बना सुपर ब्यूरों और पांच राज्यों की राजधानी (लखनऊ, कोलकाता, भोपाल, अहमदाबाद, चैन्नई) में प्रमुख ब्यूरों स्थापित किए गऐ, इसके बाद तो नये चैनलों का तांता ही लग गया और जिसका परिणाम आपके सामने है।

15 सिंतबर 1959 को राजधानी दिल्ली की पार्लियामेंट स्ट्रीट में ''दूरदर्शन'' नाम से शुरू टेलीविजन सेवा का उद्घाटन राष्ट्रपति ''डॉ. राजेन्द्र प्रसाद'' ने किया। कुल 60 मिनट का कार्यक्रम होता जिसमें 40 मिनट के सूचनात्मक कार्यक्रम शेष 20 मिनट का मनोरंजन कार्यक्रम जो सप्ताह में दो दिन मंगलवार और शुक्रवार को ही प्रसारित किये

जाते ये इसी समय एक प्रायोगिक प्रसारण किया गया था इसका नाम ''सोशल एजुकेशन प्रोजेक्ट'' था। टेलीविजन का यह प्रोजेक्ट पूर्णतः सफल रहा था और इसके बाद ही टेलीविजन सेटो के इर्द-गिर्द टेलीविजन क्लबों का गढ़न किया गया जिसें शिक्षा, स्वास्थ्य मनोरंजन संबंधी कार्यक्रमों पर चर्चा-विमर्श किया जाता था। जिस पर समाज-वैज्ञानिक शहरी और ग्रामीण जनता पर पड़ने वाले असर की प्रकृति पर शोध अध्ययन करते थे। इस क्रम में विद्यालयीन बच्चों के कार्यक्रम 3-4 बजे शाम को प्रसारित किये जाते थे। 23 अक्टूबर 1961 को आकाशवाणी ने फोर्ड फांउडेशन के साथ मिलकर दिल्ली के स्कूलों में शैक्षणिक प्रसारण किया जो चार वर्षों तक किया जाता था। इस योजना में कुल 600 स्कूलों में टेलीविजन सेट स्थापित किए गये थे। इस प्रोजेक्ट के रिर्पोट में फोर्ड फाउंडेशन के प्रश्चात अध्येता ''पॉल न्यूरेय' ने अपनी मूल्यांकन रिर्पोट में लिखा कि ''टेलीविजन की मदद से छात्र-छात्रऐं बेहतर और कम समय में सीखते है।[4]

60 के दशक में हरित क्रांति के जनक कृषि ''विज्ञानी डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन'' और प्रसिद्ध वैज्ञानिक ''डॉ. विक्रम साराभाई' की पहल पर देश के पहले कृषि कार्यक्रम ''कषिदर्शन'' की रूपरेखा तैयार की गयी। 2 अक्टूबर 1972 को बंबई (मुंबई) में देश का दूसरा टेलीविजन स्टेशन शुरू हुआ। दूरदर्शन की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि जब कोई प्रसिद्ध फीचर फिल्म अमृतसर दूरदर्शन पर दिखाई जाती थी तो पाकिस्तानी लोग केवल फिल्म देखने के लिए करांची से लाहौर आ जाते थे क्योंकि पाकिस्तानी टेलीविजन पर महिलाओं के नृत्य कार्यक्रमों और अन्य फिल्म आधारित मनोरंजक कार्यक्रमों पर रोक लगी हुयी थी। धीरे-धीरे 1973 में टेलीविजन सेटों की संख्या 160,000 तक पहुंच गई।[5]

सन 1975-1981 का अन्तराल भारतीय टेलीविजन के इतिहास में क्रांति का दौर था। इसी समय भारतीय वैज्ञानिकों ने पहली बार उपग्रह प्रसारण शुरू किया। 1 जनवरी 1976 को दूरदर्शन पर पहली बार विज्ञापनों का प्रसारण शुरू हुआ। 10 अप्रैल 1982 को अमेरिका के ''केप कैनेडी'' से देश का पहला संचार सैटेलाईट इनसेट 1-ए जोड़ा गया जो नाकामयाब रहा, पर अगले ही साल 30 अगस्त को 1-बी उपग्रह छोड़ा गया जो पूर्णता सफल रहा। 15 अगस्त 1982 के दिन लाल किले पर ध्वजारोहण का सीधा रंगीन प्रसारण शुरू हुआ। यही वह दौर था जब रंगीन टेलीविजन सेटों की मांग 90 हजार पहुंच गई थी और 5 जुलाई 1984 को देश का पहला धारावाहिक ''हम लोग'' की शुरूआत हुयी इसकी कुल 156 कड़िया प्रसारित हुयी थी। 1984 में इंदिरा जी के अंतिम संस्कार का सीधा प्रसारण भी किया गया था।[6]

शोध अध्ययन के उद्देश्य एवं उपयोगिता-प्रस्तुत शोध में दिल्ली के नगरीय क्षेत्रों में निवास करने वाले युवाओं के एक महत्वपूर्ण विषय क्षेत्र टेलीविजन माध्यमों द्वारा विभिन्न प्रतिमानो का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के उद्देश्य निम्न प्रकार है :-

1. दिल्ली के युवा विद्यार्थियों में टेलीविजन उपयोग।
2. दिल्ली के युवा विद्यार्थियों में आधुनिक, सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य की मुख्य समस्याओं का समाधन करने में जनसंचार के योगदान का पता लगाना।
3. टेलीविजन संचार माध्यम द्वारा युवा विद्यार्थियों के व्यवहार में आये परिवर्तन का अध्ययन करना।

4. दिल्ली के युवा विद्यार्थियों में आदर्श जनसंचार की छवि का पता लगाना।

आधुनिक जनसंचार माध्यम प्रमुख रूप से शिक्षा, सूचना, मनोरंजन, उपभोक्ता व्यवहार और सामाजीकरण के रूप में व्यापक और विस्तृत है। आज न जाने कितने ही चैनलों और कार्यक्रमों के माध्यम से टेलीविजन ने संचार को वास्तविकता के समांनातर ला खड़ा किया है। वर्तमान मे संचार माध्यम आधुनिक समाज की धुरी है जिसे जनसंचार के रूप में युवाओं ने प्रस्तुत अध्ययन में सहर्ष अभिव्यक्त किया है।

अध्ययन क्षेत्र– दिल्ली एक अति विस्तृत शहर है जो उत्तरी भारत में बसा हुआ है। उत्तर, पश्चिम एवं दक्षिण तीन तरफ से हरियाणा राज्य है जो पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा घिरा हुआ है। यह उत्तर में से रूप नगर से दक्षिण में जोकरी तक फैला है। पश्चिम तक छोर नजफगढ़ से पूर्व में यमुना नदी तक (तुलनात्मक परंपरागत पूर्वी छोर)। वैसे शाहदरा, भजनपुरा, आदि इस के पूर्व छोर होने के साथ ही बड़े बाजारों में भी आते हैं। इनसे लगे निकटवर्ती प्रदेशों में नोएडा, गुड़गांव आदि क्षेत्र भी आते हैं। दिल्ली की भू-प्रकृति बहुत बदलती हुई है। यह उत्तर में समतल कृषि मैदानों से लेकर दक्षिण में शुष्क अरावली पर्वत के आरंभ तक बदलती है। दिल्ली के दक्षिण में बड़ी प्राकृतिक झीलें हुआ करती थी, जो अब अत्यधिक खनन के कारण सूखती चली गई हैं। इनमें से एक है बड़खल झील। यमुना नदी शहर के पूर्वी क्षेत्रों को अलग करती हैं। जो अब यह क्षेत्र यमुना पार का क्षेत्र कहलाता हैं। दिल्ली के भूगोल के दो प्रधान अंग है यमुना सिंचित समतल एवं दिल्ली रिज (पहाड़ी)। अपेक्षाकृत निचले स्तर पर स्थित कृषि हेतु उत्कृष्ट भूमि उपलब्ध कराती है, हालांकि ये बाढ़ संभावित क्षेत्र रहे हैं। ये दिल्ली के पूर्वी छोर हैं और पश्चिमी छोर रिज क्षेत्र है। इसकी अधिकतम ऊंचाई 318 मी. (1043 फीट) तक जाती है। यह दक्षिण में अरावली पर्वत माला से आरंभ होकर शहर के पश्चिमी, उत्तर-पश्चिमी एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों तक फैलें हैं। दिल्ली की जीवन रेखा यमुना नदी हिन्दू धर्म में अति पवित्र नदियों में से एक है। एक अन्य छोटी नदी हिंडन नदी पूर्वी दिल्ली को गाजियाबाद से अलग करती है।

दिल्ली आस-पास के कुछ जिलों के साथ भारत का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र है। इसमें नई दिल्ली सम्मिलित है जो ऐतिहासिक पुरानी दिल्ली के बाद बसा था। यहां केंद्र सरकार की कई प्रशासन संस्थाएं है। औपचारिक रूप से नई दिल्ली भारत की राजधानी है। 1483 वर्ग किलोमीटर में फैला दिल्ली भारत का तीसरा सबसे बड़ा महानगर है। यहां की जनसंख्या लगभग 2 करोड़ 10 लाख है। यहां बोली जाने वाली मुख्य भाषायें हैं : हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, और अंग्रेजी हैं।

दिल्ली का प्राचीनतम उल्लेख महाभारत नामक महापुराण में मिलता है जहां इसका उल्लेख प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के रूप में किया गया है। इन्द्रप्रस्थ महाभारत काल में पांडवों की राजधानी थी। पुरातात्विक रूप से जो पहले प्रमाणित हैं उससे पता चलता है कि ईसा से दो हजार वर्ष पहले भी दिल्ली तथा उसके आस-पास मानव निवास करते थे। मौर्य-काल (ईसा पूर्व 300) से यहां एक नगर का विकास होना आरंभ हुआ। महाराज पृथ्वी राज चौहान के दरबारी कवि 'चंदरबरदाई' की हिंदी रचना ''पृथ्वी राज रासों'' में तोमर राजा अनंगपाल को दिल्ली का संस्थापक बताया गया है। ऐसा माना जाता है कि उसने ही 'लाल-कोट' का निर्माण करवाया था और महरौली के गुप्तकालीन लौह स्तंभ को दिल्ली लाया। दिल्ली में तोमरो का शासनकाल 900-1200 इसवीं तक माना जाता है। 'दिल्ली' या 'दिल्ली का' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उदयपुर में प्राप्त शिलालेखों पर पाया गया। इस शिलालेख का समय 1170 इसवीं निर्धारित किया गया। महाराज पृथ्वीराज चौहान को दिल्ली का अंतिम हिंदू सम्राट माना जाता है।

सन 1206 इसवीं के बाद दिल्ली सल्तनत की राजधानी बनी। इस पर खिलजी वंश, तुगलकवंश, सैयदवंश और लोधी वंश समेत कुछ अन्य वंशो ने शासन किया। ऐसा माना जाता है कि आज की आधुनिक दिल्ली बनने से पहले दिल्ली सात बार उजड़ी और विभिन्न स्थानों पर बसी, जिनके कुछ अवशेष आधुनिक दिल्ली में अब भी देखे जा सकते हैं। दिल्ली के तत्कालीन शासकों ने इसके स्वरूप में कई बार परिवर्तनकिया। मुगल बादशाह हुमायूं ने सरहिंद के निकट युद्ध में अफगानों को पराजित किया था। बिना किसी विरोध के दिल्ली पर अधिकार कर लिया। हुमायूं की मृत्यु के बाद हेमू विक्रमादित्य के नेतृत्व में अफगानों ने मुगल सेना को पराजित कर आगरा व दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। मुगल बादशाह अकबर ने अपनी राजधानी को दिल्ली से आगरा स्थानान्तरित कर दिया। अकबर के पोते शाहजहां 1628-1658 ने सत्रहवीं सदी के मध्य में इसे सातवीं बार बसाया जिसे शाहजहांनाबाद के नाम से पुकारा गया। शाहजहांनाबाद को आम बोलचाल की भाषा में पुराना शहर या पुरानी दिल्ली कहा जाता है। प्राचीन काल से पुरानी दिल्ली पर अनेक राजाओं एवं सम्राटों ने राज्य किया है तथा समय-समय पर इसके नाम में भी परिवर्तन किया जाता रहा था। पुरानी दिल्ली 1638 के बाद मुगल सम्राटों की राजधानी रही थी।[7]

उत्तर पश्चिम दिल्ली- उत्तर पश्चिम दिल्ली भारत में दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र एक प्रशासनिक जिला है। प्रशासनिक तौर पर यह तीन उपविभाजनों, सरस्वती विहार, नरेला और मॉडल टाउन में विभाजित है।

जनसंख्या- 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तर-पश्चिम दिल्ली की आबादी 3651261 है। जिले में प्रति वर्ग किलोमीटर 8298 निवासियों का जनसंख्या घनत्व है। दशक 2001-2011 में जनसंख्या वृद्धि दर 27.63 प्रतिशत थी। उत्तर पश्चिम दिल्ली हर 1000 पुरूषों के लिए 862 महिलाओं का लिंग अनुपात है, और 84.66 प्रतिशत की साक्षरता दर है।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत अध्ययन में सर्वे विधि का उपयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत उत्तर पश्चिमी दिल्ली के दो कॉलेजों के विद्यार्थियों पर यह सर्वेक्षण किया गया जिनकी संख्या कॉलेज में लगभग 1000 से भी अधिक है, का दैव निदर्शन विधि (लाटरी प्रविधि)

द्वारा चयन किया गया है। इस सर्वे में कस्तूरी राम कॉलेज, नरेला और महाराजा अग्रसेन कॉलेज, रिठाला के 100 विद्यार्थियों से प्रश्नावली भरवाई गई। इन कॉलेजों मे पढ़ने वाले छात्रों बी.एड., बी.जे.एम.सी, बी.बी.ए. के छात्र उत्तरदाता के रूप में सामने आए है।

इस शोध के अन्तर्गत तथ्यों के संकलन हेतु प्रश्नावली का प्रयोग हुआ है। जिसमें शोध के लिए 25 प्रतिबंधित प्रश्नो के उत्तर, उत्तरदाताओं से लिए गए। प्रश्नावली के निर्माण के समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि प्रश्नावली में टेलिविजन में प्रसारित होने वाले सभी क्षेत्रों (समाचार, मनोरंजन और सूचनापरक कार्यक्रम) को शामिल किया गया, जिससे शोध के उद्देश्य की पूर्ति की जा सके।

अध्ययन विश्लेषण– प्रस्तुत अध्ययन के अंर्तगत दिल्ली के युवाओं को तीन समूहों में विभाजित किया गया है 18-20, 21-23 और 24-25 वर्ष जिनकी संख्या क्रमंशः 14, 27, और 59 है।

क्र.	उत्तरदाताओं की आयु	आवृत्ति
1	18—20	14
2	21—23	27
3	24—25	59
	योग	100

इसमें कुल स्त्रियों कि संध्या 47 और पुरूषों की संख्या 53 है। इसमें स्त्रियों की संख्या कम है क्योंकि कॉलेज के तुरंत बाद वे शाम से पहले अपने अपने घर वापस लौटना चाहती है।

क्र.	टेलीविजन पर व्यतीत घण्टे	आवृत्ति प्रतिशत में
1	रोज 1 घण्टे–(12)	9
2	रोज 2 घण्टे–(14)	52
3	रोज 3 घण्टे–(21)	11
4	रोज 4 घण्टे–(28)	97
5	रोज 5 घण्टे–(35)	34

97 प्रतिशत दिल्ली के युवा सप्ताह में 28 घण्टे टेलीविजन पर अपना समय व्यतीत करते है। 52 प्रतिशत युवा प्रति सप्ताह 14 घण्टे अपना समय व्यतीत करते है और वही 34 प्रतिशत युवा है जो इंटरनेट के सभी माध्यमों द्वारा 35 घण्टे समय व्यतीत करते हैं।

क्र.	पसदं के टेलीविजन चैनल	आवृत्ति प्रतिशत में
1	राजनैतिक	32
2	बिजनेस	17
3	खेल	51
4	मनोरंजन	82
5	विज्ञान और तकनीकि	43
6	पर्यावरण	25

खेल कार्यक्रम पर 51 प्रतिशत युवाओं का 82 प्रतिशत युवा मनोरंजन कार्यक्रम देखना पंसद करते है। इसके बाद 43 प्रतिशत विज्ञान और तकनीकी कार्यक्रमों पर ज्यादा रूझान है, बांकि 25 प्रतिशत पर्यावरण और 32 प्रतिशत राजनैतिक गतिविधियों पर अपना समय देते है। 17 प्रतिशत बिजनेस कार्यक्रम देखते है।

क्र.	टेलीविजन कार्यक्रमों के माध्यम	आवृत्ति प्रतिशत में
1	कम्प्यूटर इंटरनेट के द्वारा	59
2	मोबाइल इंटरनेट के द्वारा	65
3	टैबइंटरनेट के द्वारा	47
4	टेलिविजन के द्वारा	35

आज के युवा आधुनिकता और तकनीकी के इस युग में इंटरनेट और मोबाइल को ही आदर्श जनसंचार की छवि को अपने जीवन में उतार चुके है। 65 प्रतिशत युवा इंटरनेट और मोबाईल को टेलीविजन का सशक्त माध्यम मानते है इसमें 35 प्रतिशत युवा अन्य माध्यमों से टेलीविजन देखना पसंद करते है।

क्र.	टेलीविजन के समाचार चैनलों पर आने वाली खबरों से प्रभावित होते है	आवृत्ति प्रतिशत में
1	बहुत अधिक	90
2	अधिक	69
3	पता नहीं	73
4	नहीं	80
5	बिल्कुल नहीं	80

90 प्रतिशत युवा समाचार चैनलों पर आने वाली खबरों से प्रभावित होते हैं और उसे सच मानते है। वही पर 73 प्रतिशत युवा ये मानते है कि समाचार चैनलों पर आने वाली खबरे समझ में नहीं आती। 80 प्रतिशत युवा यह मानते है कि समाचार चैनल किसी न किसी राजनौतिक पार्टी का समर्थन करते है और 80 प्रतिशत युवा समाचार चैनलों पर आनेवाली खबरों की विश्वसनीयता पर संदेह करते हैं।

क्र.	खेल कार्यक्रमों की पंसद	आवृत्ति प्रतिशत में
1	क्रिकेट	80
2	डब्ल्यू डब्ल्यू एफ	55
3	फुटबाल	37
4	टेनिस	35
5	बैडमिंटन	28
6	हॉकी	10
7	फार्मूला रेसिंग	15

खेल कार्यक्रमों पर युवाओं की मिली जुली प्रतिक्रिया है। सबसे ज्यादा 80 प्रतिशत

युवा क्रिकेट देखना पंसद करते है वहीं 55 प्रतिशत डब्ल्यू डब्ल्यू एफ और 37 प्रतिशत फुटबाल और 35 प्रतिशत युवा टेनिस और 28 प्रतिशत बैडमिंटन देखना पंसद करते है। वही हमारे राष्ट्रीय खेल हॉकी को सिर्फ 10 प्रतिशत ही लोग पसंद करते है।

क्र.	विज्ञापनों का प्रभाव	आवृत्ति प्रतिशत में
1	व्यक्तिगत और पोशाक	70
2	टी.आर.पी.	87
3	डिस्कवरी चैनल	85
4	ऐनिमल प्लेनेट चैनल	65
5	नेशनल ज्योग्राफिक चैनल	55
6	कलर्स चैनल	45
7	सोनी चैनल	85
8	जी टी.वी.चैनल	30
9	स्टार प्लस चैनल	27
10	यूटीवी विंदासचैनल	33
11	लाईफ ओ. के. चैनल	25
12	एम टी. वी. चैनल	17
13	सब टी. वी. चैनल	21
14	अन्य मनोरंजन कार्यक्रमों	25

विज्ञापन भी खूब असर छोड़ता है। आधुनिक युवा विज्ञापनों से प्रभावित होकर ही अपनी सेवाएं और वस्तु उपयोग करते है। 70 प्रतिशत युवा अपने व्यक्तिगत और पोशाक को टेलीविजन से ही प्रभावित करते है। यही इनकी दुनिया है इनमें से ही 87 प्रतिशत युवा टी.आर.पी. से भी परिचित है। इसके आलावा जानकारी और सूचना परक कार्यक्रमों में 85 प्रतिशत युवा डिस्कवरी चैनल और 65 प्रतिशत ऐनिमल प्लेनेट चैनल देखना पंसद करते है। साथ ही 55 प्रतिशत युवा नेशनल ज्योग्राफिक चैनल और 25 प्रतिशत अन्य मनोरंजन कार्यक्रमों में 45 प्रतिशत युवा कलर्स चैनल को पसंद करते है वहीं 84 प्रतिशत युवा सोनी और 30 प्रतिशत युवा जी टी.वी. और 27 प्रतिशत स्टार प्लस चैनल देखना पसंद करते है। कुछ 18 से 20 की उम्र वाले युवा वर्ग है जो 33 प्रतिशत यूटीवी विंदास और 25 प्रतिशत लाईफ ओके देखना पसंद करते हैं, एम टी. वी. के 17 प्रतिशत दर्शक है तो वहीं 21 प्रतिशत सब टी. वी. देखते है।

क्र.	टेलिविजन पर सिनेमा/फिल्मों का प्रभाव	आवृत्ति प्रतिशत में
1	कॉमेडी फिल्म	68
2	एक्शन फिल्म	59
3	सांइस और फिक्शन फिल्म	53
4	रोमांटिक फिल्म	46
5	पारिवारिक फिल्म	55
6	स्टार गोल्ड हिन्दी मूवी चैनल	68
7	सेट मेक्सचैनल	57
8	जी क्लासिकचैनल	24

9	जी सिनेमाचैनल	33
10	स्टार प्लस सेलेक्ट चैनल	28
11	स्टार मूवी अंग्रेजी में	61
12	मूवीज नॉओ अंग्रेजी में	53
13	सब टी. वी. चैनल	21
14	यूटीवी वर्ल्ड चैनल	47
15	एचबीओ मूवी चैनल	45

फिल्मो की बात करे तो 68 प्रतिशत युवा कॉमेडी फिल्में देखना पसंद करते है, 59 प्रतिशत युवा एक्शन फिल्में देखना ज्यादा पसंद करते है। कुल 53 प्रतिशत युवा सांइस और फिक्शन वाली फिल्में पंसद भी करते है साथ ही 46 प्रतिशत रोमांटिक फिल्मे और 25 प्रतिशत पारिवारिक फिल्में देखना पंसद करते है। इसके साथ ही 68 प्रतिशत युवा स्टार गोल्ड हिन्दी मूवी चैनल देखना पसंद करते है। 57 प्रतिशत युवा सेट मेक्स और 24 प्रतिशत जी क्लासिक फिल्में देखना पसंद करते है। 33 प्रतिशत युवा जी सिनेमा और 28 प्रतिशत स्टार प्लस सेलेक्ट देखना पसंद करते है। अंग्रेजी मूवी चैनलों में 61 प्रतिशत युवा स्टार मूवी, 53 प्रतिशत मूवीज ना ओ देखना पसंद करते है। 47 प्रतिशत यूटीवी वर्ल्ड चैनल और 45 प्रतिशत एचबीओ मूवी चैनल देखना पंसद करते हैं।

क्र.	**धार्मिक चैनलों का प्रभाव**	**आवृत्ति प्रतिशत में**
1	आस्था	85
2	दिव्य चैनल	52
3	साधना चैनल	45
4	संस्कार चैनल	38
5	चरित्र प्रधान कार्यक्रम	88
6	भावना प्रधान कार्यक्रम	15

धार्मिक चैनलों की माने तो अधिक उम्र वाले युवा भी योगा और आयुर्वेदिक उपचार से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके आज का 85 प्रतिशत युवा आस्था और 52 प्रतिशत युवा दिव्य चैनल देखता है। साधना चैनल को पसंद करने वालों की संख्या 45 प्रतिशत है 38 प्रतिशत संस्कार चैनल भी पंसद करते है। ये सभी चैनल उत्तरदाताओं के पारिवारिक पसंद के चैनल है जो सामान्यतः कभी भी देखे जाते है। इन चैनलों के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि बाबा रामदेव को पंसद करने वाले युवाओं की संख्या 88 प्रतिशत है। सिर्फ 15 प्रतिशत युवा ही राशिफल बताने वाले कार्यक्रम देखते हैं।

अनशन और आन्दोलन के प्रश्न का उत्तर देते हुये आज के युवाओं का मानना है कि वो अन्ना हजारे को जानते ही नहीं थे। 92 प्रतिशत युवा अन्ना हजारे को जानते ही नहीं थे, ये मीडिया द्वारा ही इन्हे पता चला है।वर्तमान में युवा देश की सबसे बड़ी समस्या 67 प्रतिशत भ्रष्टाचार और 60 प्रतिशत बेरोजगारी को मानते हैं।8 गरीबी को 35 प्रतिशत और बढ़ती हुर्य जनसंख्या को 32 प्रतिशत युवा सही मानते हैं।

निष्कर्ष– प्रस्तुत अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि आधुनिक युवाओं में टेलीविजन देखने संबंधी आदते काफी अधिक है। ये सबसे अधिक मनोरंजन खेल संबंधी खबरे देखना पसंद करते है। समाचारों से सबंधी अधिक प्रभावित होते हैं।

समाज आज खबरो से अछूता नहीं रह गया है। टेलीविजन की खबरे युवाओं को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है। वर्तमान में युवा इन सूचनाओ और प्रसारण चैनलों पर ऑख बन्द कर भरोसा करते है तथा प्रसारित खबरो और अन्य चैनलो पर परोसे जा रहे विज्ञापनों से भी अत्यधिक प्रभावित होते है।

आधुनिक युवा ज्यादा टी.आर.पी. वाले कार्यक्रमों पर और सबसे ज्यादा प्रचलित विज्ञापनों पर ही आकर्षित होते है और इसका उपभोग करते की जुगत में रहते है जैसे 15 जुलाई 1984 से ''हमलोग'' कार्यक्रम से मैगी आज भी करोड़ों दिलों पर उसी अंदाज में बाजारों की शोभा बनी हुई हैं।

सूचना परक कार्यक्रमों में युवाओं का दृष्टिकोण सकारात्मक है। आधुनिक युवा अपने ज्ञान की वृद्धि और पेशेवर कार्यक्रमों का अध्ययन करना बखूवी जानता है। इसके परिणाम स्वरूप यह पता चला है कि अपनी शारीरिक क्षमता वृद्धि के लिए योग और आर्युवेद की ओर ध्यान देता है किन्तु भविष्यफलो और राशियों संबंधित कार्यक्रमों का असर इन पर नहीं हुआ है।सामाजिक एंव राजनैतिक परिदृश्य पर नजर डाले तो आज का युवा जनसंचार माध्यमों द्वारा खबरों के प्रति अधिक सजग नजर आते हैं।

सुझाव–

* इस प्रकार के लघुशोध/अध्ययन अन्य प्रदेशों एवं जिलेवार भी कराए जाने चाहिए ताकि देश के युवाओं का सामाजिक एवं राजनैतिक योगदान का पता लगाया जा सके।
* जनसंचार के प्रति युवाओं का आकर्षण एवं रूझान का पता लग सके और युवाओं में जनसंचार संबंधी आदतों और समस्याओं में अन्तर पता किया जा सके।
* टेलीविज सर्वेक्षण एवं मीडिया के अन्य माध्यमों का भी सर्वेक्षण होना चाहिए।
* जनसंचार के सभी माध्यमों का ईकाईबद्ध रूप में सर्वेक्षण होना चाहिए ताकि श्रोताओं एवं नवयुवाओं की पंसद और सुधार के साथ कार्यक्रमों का संचार /प्रचार /प्रसारण हो सकें।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. मुखर्जी, रवीन्द्रनाथ, ''सामाजिक शोध एवं सांख्यकी'' विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. सत्यदेव, ''मानव संप्रेषण,'' ''संचार श्री, संचार भवन लखनऊ विश्वविद्यालय, अप्रैल-जून 2005''।
3. कुमार, केवल जे, (1994) ''मास कम्यूनिकेशन इन इंडिया'', अरिहन्त पब्लिकेशन, ड्रीमलैण्ड, नई दिल्ली।
4. सिंह, डॉ. देवव्रत सिंह, (2012)''भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद, (2011) ''हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास'', स्टैण्र्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. जॉनस, ऐ एफ (2003)''द इम्पैक्ट ऑफ मीडिया'' ऑन चिल्ड्रेन एंड यूथ, पैडीयट चाइल्ड हेल्थ।

7. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सामाजिक शोध के तत्व, मध्यप्रदेश, 2011
8. www.pressreference.com/gv-ku/india.html
9. www.slieshare.net/avivm/role-of-television-as-amass-mediam.
10. www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articales/pmc3968583

End Note:

1. Ananth, V. Krishna,(2015), "The Indian Constitution and Social Revolution,SAGE Publication India Pvt. Ltd., New Delhi.
2. Leibsohn, D., Peterson, F. J., (2012), "Seeing Across Cultures in the Early Modern Worid, Ashgate Publishing Company, Burlington USA.
3 सिंह, देवव्रत सिंह,(2012)ए ''भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली ।
4 सत्यदेव, (2005)ए ''मानव संप्रेषण,'' ''संचार श्री, संचार भवन लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
5 Gawande, E. N., (2002), "Value Orianted Education: Vision for Better Living, Sarup & Sons, New Delhi.
6 Bhattacharyya, D., Jayal, N. G., Mohapatra, B. N., Pal, S., (2004), "Interrogating Social Capital: The Indian Experience, SAGE Publication India Pvt. Ltd., New Delhi.
7 कुमार, केवल जे,(1994)ए ''मास कम्यूनिकेशन इन इंडिया'', अरिहन्त पब्लिकेशन, ड्रीमलैण्ड, नई दिल्ली।
8 www.pressreference.com/Gu-Ku/India.html
9 Charan, V.K.,(2015), "Indian Film Society Movment: The Journey and its Impacts, SAGE Publication India Pvt. Ltd., New Delhi.
10 Bird, S.E., (2010), "News and Journalism, Indian University Press, Bloomington & Indianapolis.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

नरसिम्हा रावः भारत के गृहमंत्री के रूप में भूमिका का मूल्यांकन

* राकेश कुमार यादव

सारांश– *''ऑपरेशन ब्लूस्टार'' और इसमें पवित्र स्वर्णमंदिर की क्षति को सिख आबादी उनके धर्म पर प्रहार ज्यादा मान रहा था। इसके पूर्व यदि भिंडरावाले को गिरफ्तार कर लिया जाता तो कोई विशेष सिखों का विरोध नहीं होता। अतः इस घटना के बाद सिखों में उपजे घृणा और विद्रोह की आहट इन्दिरा गांधी को भी सुनाई दे रही थी। यही कारण था कि देश की आंतरिक सुरक्षा उनके पहली प्राथमिकता बन गई थी। अतः इस घटना के लगभग डेढ़ माह बाद इन्दिरा गांधी ने अपने कुशल विश्वासपात्र नरसिम्हा राव को विदेश मंत्रालय से हटाकर गृह मंत्रालय की जिम्मेवारी सौंपने का निर्णय लिया। 19 जुलाई 1984 को नरसिम्हा राव भारत के गृहमंत्री बना दिये गये अब इन्हें देश के अंदर के दुश्मनों से मुल्क की हिफाजत की गुरुत्तर जिम्मेवारी दी गई जिसे वहन करना इनकी सफलता का पैमाना होता। इनके गृहमंत्री बनने पर 1984 में ही दो घटनाएँ दो माह के अंदर ही घटी जिसमें गृहमंत्री के रूप में राव की कार्यशैली पर सवाल उठ खड़ा होता है–प्रथम घटना 31 अक्टूबर 1984 की है जब सिख सुरक्षा गार्डों ने ही इन्दिरा गांधी की हत्या कर दी तथा प्रतिक्रिया स्वरूप सिख विरोधी दंगों में दिल्ली तथा भारत के अन्य भागों में जबर्दस्त हत्याएँ हुईं, और दूसरी घटना 3 दिसम्बर 1984 की रात में भोपाल में यूनियन काबाईड कारखाने से जहरीली–गैस रिसाव की घटना थी जिसमें भोपाल के आसपास लगभग छः लाख लोग कुप्रभावित हुए थे और लगभग 5000 लोगों की जान गई थी। इस शोध पत्र में गृहमंत्री के रूप में नरसिम्हा राव की जिम्मेवारी का विश्लेषण किया गया है। इन दोनों घटनाओं में विधि व्यवस्था की जिम्मेवारी क्या नरसिम्हा राव ने पूरी तरह निभाई ? क्या इन समस्याओं के संदर्भ में राव की भूमिका अप्रतिरोधी या अनिवारक अथवा निष्क्रिय और दब्बू की रही है ? क्या ऐसी घटनाओं में अंतिम जिम्मेवारी विधि–व्यवस्था की प्रधानमंत्री की होगी या गृहमंत्री की ?*

मुख्य शब्द– ऑपरेश ब्लू स्टार, राजा कभी गलत नहीं होता, 1987 के दंगे, भोपाल गैस लीक काण्ड।

पी.वी. नरसिम्हा राव एक विद्वान् एवं सक्षम नेता के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। 1960 के दशक से आन्ध्रप्रदेश के मंत्री तथा 1970 के दशक में मुख्यमंत्री के रूप में तथा 1980 के दशक में इन्दिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी मंत्रिमंडल के वरिष्ठ मंत्री तथा 1990 के दशक में भारत के प्रधानमंत्री के रूप में अपनी प्रशासनिक दक्षता का परचम लहराकर एक कुशल राजनेता की भूमिका राव ने निभाई थी। जहाँ बहुत नेता जाति और धर्म की

* शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा (बिहार)

संजीवन के आधार पर राजनीतिक हैसियत में बने रहते हैं, नरसिम्हा राव ने अपनी विद्वता, वाक्पटुता तथा प्रशासनिक दक्षता के आधार पर भारतीय राजनीति के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचने का श्रेय प्राप्त किया था। उनमें किसी भी मंत्रालय को उच्च समर्पण से संचालित करने का जज्बा था। वे उसी मंत्रिमंडल को लेना चाहते थे जिसका उन्हें अनुभव और ज्ञान था। यही कारण था कि जब 1980 में आपातकाल के बाद के पराजय के पश्चात् इन्दिरा गाँधी 1980 में पुनः प्रधानमंत्री बनी तो राव की क्षमता को परखकर इन्हें भारत के विदेश मंत्री बनाने का निर्णय लिया। किन्तु पी०वी० नरसिम्हा राव ने जब इसकी जगह दूसरे मंत्रालय शिक्षा अथवा स्वास्थ्य लेना चाहा तो इन्दिरा ने उन्हें पुनः विचार का मौका दिया। हालाँकि इन्दिरा जी की इच्छा का कदर करते हुए विदेश मंत्रालय को ही राव ने स्वीकार कर लिया।[1]

इनके लिए नया विभाग होने तथा अत्यंत मह›वपूर्ण विभाग होने के कारण नरसिम्हा राव ने काफी मेहनत किया तथा इस मंत्रालय का काम सफलतापूर्वक संचालित कर अपने प्रधानमंत्री को एहसास इन्होंने दिला दिया कि राव किसी भी मंत्रालय का कार्य समान दक्षता से करने का माद्दा रखते हैं। इनके विदेश मंत्री होने के बावजूद इन्दिरा गाँधी इनकी विद्वता और दक्षता के कारण घरेलू मामले पर भी इनसे सलाह मशविरा किया करती थीं। कांग्रेस के दलीय कागजातों तथा दूसरे मंत्रालयों की संचिकाओं के पुनर्प्रारूपण के लिए भी इनका इस्तेमाल किया जाता था। पंजाब में जरनैल सिंह भिन्डर वाले के विभाजक उग्रवाद से परेशान इन्दिरा जी नरसिम्हा राव को उनके शान्तिपूर्ण व गंभीर स्वभाव के कारण उनपर बहुत भरोसा करती थीं तथा उन्हें इन विभाजक उग्रवादी नेताओं एवं उनके प्रतिनिधियों से वार्ता की जिम्मेवारी भी सौंपती रहती थी। किन्तु पंजाब समस्या का समाधान करने में ये भी सफल नहीं हो रहे थे। अतः इनकी अनुपस्थिति में इनसे बिना सलाह मशविरा किये ही इन्दिरा गाँधी ने अमृतसर के स्वर्णमंदिर में छिपे उग्रवादियों को निकालने के लिए, या यूँ कहें कि इनके पूर्णरूप से सफाये के लिए सेना को 3 जून 1984 को आदेश दे दिया। इस सैनिक कार्रवाई को "ऑपरेशन ब्लूस्टार" नाम दिया गया जिसमें 83 सिपाहियों की शहादत हुई तथा 220 उग्रवादियों की जानें गई।[2] इसमें स्वर्णमंदिर को भी काफी क्षति हुई थी। जिसे पुनः ठीक किया गया।

पूरी सेना की कार्रवाई के दौरान नरसिम्हा राव वरिष्ठ कुटनीतिज्ञ नटवर सिंह के साथ भारत से बाहर जकार्ता में थे। अभी भी राव भारत के विदेश मंत्री ही थे, किन्तु इन्हें इस मसले की भी चिन्ता बनी रहती थी और इन्हें सिख नेताओं के साथ सर्वाधिक बैठकों की अध्यक्षता करने का श्रेय प्राप्त था।[3] राव पंजाब मुद्दे की जटिलता को सबसे ज्यादा समझते थे तथा अपने शान्त एवं गंभीर स्वभाव के कारण इन्हें पूरा विश्वास था कि भटके और बहकाये गये ये सिख उग्रवादी अलगाववादी शनैः-शनैः शान्तिपूर्ण प्रयास से सही रास्ते पर आजायेंगे अथावा शान्तिपूर्ण समाधान इस जटिल समस्या का एक दिन अवश्य निकल जायेगा। राव हमेशा इस बात पर जोर दिया करते थे कि क्षेत्रीय एवं धार्मिक मसले इतना अधिक संवेदनशील हुआ करते हैं कि ऐसे मुद्दे पर सत्तासीन व्यक्ति को उग्र 'शेर' के बदले 'चतुर लोमड़ी' की भूमिका निभाने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें लगता था कि सिख अलगाववादी नेताओं से बातचीत की जिम्मेवारी इन्दिरा जी ने उनपर सौंपी थी तथा उन्हें ही सिख नेताओं के अधिकांश बैठकों की अध्यक्षता करने का अनुभव प्राप्त था। तो

इन्दिरा जी का किसी भी कड़े और बडे कदम इस सिलसिले में उठाने के पूर्व उनसे राय मशविरा कर लेना चाहिए था जो नहीं किया गया था। ("ऑपरेशन ब्लूस्टार" के संबंध में निर्णय लेते समय।)

किन्तु इन्दिरा जी का भी विशिष्ट स्वभाव था त्वरित और कठोर निर्णय लेने का। वे 'चतुर लोमड़ी' की जगह 'उग्र शेर' का स्वभाव रखती थीं। ऐसा उन्होंने आपात्काल का निर्णय लेने के पहले भी लिया था। बैंकों का राष्ट्रीयकरण पूर्व राजाओं के प्रिवीपर्स की समाप्ति, मोरारजी भाई को उपप्रधानमंत्री के पद से हटाना, ये सभी कठोर एवं उग्र निर्णय थे जिसे त्वरित ढंग से लिया गया था। "ऑपरेशन ब्लूस्टार" का कठोर और त्वरित निर्णय आपात्काल के निर्णय जैसा था जिसे अर्धरात्रि में लिया गया था तथा जिसके बाद जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, चन्द्रशेखर, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रमुख मधुकर दत्तात्रेय देवरस आदि लगभग सभी विपक्षी नेताओं को जेल की कालकोठरी में बंद कर दिया गया था।

नरसिम्हा राव भी अबतक दिल्ली दरबार के नियम से वाकिफ हो गये थे। उन्होंने 1971 में आन्ध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में अच्छा काम किया था। भूमि सूधार कानून को सख्त बनाकर सख्ती से लागू कर गरीबों और पिछड़ों का समर्थन के लिए कांग्रेस को तैयार कर लिया था। फिर भी कुछ नेताओं की नाराजगी और उनके समर्थकों द्वारा आयोजित भूस्वामियों के आन्दोलन के संबंध में आलाकमान को गुमराह किये जाने के कारण उन्हें मुख्यमंत्री के पद से च्युत होना पड़ा था। अतः राव अब बखूबी समझ चुके थे कि दिल्ली दरबार का पहला और सबसे महत्वपूर्ण नियम है कि राजा कभी गलत नहीं होता। इस नियम को राव ने अपने अभ्यंतर में उतार लिया था। अतः "ऑपरेशन ब्लूस्टार" के निर्णय से इत्तफाक नहीं रखने के बावजूद राव इसके विरोध में कुछ भी कहने की हिम्मत नही जुटा सके थे। किन्तु जब नाराज नटवर सिंह ने जकार्ता में ही राव से कहा था कि "यह एक बड़ी दुर्घटना है इसे घटित नहीं होने देना चाहिए था। सिख न इसे भूलेंगे न क्षमा करेंगे।" तो राव की प्रतिक्रिया को नटवर सिंह अपने स्मरण से व्यक्त करते हैं कि राव ने कुछ न कहकर भी बहुत कुछ कह दिया था। वे लिखते हैं, "गहरे चिन्तन में डूबे नरसिम्हा राव का चुप रहना बड़ा ही भावपूर्ण था।"[4]

''ऑपरेशन ब्लूस्टार'' और इसमें पवित्र स्वर्णमंदिर की क्षति को सिख आबादी उनके धर्म पर प्रहार ज्यादा मान रहा था। इसके पूर्व यदि भिंडरावाले को गिरफ्तार कर लिया जाता तो कोई विशेष सिखों का विरोध नहीं होता। अतः इस घटना के बाद सिखों में उपजे घृणा और विद्रोह की आहट इन्दिरा गांधी को भी सुनाई दे रही थी। यही कारण था कि देश की आंतरिक सुरक्षा उनके पहली प्राथमिकता बन गई थी। अतः इस घटना के लगभग डेढ़ माह बाद इन्दिरा गांधी ने अपने कुशल विश्वासपात्र नरसिम्हा राव को विदेश मंत्रालय से हटाकर गृह मंत्रालय की जिम्मेवारी सौंपने का निर्णय लिया। 19 जुलाई 1984 को नरसिम्हा राव भारत के गृहमंत्री बना दिये गये अब इन्हें देश के अंदर के दुश्मनों से मुल्क की हिफाजत की गुरुत्तर जिम्मेवारी दी गई जिसे वहन करना इनकी सफलता का पैमाना होता। इन्होंने संवेदनशील मसलों पर खुफिया तंत्र को निगरानी रखने पर जोर दिया तथा सिखों के जानिब से होनेवाले खतरे पर विशेष निगहबान रहने का संकेत दिया। परिणामतः खुफिया सूचना यह दी गई कि इन्दिरा गांधी के रक्षा गार्डों में से सिख गार्डों

को स्थानांतरित किया जाये क्योंकि इनके जानिब से प्रधानमंत्री को खतरा होने के संकेत प्राप्त हो रहे थे। इन्हें दूसरे कार्यों में लगाने के लिए स्थानांतरित भी किया गया, किन्तु इन्दिरा गांधी इस बात को लेकर कथित नाराजगी के आधार पर उनके सचिव आर० के० धवन के इशारे पर उन्हें पुनः पूर्व स्थान पर ला दिया गया।[5]

यहाँ तक तो नरसिम्हा राव के पक्ष में स्थिति बनती है। किन्तु इनके गृहमंत्री बनने पर 1984 में ही दो घटनाएँ दो माह के अंदर ही घटी जिसमें गृहमंत्री के रूप में राव की कार्यशैली पर सवाल उठ खड़ा होता है-प्रथम घटना 31 अक्टूबर 1984 की है जब सिख सुरक्षा गार्डों ने ही इन्दिरा गांधी की हत्या कर दी तथा प्रतिक्रिया स्वरूप सिख विरोधी दंगों में दिल्ली तथा भारत के अन्य भागों में जबर्दस्त हत्याएँ हुईं, और दूसरी घटना 3 दिसम्बर 1984 की रात में भोपाल में यूनियन काबाईड कारखाने से जहरीली-गैस रिसाव की घटना थी जिसमें भोपाल के आसपास लगभग छः लाख लोग कुप्रभावित हुए थे और लगभग 5000 लोगों की जान गई थी। इस शोध पत्र में गृहमंत्री के रूप में नरसिम्हा राव की जिम्मेवारी का विश्लेषण किया गया है। इन दोनों घटनाओं में विधि व्यवस्था की जिम्मेवारी क्या नरसिम्हा राव ने पूरी तरह निभाई? क्या इन समस्याओं के संदर्भ में राव की भूमिका अप्रतिरोधी या अनिवारक अथवा निष्क्रिय और दब्बू की रही है? क्या ऐसी घटनाओं में अंतिम जिम्मेवारी विधि-व्यवस्था की प्रधानमंत्री की होगी या गृहमंत्री की?

1984 के सिख विरोधी दंगें

इन्दिरा गांधी को "ऑपरेशन ब्लू स्टार" के बाद सचमुच अनिष्ट की अशंका थी जिसके कारण ही उन्होंने अपने क्षमतावान विदेश मंत्री को इस विभाग से हटाकर गृहमंत्रालय की जिम्मेवारी सौंपी थी। अनिष्ट संबंधी खुफिया सूचना के कारण ही प्रधानमंत्री की सुरक्षा में लगे सिख गार्डों का स्थान्तरित किया गया था। किन्तु इन्दिरा गांधी ने इस मामले में भी 'लोमड़ी की चतुराई' की जगह 'शेर की निर्भयता' की नीति को अपनाया और इन सिख गार्डों को पुनः पूर्व स्थान पर ही पदस्थापित करवा दिया। यहाँ राव की सावधानी और सतर्कता का लाभ इन्दिरा जी ने अस्वीकार कर यह साबित कर दिया कि गृहमंत्री ब्रिटेन की मंत्रिमंडलीय व्यवस्था का प्रधानमंत्री के समान ही अपने विभाग के कार्यों के संपादन में स्वतंत्र नहीं होता, बल्कि आधुनिक प्रधानमंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रधानमंत्री द्वारा चयनित एक राजीतिक प्रशासनिक सहायक मात्र है जिसे गृह मंत्रालय का कार्य भी प्रधानमंत्री की मर्जी के अनुरूप ही करना होगा। साथ ही दिल्ली दरबार के प्रथम सिद्धान्त वाक्य को नरसिम्हा राव भूल करने की कभी जुर्रत नहीं कर सकते थे कि 'राजा कभी गलत नहीं होता'।

अभी नरसिम्हा राव को गृहमंत्री हुए मात्र तीन माह से कुछ ही दिन ज्यादा हुए थे कि 31 अक्टूबर 1984 को उनके अपने ही सिख अंगरक्षकों बेअंत और सतवंत सिंह ने उस समय गोलियों से इन्दिरा गांधी के शरीर को छलनी कर दिया जब वे अपने आधिकारिक निवास 1. सफदरगंज से बगल के अकबर रोड वाले बंगले में दोनों बंगले के बीच गेटवाले रास्ते से जा रही थीं। ये दोनों अंगरक्षक उसी गेट पर तैनात थे। उनके क्षत-विक्षत शरीर को दिल्ली के अखिल भारतीय आर्युविज्ञान संस्थान ले जाया गया जहाँ उन्हें मृत घोषित किया गया। उस दिन अहले सुबह नाही कांग्रेस के महासचिव और इन्दिरा गांधी के एकमात्र जीवित पुत्र राजीव गांधी दिल्ली में थे और नही गृहमंत्री नरसिम्हा राव

ही। राव को और राजीव गांधी को सूचना तत्काल मिल गई थी। राजीव राव से पहले पहुँच गये जो बंगाल में दलीय कार्य के सिलसिले में गये हुए थे। राव को यह सूचना 10:15 पूर्वाहन में आंध्रप्रदेश में प्राप्त हुई तथा 1:00 मध्याह्न वे एक विशेष विमान से वारंगल से चले और 5 बजे शाम को सीधे आयुर्विज्ञान संस्थान पहुँचे।[6]

देश के प्रभावशाली और शक्तिशाली प्रधानमंत्री की ऐसी दुखद हत्या से देश स्तब्ध था। कांग्रेस का वह परिवार जो 1971 के इन्दिरा गांधी के उत्कर्ष के बाद से स्वयं कांग्रेस होगा तथा राजतंत्रीय व्यवस्था के राजपरिवार की भांति ही उसी परिवार का कोई सदस्य उसका उत्तराधिकारी बन सकता था। आपातकाल के पूर्व से ही इन्दिरा गांधी का छोटा पुत्र संजय गांधी अघोषित उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। किन्तु पूर्व में ही उनकी आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण उनके ज्येष्ठ पुत्र राजीव गांधी, जो स्वभाव से राजनीति से दूर रहा करते थे तथा कुछ वर्षों से वे काँग्रेस महासचिव के रूप में राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे, इस पद के स्वाभाविक उत्तराधिकारी थे। विचार और स्वभाव से बिल्कुल नेक होने के कारण अन्य कांग्रेसी वरिष्ठ नेतागण भी इस उत्तराधिकारी से खुश थे तथा इनकी अनुभवहीनता में अपनी अहम् भूमिका की संभावना तलाश रहे थे। अतः जब इन्दिरा गांधी की हृदयविदारक नृशंस हत्या कर दी गई तो न सिर्फ कांग्रेस की बल्कि पूरे राष्ट्र की सहानुभूति उनके साथ हो गई थी। अतः इन्दिरा जी की मौत का संदेश पाकर ज्योंही राजीव बंगाल से दिल्ली पहुँचे तथा राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह भी विदेश दौरा बीच में ही समाप्त कर भारत लौटे तो तत्काल राजीव गांधी को स्वाभाविक चयन के रूप में प्रधानमंत्री का शपथ दिला दिया गया। इसके पूर्व के परम्परानुसार किसी प्रधानमंत्री की मृत्यु के बाद सबसे वरिष्ठ मंत्री को कार्यकारी प्रधान मंत्री बनाया जाता रहा है, जैसा पंडित नेहरू की मृत्यु के बाद तथा शास्त्री की मृत्यु के बाद गुलजारी लाल नन्दा को बनाया गया था। पश्चात् लोकसभा में बहुमत का नेता चयन कर औपचारिक रूप से स्थायी प्रधानमंत्री को शपथ दिलाया जाता रहा था। किन्तु इस विशेष विषाद की परिस्थिति में भावनात्मक उद्वेग और सहानुभूति की पराकाष्ठा में न किसी ने इन औपचारिकताओं की परवाह की और न आवाज उठाने की धृष्टता दिखलाई।

दिल्ली के तीन सांसद-एच०के०एल० भगत, सज्जन कुमार और जगदीश टाइटलर-सिर्फ काँग्रेस के सामान्य सांसद ही नहीं इन्दिरा परिवार के खास खैरखाह थे तथा सत्ता के समर्थन से दिल्ली के मवालियों ओर बदमाशों को सुरक्षा प्रधान कर अपने प्रभाव में रखते थे। वे सत्ता के गलियारे में अपना प्रभाव जमाने के लिए इन्दिरा परिवार के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते थे। अतः राजीव परिवार को अपने समर्थन का एहसास दिलाने के लिए सिखों के विरुद्ध दंगा भड़काने और कत्लेआम करने की योजना को अमली जामा पहनाने के लिए ये लग गये। गुस्सा तो इस हत्या के विरुद्ध पूरे भारत में उन्माद की तरह ही था, किन्तु दिल्ली में इन सांसदों ने सत्ता की छतरी तले अपने मवाली एवं बादमाश समर्थकों को निर्दोष सिखों के विरुद्ध अहिंसा और लूटपाट करने की छूट सी दे डाली।

हिंसा की शुरुआत उस समय हुई जब इन्दिरा गांधी की हत्या का समाचार सुनकर तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह उत्तरी यमन की अपनी यात्रा समय से पहले खत्म कर दिल्ली लौट आये थे। जब हवाई अड्डा से इन्दिरा जी के दर्शन के लिए अखिल भारतीय

आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली जा रहे थे तो आर० के० पुरम के पास उनके मोटर काफिले पर हमला किया गया था। उनके प्रेस अधिकारी तारलोचन सिंह, जो बाद में अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष बने, ने आँखों देखी बताया कि राष्ट्रपति ज्योंही इन्दिरा जी के दर्शन के बाद संस्थान के नीचे उतरे, लोगों ने उन्हें घेर लिया और उनकी कार को रोकने की कोशिश की। उन्हें सुरक्षाकर्मियों ने बड़ी मशक्कत के बाद वहाँ से सुरक्षित निकाला।[7]

31 अक्टुबर से ही स्वतःस्फूर्त उत्पात शुरू हो गया किन्तु पहली और दूसरी नवम्बर को प्रायोजित ढंग का कत्लेआम, लूट, आगजनी आदि कार्य किये जा रहे थे और यह कार्य खोज-खोज कर सिखों के विरुद्ध किये जा रहे थे। यूँ तो पूरे भारत में सिखों के विरुद्ध दंगे एवं उत्पात् हुए जिसमें लगभग 4000 लोगों कि जानें गई, किन्तु सिर्फ देश की राजधानी दिल्ली में आधिकारिक तौर पर 2733 लोगों की नृशंस हत्या की गई। जब काँग्रेस समर्थित लोग गलियों में घूम-घूम कर सिखों की हत्या कर रहे थे, पुलिस रोकने का कोई प्रयास नहीं कर रही थी।[8] तीन नवम्बर को नरसिम्हा राव इन्दिरा जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि और भक्ति के प्रदर्शन में जुलूस का नेतृत्व किया जिसके बाद हिंसा रुकी।

दंगों के बाद 19 नवम्बर 1984 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र राजीव गांधी ने दिल्ली के बोटक्लब में इक्कठा हुए लोगों के हुजूम के सामने कहा था-"जब इन्दिरा की हत्या हुई थी तो हमारे देश में कुछ दंगे-फसाद हुए थे। हमें मालूम है कि भारत की जनता को कितना क्रोध आया, कितना गुस्सा आया और कुछ दिन के लिए लगा कि भारत हिल रहा है। जब भी कोई बड़ा पेंड़ गिरता है तो धरती थोड़ी हिलती है।"[9]

जिस समय राजीव गांधी यह वक्तव्य दे रहे होंगे, उनका उद्देश्य रहा होगा सिख विरोधी दंगे तथा उसको न रोकने की सरकार की विफलता को औचित्यपूर्ण सिद्ध करना, क्योंकि उस समय तक यह आवाज उठने लगी थी कि यह दुर्घटनापूर्ण दंगा काँग्रेस नेतृत्व की स्वीकृति से कांग्रेस के दिल्ली अवस्थित आपराधिक तत्वों और मवालियों द्वारा प्रायोजित था।

रेहान फजल ने सिख दंगों पर एक शोधपूर्ण ग्रंथ के लेखक द्वय मित्रा तथा फूल्का से बातचीत के आधार पर लिखा है, "पुलिस ने सिखों को बचाने के बजाए उन्हीं के खिलाफ कारवाई की।" बी०बी०सी० हिन्दी सेवा के संवाददाता को इस पुस्तक का एक लेखक हरविन्दर सिंह फूल्का ने बताया कि "कल्याणपुरी थाने में तकरीबन 600 लोगों को मारा गया। पहली नवम्बर को ज्यादातर कत्लेआम हुआ। पुलिस ने वहाँ पर 25 लोगों को हिरासत में लिया और सभी लोग सिख थें।" वे आगे कहते हैं, "एक और दो नवम्बर को इनके अलावा किसी को गिरफ्तार नहीं किया गया इतना ही नहीं पुलिस सिखों को पकड़कर भीड़ के हवाले कर दिया।"

अब सवाल उठता है कि क्या यह सब अचानक और स्वतः हो गया अथवा इसके लिए कोई योजना थी। इस किताब, व्हेन ए ट्री शूक देल्ही, के सह लेखक मनोज मित्रा मानते हैं कि सबकुछ राजनीतिक नेताओं के इशारे पर हुआ। पहले दिन यानि 31 अक्टूबर को छिट-पुट हिंसा हुई, लेकिन 1 और 2 नवम्बर को जो कुछ हुआ, वह बिना योजना के नहीं हो सकता था। मित्रा कहते हैं, "जिस दिन इन्दिरा गांधी की हत्या हुई उस दिन जो

घटनाएँ हुई, इन्हें आप स्वाभाविक कह सकते हैं, लेकिन उस दिन किसी सिख का कत्ल नहीं हुआ था।" वे आगे बतलाते हैं, "कत्ल की शुरुआत पूरे 24 घंटों के बाद यानि अगले दिन एक नवम्बर से हुई थी।" लेखक द्वय का स्पष्ट विचार है कि 1 और 2 नवम्बर की घटना आपराधिक साजिश के तहत हुई।[10]

कत्लेआम रोकने में सरकार विफल या सरकारी साजिश–

1984 में दिल्ली विशुद्ध रूप से केन्द्र शासित क्षेत्र था, देश की राजधानी होने के कारण सबकुछ बड़े अधिकारियों की नजर में था। पुलिस को देश के गृहमंत्री को रिपोर्ट करना होता था। किन्तु जैसा कि ऊपर देख चुके हैं, पुलिस सिखों के बचाव का कोई प्रयास नहीं कर रही थी। क्या इन्हें गृह मंत्रालय या कोई इससे भी बड़े अधिकारी, अर्थात् प्रधानमंत्री के कार्यालय के निर्देश पर काम करना पड़ रहा था। जो भी हो, इतने बड़े दंगे में राजधानी की पुलिस की निष्क्रियता स्पष्ट कर रही थी कि इसे राजनीतिक नेतृत्व के इशारे पर काम करना पड़ रहा था। वरिष्ठ पुलिस अधिकारी वेद मरवाहा को इस दंगे में पुलिस की भूमिका की जाँच की जिम्मेवारी सौंपी गई थी। उन्होंने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है-

"पुलिस एक औजार के समान हैं और आप जैसा चाहे वैसा उसका इस्तेमाल कर सकते हैं। जो पुलिस अधिकारी बहुत अधिक महत्वाकांक्षी होते हैं वे देखते हैं कि राजनेता उनसे क्या चाहते हैं। वो इशारे में बात समझते हैं। उन्हें लिखित या मौखिक आदेश की जरूरत नहीं होती हैं।"[11]

वे आगे बतलाते हैं-

"जिन इलाकों में पुलिस नेताओं के इशारे पर कठपुतली नहीं बनी रही, वहाँ तो स्थिति नियंत्रण में रही। मसलन चाँदनी चौक में इतना बड़ा गुरुद्वारा है, वहाँ किसी की जान को नुकसान नहीं पहुँचा क्योंकि उस वक्त मैक्सवेल परेरा पुलिस उपायुक्त थे। उन्होंने पुख्ता प्रबंध किये कि चाँदनी चौक में कोई गड़बड़ी न हो पाए। गड़बड़ी वहाँ हुई जहाँ पुलिस ने राजनीतिक दबाव के सामने घुटने टेक दिये।"[12]

दंगों के 21 साल बाद काँग्रेसी प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने संसद में इसके लिए माफी माँगी थी और कहा था कि जो कुछ भी हुआ, उसके लिए उनका सिर शर्म से झुक जाता है।[13] मनमोहन सिंह के माफीनामे से यह स्पष्ट हो गया था कि काँग्रेस इसके लिए खुद को राजनीतिक नेतृत्व को जिम्मेवार मानती है। देश का आम नागरिक भी स्पष्टतः समझता रहा है कि ये दंगे काँग्रेस सरकार के साजिश के तहत हुए तथा पुलिस, बेद मारवा की भाषा में, अपने राजनीतिक मालिक को खुश करने के लिए मात्र एक "औजार के समान" काम करती है।

इस साजिश का जिम्मेवार गृहमंत्री या प्रधानमंत्री–

इस प्रश्न का उत्तर विनय सीतापति जिन्होंने नरसिम्हा राव की राजनीतिक जीवनी पर एक पुस्तक लिखी है, ने स्पष्टतः दिया है-उसने गृहमंत्रालय के एक तत्कालीन अधिकारी, जिसने अपना नाम न बताने की शर्त पर उन्हें बतलाया था, के हवाले से बताया है कि नरसिम्हा राव रायसिना हिल्स के नॉर्थ ब्लॉक के गृहमंत्रालय में बैठे हुए थे। लगभग 6 बजे शाम को 31.10.1984 को एक फोन कॉल आया। फोन करनेवाला नौजवान काँग्रेसी, जो राजीव गाँधी, भारत के नये प्रधानमंत्री का बहुत करीबी था, ने राव से कहा

कि दिल्ली में सिखों पर आक्रमण होने की स्थिति में प्रधानमंत्री कार्यालय से आपको समायोजन करने की अपेक्षा की जाती है। उसने यह भी कहा कि दंगा संबंधी हिंसा की खबरों को अबसे सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय को भेजा जायेगा। इसका कारण कार्यकुशलता को बतलाया गया, किन्तु इस स्थिति का सीधा परिणाम यह था कि गृहमंत्री- नरसिम्हा राव को छोड़कर इस घटना पर प्रधानमंत्री कार्यालय का पूर्ण नियंत्रण होगा। अतः क्षेत्रीय आरक्षी केन्द्रों से हिंसा संबंधित सारी खबरों को सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय को भेजा जाने लगा। इस मामले में गृहमंत्री राव को अनावश्यक बना दिया गया था।[14]

दंगा संबंधित गृहमंत्री अथवा प्रधानमंत्री की जिम्मेवारी पर विस्तृत विवरण मनोज मि›ा तथा एच० एस० फूल्का द्वारा लिखित पुस्तक 'व्हेन ए ट्री शूक देल्ही', के प्रथम भाग के सातवें अध्याय, "मास्टरी इनैक्शन" में प्राप्त होता है जिसमें इस विषय पर जाँच रपट प्रस्तुत करने वाले दो न्यायिक आयोगों की राय भी प्रस्तुत की गई है।

न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा आयोग, जो इस विषय पर नियुक्त प्रथम आयोग था, ने यह स्वीकार किया था कि दिल्ली में उस समय लगभग 5000 से ज्यादा सेना के अधिकारी और जवान उपस्थित थे। यदि उन्हें दंगा रोकने के काम में लगाया गया होता तो लगभग 2000 लोगों की जान बचाई जा सकती थी। एक नवम्बर के शाम से सुरक्षा बलों को कुछ-कुछ क्षेत्रों में लगाने का काम किया भी गया, किन्तु तीन दिनों तक ये अप्रभावी सिद्ध हुए।[15] मिश्रा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में यह लिखा है कि राजीव गाँधी ने 31 अक्टूबर को ही यह निर्देश जारी किया था कि सेना को आगाह किया जाए तथा यदि आवश्यकता हो तो, उसे लगाया भी जाए। इस आधार पर आयोग सरकार को यानि प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को दोषमुक्त मानता है तथा इसकी जिम्मेवारी दिल्ली के उपराज्यपाल तथा पुलिस आयुक्त पर डाल देता है। लेखक द्वय आयोग के रपट का संतोषजनक नहीं माना है।

इसके दो दशकों बाद इस विषय पर दूसरा आयोग जी०टी० नानावती आयोग नियुक्त होता है क्योंकि सरकार ने यह माना कि रंगनाथ मिश्रा आयोग ने दंगे के महत्वपूर्ण हिस्से पर रोशनी डालने में विफल रहा। इसने ज्यादा पारदर्शी ढंग से इस विषय पर पूछ-ताछ की थी। इसने देल्ही के उपराज्यपाल पी०जी० गवई, उस वक्त के पुलिस आयुक्त एस०सी० टंडन, तत्कालीन गृहमंत्री पी०वी० नरसिम्हा राव, प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव पी०सी० एलेक्जेन्डर तथा उस समय देल्ही के सेना के जेनरल ऑफिसर कमान्डिंग मे० जेनरल जे०एस० जामवाल से भी पूछ-ताछ किया। अपने रपट में नानावती आयोग ने रंगनाथ मिश्रा आयोग की भाँति राजीव गाँधी को निर्दोष माना तथा इस दोष की जिम्मेवारी गवई और टंडन पर मढ़ डाली। नानावती रपट पर संसद में 2005 में बोलते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने यह स्वीकार किया कि "हम सभी जानते हैं कि अभी भी हमलोग सत्य को नहीं जानते हैं।"[16]

हालाँकि नानावती कमीशन के समक्ष दिये गये बयानों में उक्त अधिकारियों ने मेल नहीं दिखाया किन्तु इतना उन्होंने माना कि राजनीतिक नेतृत्व की अहम भूमिका होनी चाहिए थी। दिल्ली की विधि-व्यवस्था की जिम्मेवारी केन्द्र सरकार के होने के बावजूद नरसिम्हा राव ने पूरे दंगा अवधि में एक भी क्षेत्र का दौरा नहीं करने की आवश्यकता समझी। नानावती आयोग के समक्ष अपने बयान में इस बात के लिए कोई सफाई नहीं पेश

की। नानावती आयोग के समक्ष अपने लिखित बयान में जे०ए० अड़ोरा तथा पटवन्त सिंह ने राव की निष्क्रियता पर आश्चर्य जताया। किन्तु आई०के० गुजराल ने कहा कि विदेशी अतिथियों में व्यस्तता के कारण राव इस घटना से थोड़ा हटे लग रहे थे। गुजराल ने कहा कि राव को दंगे के संबंध में बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त नहीं थी।

पूर्व विधिमंत्री तथा देश के बड़े वकील शान्ति भूषण ने राव के संबंध में अपनी राय देते हुए कहा कि जब वे गृहमंत्री से मिले एक नवम्बर को तो उन्होंने देखा कि राव दंगा से संबंधित बातों पर अधिकारियों से बात कर रहे थे। अतः उन्हें लगा कि राव घटना के प्रति उदासीन नहीं थे, बल्कि अपने प्रयासों के बावजूद वे अप्रभावी सिद्ध हो रहे थे। राव बहुत ही चिंतित तथा परेशान लग रहे थे। वे बहुत कुछ करने का प्रयास करके भी कुछ नहीं कर पा रहे थे। किन्तु राव ने नानावती आयोग के समक्ष खुद को घटना कि प्रति उदासीन तथा कदम उठाने में अप्रभावी होने जैसे दोनों अभियोगों को सिरे से नकार दिया। नानावती आयोग ने राव को अभियोग से मुक्त भी किया और माना कि मंत्री के स्तर पर कोई विलम्ब नहीं हुआ बल्कि नानावती आयोग ने कहा :

"हालाँकि उनसे जो महत्वपूर्ण लोग दंगों के दरमियान मिले तथा उन्होंने समझा कि परिस्थिति के अनुकूल गृहमंत्री अधिक प्रभावनीय एवं संवेदनशील नहीं लग रहे थे, यह लग रहा है कि उन्हें ऐसा गृहमंत्री के कार्य करने के स्टाईल के कारण लगा।"[17]

भारत के पूर्व विधि मंत्री तथा देश के विख्यात वकील राम जेठमलानी ने नानावती आयोग को कहा कि जब दंगों की भयंकरता को देख गृहमंत्री नरसिम्हा के पास गया और घटना की भयावह जानकारी उन्हें दी तथा त्वरित कार्रवाई का आग्रह किया तो पाया कि राव किसी अधिकारी को भी निर्देशन नही दे रहे थे। मैंने उन्हें उदासीन तथा लाचार जैसा पाया। हो सकता है कि इस घटना से वे हिल गये हो। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वे अत्यंत असंतुष्ट जान पड़ रहे थे। उन्होंने यह भी कहा कि यह संयम उनका सामान्य व्यवहार भी हो सकता था।[18]

विनय सीतापति ने स्पष्तः लिखा है कि प्रधानमंत्री कार्यालय ही इस संबंध में विधि-व्यवस्था को सीधे अपने नियंत्रण में रख रहा था। इन्होंने शान्तिभूषण को संदर्भित कर कहा है कि जब शान्तिभूषण ने उनसे दंगा नियंत्रण के संदर्भ में बात की तो लगा कि राव प्रयास तो कर रहे थे किन्तु उनका प्रयास निष्फल एवं अप्रभावी था। उन्होंने अनुमान इससे लगाया कि किसी उच्चाधिकारी ने पुलिस को पहले ही निर्देश निर्गत कर चुका होगा।[19]

घटना के चौदह दिनों बाद बोट क्लब के समक्ष उपस्थित भीड़ को संबोधित करते हुए राजीव गाँधी का यह कहना था कि कोई विशाल वृक्ष का पतन होता है तो आस-पड़ोस में जलजला आना स्वभाविक है। ऐसा लगता है कि नया प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधीजी की नृशंस हत्या के बाद उत्पन्न सिखों के विरुद्ध उपद्रव को या तो रोकने में सक्षम नहीं थे अथवा इसे परिस्थितिजन्य सिद्ध करना चाह रहे थे।

राव 'लोमड़ी की चतुराई' की नीति को भी अपनाना कभी-कभी आवश्यक मानते थे। दिल्ली दरबार की यह नीति वे बखूबी समझ गये थे कि राजा गलत नहीं होता तथा उसका विरोध करना अपने राजनीतिक कैरियर को समाप्त करने के बराबर है। उनमें इतना साहस नहीं था कि गृहमंत्री की हैसियत को दर्शाकर अपने बॉस को नाराज कर सके तथा

पुलिस और सेना का इस्तेमाल अपनी मर्जी से कर सकें।

भोपाल गैस लीक हादसा–

नरसिम्हा राव का गृहमंत्रालय की मिली जिम्मेवारी उनके लिए विवाद कारक ही रही। 1984 के अक्टूबर के अंतिम दिन तथा नवम्बर के प्रारंभिक दो दिनों तक सिखों के नरसंहार के बाद दिसम्बर के प्रारंभ में ही 3 दिसम्बर 1984 की रात्रि में भोपाल (मध्यप्रदेश की राजधानी) में यूनियन कार्बाइड फैक्ट्री से जहरीली गैस का रिसाव हुआ जिसमें करीब 5000 लोगों की मौत हुई तथा करीब 6,00,000 लोग हादसे से बुरी तरह प्रभावित हुए जिसका असर इन लोगों पर वर्षों तक रहा।[20]

घटना के चार दिन बाद यानि 7 दिसम्बर 1984 को इस फैक्ट्री का अमेरिकन चेयरमैन वारेन एंडर्सन भोपाल आया तथा उसे गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु 6 घन्टे के बाद ही उससे मात्र 2100 डॉलर का मामूली जुर्माना लेकर छोड़ दिया गया जो एक विवादास्पद विषय बना। दुनियाँ के इस सबसे बड़े औद्योगिक त्रासदी का अभियुक्त का इस प्रकार छूट जाना कि व पुनः ट्रायल के लिए भारत के न्यायालय में कभी न पहुँच सके, एक बड़ा विवाद का विषय है।[21]

भोपाल त्रासदी के चार दिन बाद ही प्रधानमंत्री राजीव गाँधी भोपाल आये थे। उन्होंने वहाँ के तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह से एकान्त में बात की थी जिसे अर्जुन सिंह ने अपनी आत्मकथा में भी लिखा है। अर्जुन सिंह लिखते हैं कि "आज भी उन्होंने जो मुझसे कहा था, उसे मैं जाहिर नहीं कर सकता हूँ यह एक राजकीय रहस्य है जिसे मैं अपने कब्र तक लेते जाऊँगा।"[22]

नरसिम्हा राव तथा अर्जुन सिंह का आपसी तल्ख संबंध निर्विवाद था। जब राव राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री बने तो सिंह ने अंदर से इसे स्वीकार नहीं किया। वे यह पद स्वयं चाहते थे तथा न मिलने पर राव के मंत्रिमण्डल में मनचाहा विभाग चाहते थे, यह भी उन्हें नहीं मिल सका। तो राव की मृत्यु के बाद प्रकाशित अपनी आत्मकथा में इस संबंध में मनगढ़ंत लिखकर राव को विवाद में फँसाने के लिए लिखा कि वारेन एंडर्सन की गिरतारी के 6 घंटे बाद ही छोड़ने का आदेश गृहमंत्री अर्थात् नरसिम्हा राव के पास से आया था।[23] न्यायालय में बाद में प्रस्तुत साक्ष्य से स्पष्ट हो गया है कि यह आदेश गृहमंत्री राव का नहीं था। किन्तु यदि सिंह के दावे के तर्क को स्वीकार करते हुए यदि मान भी लिया जाए तो यह संभव नहीं कि इतने बड़े मामले पर गृहमंत्री कोई निर्णय बिना अपने बॉस प्रधानमंत्री की स्वीकृति के करते।

घटना के 32 वर्ष बाद गैस त्रासदी के मुख्य आरोपी वारेन एंडर्सन को भोपाल से विदेश फरार करने के आरोप में सी०जी०एम० कोर्ट ने तत्कालीन भोपाल के कलेक्टर मोती सिंह तथा एस०पी० स्वराजपुरी के खिलाफ केस दर्ज कर लिया। 1984 में एंडर्सन को भोपाल से भगाने में इन लोगों ने मदद की थी। भूभास्कर यादव ने गैस पीड़ितों के संबंध में परिवाद की सुनवाई करते हुए नवम्बर 2016 में यह निर्णय दिया था। मामले में अन्य दस्तावेजों के साथ ही कोर्ट ने मोती सिंह द्वारा लिखित 'भोपाल गैस त्रासदी का सच' एवं 'भोपाल गैस त्रासदी 25 साल' नामक पुस्तकों को भी आदेश में आधार बनाया गया हैं।' कोर्ट ने कहा :

"मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों और दस्तावेजों से प्रथम दृष्ट्या दर्शित होता है कि

जहरीली गैस रिसाव में भोपाल के अंदर हजारों लोग मर रहे थे और जिले के मुखिया कलेक्टर तथा पुलिस अधीक्षक अपनी बुद्धि और सिस्टम का उपयोग आम जनता को बचाने के बजाए एक अपराधी को भगाने के लिए कर रहे थें। पूरी योजना बनाकर साधन उपलब्ध कराया।"[24]

नरसिम्हा राव को विवादास्पद बनाने में अर्जुन स्वयं फँसे-

राज्यसभा में भोपाल गैंस त्रासदी पर बहस में हिस्सा लेते हुए अर्जुन सिंह ने कहा कि इस सिलसिले में मेरे ऊपर लगाये गये सारे आरोप निराधार हैं। उन्होंने इस मामले में राजीव गाँधी का बचाव करते हुए यह भी कहाँ कि "राजीव गाँधी ने एंडर्सन के संबंध में एक भी शब्द नहीं कहा था। उनपर किसी तरह का आरोप लगाना बिल्कुल बेबुनियाद है।" किन्तु जब उन्होंने यह कहा कि एंडर्सन को जमानत देने के लिए मेरे पास गृहमंत्रालय से फोन कॉल आये थे और इसके आधार पर मैंने मुख्य सचिव पर फैसला छोड़ दिया था। अर्जुन सिंह के बयान पर प्रतिक्रिया तीखी करते हुए विपक्ष ने कहा कि अब न तत्कालीन गृहमंत्री नरसिम्हा राव जी जीवित हैं और न मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्य सचिव ही जीवित हैं। इन स्वर्गीय लोगों के मरने के कईएक साल बाद अब अगस्त 2010 में उन्हें घसीटना गलत है।[25]

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने भी इस बात पर आश्चर्य जताया था कि एंडर्सन को भोपाल हवाई अड्डा पर गिरफ्तार कर कुछ ही घंटों में उन्हें छोड़ दिया जाना तथा मध्यप्रदेश के सरकारी विमान से उन्हें दिल्ली पहुँचाये जाने के बाद वहाँ से एंडर्सन को अमेरिका से कभी ट्रायल के लिए भी न आने की स्थिति आश्चर्यजनक थी। चौहान ने अर्जुन सिंह से पत्र लिख कर एंडर्सन से जुड़ी तमाम घटनाओं पर स्पष्टीकरण देने को कहा था। इस प्रकार राव को फँसाने के चक्कर में अर्जुन सिंह स्वयं विवाद में फँस गये थे। भोपाल के तत्कालीन कलेक्टर मोती सिंह ने भी भोपाल गैस त्रासदी पर लिखी अपनी पुस्तक में यह जिक्र किया है कि उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री के आदेश पर ही एंडर्सन को छोड़ा था। मध्यप्रदेश सरकार से गुप्त ढंग से भोपाल से दिल्ली एंडर्सन को पहुँचाये जाने का वाकया शंका की सुई को अर्जुन सिंह की ओर मोड़ देता है। ऐसा यदि उनकी जानकारी तथा आदेश के बगैर किया गया होता तो इन सभी अधिकारियों पर मुख्यमंत्री दण्डात्मक कार्रवाई अवश्य किये रहते। किन्तु ऐसा कुछ नहीं किया जाना अर्जुन सिंह को कटघरे में खड़ा करता है तथा स्वर्गीय नरसिम्हा राव, भारत के तत्कालीन गृहमंत्री को विवाद से मुक्त करता है।

मूल्यांकन-

नरसिम्हा राव में ज्ञान, धैर्य और शिष्टाचार का ऐसा मिश्रण दिखाई पड़ता है जैसा विरले नेता में मिलता है किन्तु उनके साथ विडम्बना है कि जिस राव ने काँग्रेस की सेवा जीवनपर्यंत की तथा अपनी क्षमता के बदौलत काँग्रेस संगठन और सरकार में सर्वोच्च पद तक पहुँचे, उसी काँग्रेस ने उनके जीवन के अंतिम चरण में उनकी निम्नतम अपेक्षा की। यहाँ तक की मृत्यु के बाद उनकी लाश को काँग्रेस हेडक्वाटर्स में प्रवेश भी नहीं करने दिया। वास्तव में काँग्रेस 1971 के बाद इन्दिरा परिवार की पार्टी बन गई थी जिसे नरसिम्हा राव ने खूब समझ लिया था। इस परिवार के इस अहंकार को भी समझ लिया था कि इसे विरोध सहन का स्वभाव नहीं है। यही कारण था कि जब 1984 में सिखों के

विरुद्ध दंगा हुआ तो वो गृहमंत्री होते हुए भी दंगा रोकने में कोई कारगर भूमिका निभाने का साहस नहीं जुटा सके, वरना उनका काँग्रेस में राजनीतिक कैरियर समाप्त हो जाता। गृहमंत्री के रूप में वे दंगा रोकने के लिए सांविधानिक हक तो रखते थे किन्तु राजनीतिक व्यवहारिकता की माँग थी कि यदि उन्हें राजनीति में जीवित रहना है तो प्रधानमंत्री का विरोध इस संवेदनशील मामले में नहीं करना पड़ेगा। यही स्थिति उनकी भोपाल जहरीली गैस लीक कांड में भी एंडर्सन की गिरफ्तारी और उसके छुटने के मामले में हुई। अर्जुन सिंह अत्यंत चतुर और राजीव परिवार के करीब रहनेवाले नेता थे। वे प्रधानमंत्री से सीधे जुड़े हुए थे। अतः उन्होंने गृहमंत्री की उपेक्षा करने की हिम्मत दिखाई और एंडर्सन को अपने इशारे से ही मध्यप्रदेश के सरकारी विमान से दिल्ली पहुँचवा दिया। यह कार्य करवाने की हैसियत न तो भारत के गृहमंत्री को उस समय थी न भोपाल के जिला कलेक्टर तथा आरक्षी अधीक्षक को, लेकिन कमजोर ही बलि का बकरा बनता है। मृत्यु के बाद नरसिम्हा राव को अर्जुन सिंह ने अपनी आत्मकथा लिख कर विवादास्पद बनाने का काम किया जिसका अब वे जवाब नहीं दे सकते थे। वास्तव में राजनीति में जीवन्त बने रहने के लिए दिल्ली दरबार (इन्दिरा काँग्रेस) के सामने नतमस्तक रहने के सिवा नरसिम्हा राव के पास कोई विकल्प नहीं था। वे जीवंत रहने (सर्वाइवल) की कला के माहिर खिलाड़ी थे। यही कारण था कि भारत के गृहमंत्री होने के दायित्व से ज्यादा उन्हें इन्दिरा-राजीव परिवार की वफादारी को महत्व दिया।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. सीतपति, विनय, हाफ लायन : हाऊ पी०वी० नरसिम्हा ट्रांसफॉर्म्ड इन्डिया, गुड़गाँव, वाइकिंग-पेंगुईन, 2016, पृ० 58-59
2. चड्डा, माया, एथनीसिटी, सिक्योरिटी ऐंड सेपरेटिज्म इन इन्डिया, न्यूयॉर्क : कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ० 135
3. मुखर्जी, प्रणव, द टर्बुलेंट इअर्स : 1980-1986, न्यू देल्ही : रूपा पब्लिकेशन्स, 2016, पृ० 34
4. सिंह, नटवर, वन लाईफ इज नॉट एनफ, न्यू देल्ही : रूपा पब्लिकेशंस, 2014, पृ० 232
5. राजेश्वर, टी०वी०, इन्डिया द क्रूसियल इअर्स, के प्रकाशित अंश, httsps:// harperbroadcast. com/ 2015/10/30 the assassination-of-indira-gandhi-an-excurpt-from-india-the-gucicl-years/cespon, vfHkxeu 22 July 2018.
6. इन्दिरा गांधी की हत्या की जांच कर रही न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा आयोग को सौंपे गये लिखित बयान में नरसिम्हा राव को हत्या के समय दिल्ली के बाहर होने की बात कही है। देखें सीतापति, पू०उ०, पृ० 62 तथा पृ० 339, नोट सं० 30 किन्तु प्रणव मुखर्जी ने अपनी पुस्तक, द टर्बुलेंट इअर्स 1980-1996, पू०उ०, पृ० 73 में लिखा है कि राव 31 अक्टूबर को दिल्ली में ही थें।
7. फजल, रेहान, "सिख विरोधी दंगे : राजीव गांधी ने कहा था 'बड़ा पेड गिरने पर हिलती है धरती...", बी०बी०सी० हिन्दी, 01 नवम्बर 2017, https.//www.google.com/search अभिगमन तिथि 08-09-2018
8. किदवई, राशिद, 24, अकबर रोड, गुड़गाँव : हैचेट इन्डिया, 2011, पृ० 160
9. राजीव गांधी उद्धृत, फजल, पू०उ०
10. वही
11. वही

12. वही
13. वही
14. सीतापति, विनय, हाफ लायन : हाउ पी०वी० नरसिम्हा राव ट्रांस्फॉर्म्ड इन्डिया, पू०उ० पृ० 63.
15. मिश्रा, मनोज तथा फूल्का, एच०एस०, व्हेन अ ट्री शूक देल्ही, न्यू देल्ही : रोली बुक्स किंडल् एडिशन, 2008 (खण्ड I का सातवां अध्याय)
16. वही (खण्ड-1, "सातवां अध्याय'' मास्टर्ली इनैक्शन'')
17. वही
18. वही, इस पुस्तक का' एनेक्चर''।
19. सीतापति, पू०उ०, पृ0 63.
20. वही, पृ० 65
21. भोपाल्स डेडली लिगैसी, "द न्यूयॉर्क टाइम्स,'' 4 दिसम्बर 2014.
22. सिंह, अर्जुन (चौपड़ा के साथ) अग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम : ऐन ऑटोबायोग्राफी, न्यू देल्ही : हे हाउस इन्डिया, 2012, पृ०-176.
23. वही, पृ० 179
24. सिंह, बलराम, "भोपाल गैस त्रासदी : 32 साल बाद एंडर्सन को भगानेवालों पर केस दर्ज, कलेक्टर-एस०पी० के खिलाफ आपराधिक मामला" पत्रिका, नवम्बर 20, 2016. https// google.com/search? अभिगमन तिथि 15.09.2018.
25. "भोपाल गैस काण्ड : अर्जुन ने राजीव का बचाव किया," बी०बी०सी० न्यूज हिन्दी, 11 अगस्त, 2010 https:// google.com/search? अभिगमन तिथि 18.09.2018.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद आंदोलन एवं प्रभावित क्षेत्र के नागरिकों के जन जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव

* हृदयराम

सारांश– *अविभाजित मध्यप्रदेश में छत्तीसगढ़ के क्षेत्र को एक पिछड़ा, आदिवासी एवं बीमारू, समस्याओं से ग्रस्त क्षेत्र माना जाता था। 1 नवम्बर 2000 को जब छत्तीसगढ़ भारत के नक्शे पर 26 वें राज्य के रूप में उदित हुआ, उस समय प्रथम मुख्यमंत्री श्री अजीत जोगी ने अपनी सभाओं में कहा था कि छत्तीसगढ़ एक धनीप्रदेश है, परन्तु यहाँ गरीब लोगों का निवास है। इसका कारण यह था कि मध्यप्रदेश को छत्तीसगढ़ से 44 प्रतिशत राजस्व प्रदान किया जाता था। परन्तु छत्तीसगढ़ के विकास में उसके अनुपात में बहुत कम खर्च होता था। जबकि प्रचुर खनिज मात्रा से सम्पन्न यह प्रदेश अनेक समस्याओं के बावजूद अपनी 14 वर्ष की उम्र में ही अनेक मामलों में भारत में प्रथम नम्बर पर पहुँच चुका है। प्रस्तुत अध्ययन में बस्तर संभाग में नक्सलवाद आन्दोलन के कारणों तथा प्रभावित क्षेत्र में इसकी व्यापकता का अध्ययन करने के पूर्व, नक्सलवाद आन्दोलन के उदय एवं विस्तार की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। गुलामी के गहन अंधकार में मुक्ति का प्रकाश निहित है। इतिहास की इस सच्चाई को एक बार पुनः हकीकत के धरातल पर ला खड़ा करने का प्रयास है। पिछड़ा अंचल माने जाने वाले बस्तर के भोले-भाले बस्तरिया आदिवासी जब-जब निहत्थे लोगो पर साम्राज्यवादी, सत्तालोलुप आंतकियों का अत्याचार और दमन मानवता की हद को पार कर अमानुषिकता की ओर बढ़ा है तब-तब पीड़ित जनता मे दमन और आंतक से मुक्ति के लिए आंदोलन का बिगुल बजाकर अपनी अदम्य ताकत का न केवल अहसास करवाया है, अपितु अत्याचारियों कि जड़ो को हिलाकर उनसे छुटकारा भी पाया है। भारत के संदर्भ में देखे तो भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक अनेकानेक आंदोलन विभिन्न स्तरों पर होते रहे है। बस्तर का नक्सल आन्दोलन के मूल में देखा जाय तो व्यवस्था में अंसतोष सर्वप्रमुख कारण है। सामाजिक आंदोलन का उद्देश्य व्यक्तियों की अर्न्तक्रियाओं, सामाजिक संस्थाओं अथवा सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण या आंशिक परिवर्तन लाना होता है।*

मुख्य शब्द– नक्सलवाद, व्यवस्था में असन्तोष, वर्ग संघर्ष, सशस्त्र विद्रोह

नक्सलवाद एक विचारधारा है जो मुख्यतः वर्ग संघर्ष पर आधारित है। यह पिछड़े दलितों व शोंषितो का शोषक वर्ग कें विरूद्ध किया गया एक सशस्त्र विद्रोह है, जिसका मूल कारण आर्थिक एवं सामाजिक शोषण है। इसका आदर्श सामाजिक, न्याय की स्थापना कर शोषण मुक्त समाज का निर्माण करना है। नक्सलवाद आंदोलन के संचालक

* ग्राम मलपुरी, खुर्द, पोस्ट अहिवारा, तहसील धमधा, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

अपने इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आम व्यक्ति का आव्हान करते हैं। नक्सलवादी कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचार का विरोध करते हुए आम व्यक्ति को अत्याचार के प्रतिकार के लिए तैयार करते है। दरअसल अत्याचार का विरोध भारत के प्रत्येक महापुरूष ने समय-समय पर किया और गांधी जी ने देश की करोड़ो जनता को अंग्रेजो के अत्याचार के खिलाफ एक ऐसा विरोध खड़ा कर दिया था जो स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में तब्दील हो गया।

नक्सलवाद की शुरूवात 1967 में पश्चिम बंगाल राज्य के सुदूर उत्तरी जिला दार्जिलिंग के सिलीगुड़ी तहसील का एक भाग नक्सलवाड़ी नामक स्थान से एक किसान विद्रोह के रूप में हुई थी। जो नेपाल सीमा से तकरीबन 8 कि.मी. की दूरी पर स्थित है, इस किसान विद्रोह के नेता थे कामरेड चारू मजुमदार तथा कामरेड कानु सन्याल। प्रारंभ में इस आंदोलन का स्वरूप सुधारवादी था। इसका उद्देश्य दलितों, पिछड़ो एवं जनजातियो के रीति-रिवाजों को सुरक्षित करना तथा उनकी समस्याओं का सुधार करना था। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित मात्रा में जमीन मिले। मालिक और मजदूर एक समान हो, इनके बीच का मतभेद समाप्त हो जाये। इस तरह नक्सलवाद कार्लमार्क्स के विचारों पर आधारित है।

नक्सलवाद के जनक चारू मजुमदार के कुछ अनुयायियों ने गरीब और बेरोजगारों को लालच देकर धीरे-धीरे अपना संगठन खड़ा करने में सफलता प्राप्त कर ली, उनका उद्देश्य गरीबों को रोटी कपड़ा और मकान दिलाना और इसके लिए मालदारों और विरोध करने वालो को लूटना था। इसे इन्होंनें सामाजिक न्याय का नाम दिया।

बड़े अखबारों मे नक्सलबाड़ी के विषय में समाचार मई के अंत में प्रकाशित हुआ, जिसमें सूचना दी गई थी कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थानीय यूनिट के नेतुत्व में आदिवासी किसानों की एक टोली ने इस इलाके को अपने नियंत्रण में ले लिया है और वह देशभर मे सशस्त्र संघर्ष द्वारा सत्ता हथियानें का प्रचार कर रही है। 22 मई को गांव के अमीरों और किसानों के बीच पहली भिडंत हुई जब एक जमींदार ने अदालत के आदेश के खिलाफ एक गरीब काश्तकार को उसकी जमीन से जबरन बेदखल करने की कोशिश की दूसरे दिन पास की एक जागीर के समीप पर काबीज आदिवासियों व संतरियों के बीच झड़प हुई, 24 मई को पुलिस की जवानों की एक टुकड़ी भेजी गई जहां घात लगाकर हमला किया गया जिसमें एक अफसर मारा गया। अगले दिन गांव मे एक और बड़ा पुलिस दस्ता भेजा गया वहां पर आदमियों के न मिलने कारण प्रदर्शन कर रहें महिलाओं और बच्चों पर गोलियां चलाई जिसमे नौ व्यक्ति मारे गये पुलिस की इस प्रतिशोधात्मक कार्यवाही से आदिवासी आग बबुला हो उठे और वे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के स्थानीय नेताओं के पीछे लामबंद हो गये।

हॉलाकि अधिकांश लोग इस घटना के पहले नक्सलवाड़ी के विषय में नही सुना था। कम्युनिस्ट इस इलाके में छठे दशक के मध्य से सक्रिय थे। 1959 में आदिवासियों को सभी प्रमुख मुद्दों पर संगठित करने का पहला गंभीर प्रयास किया गया था। सबसे पहत्वपूर्ण मुद्दा था आदिवासियों को उस जमीन बेदखल किया जाना जिसकी उन्होनें सफाई और जुताई की थी जमीन का लेखा-जोखा ठीक प्रकार से नहीं रखा जाता था और आदिवासियों को खुद जमीन संबंधी कानून की पेचीदगियों की जानकारी नहीं थी। जिससे

वन विभाग के अधिकारियों और स्वार्थी जमीदारों के साथ टकराव में ले आती जो जंगल साफ होते ही मिल्कियत का दावा करने लगते थे। माओवादियों द्वारा आदिवासियों के बीच इस अभियान के दौरान कर्जो के जबरदस्त बोझ, कर्जे की रकम पर सूद की भारी दर नियत अवधि पूरी हो जाने पर जमींदारो द्वारा गिरवी जमीन वापस देने से इनकार और इस प्रकार से अन्य मसले उठाये गए थे। गरीब और अनपढ़ होने के कारण आदिवासी धनवान निहित स्वार्थो के खिलाफ अपने संघर्षो का नेतृत्व करने के लिए माओवादियों पर निर्भर करते थे।

वर्तमान में यह आंदोलन प्रमुख रूप से आंधप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखण्ड, बिहार आदि राज्यों में प्रमुख समस्या बना हुआ है। आज नक्सलवाद भारत के 16 राज्यों में अपना पैर पसार चुका है तथा अनेक ग्रामों मे इसके विस्तारित होन की आशंका व्यक्त की जा रही है। गृह मंत्रालय की एकता रिपोर्ट के मुताबिक शहरों में पढ़े लिखे उच्च शिक्षित एवं बेरोजगार युवा, छात्र तथा विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोग उनके निशाने पर है। नक्सली आंदोलन शुरू करने वाले पूरी तरह माओ की इस विचारधारा में विश्वास करते है ''कि राजनीतिक सत्ता बंदूक की नली में से निकलती है''। उसके लिए उन्होनें पड़ोसी देशो मे सक्रिय आतंकवादी संगठनों से भी गहरे संबंध स्थापित किये है। नेपाल के माओवादी श्रीलंका और बंग्लादेश के आतंकवादी संगठनों के जरिये उन्हें लगातार हथियारों की आपूर्ति करते रहें है। ये हथियार उड़ीसा ओर आंधप्रदेश के तटीय इलाकों से तस्करी के जरिये लाए जा रहे है। ऐसे दूर दराज और निर्धन इलाके नक्सली गतिविधियों के लिए वरदान साबित हो रहे है। स्वतंत्रता के छःदशक से अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद भी भारतीय समाज में जहां एक वर्ग सर्वसुविधा युक्त आराम देह जीवन व्यतीत कर रहा है वहीं समाज का दूसरा वर्ग मुख्यतः जनजातीय समाज दो वक्त की रोटी के लिए आज भी संघर्ष कर रहा है। कहावत है बड़ी मछली, छोटी मछली को निगल जाती है, ठीक उसी प्रकार छोटी मछली की भूमिका मे दलित आदिवासी कमजोर वर्ग है दूसरी ओर बड़ी मछली की भूमिका में साहूकार, महाजन, ठेकेदार एवं भ्रष्ट अधिकारी व कर्मचारी एवं जनप्रतिनिधि हैं। इन शोषक तत्वों ने कमजोर वर्ग का न केवल शोषण किया बल्कि इनके विकास को बाधित भी किया। भारतीय संविधान में यद्यपि कमजोर वर्ग के उत्थान व संरक्षण के अनेक प्रावधान किये गये है किन्तु वे भी इस वर्ग को शोषण से मुक्ति नहीं दिला सके। समय-समय पर शोषितों ने शोषकों से अपना हक मांगा लेकिन शोषकों ने इसे सत्ता के खिलाफ बगावत समझा और शोषण का चक्र और तेज कर दिया। कुछ शोषितों ने इस शोषण के खिलाफ सीना तान कर खड़े हो गये यहीं से शुरू हुआ एक ऐसी लड़ाई जिसमें वे सर पर कफन बांध अपनी लूटी-पिटी पहचान की तलास मे निकल पड़े। शोषित शोषणकर्ता तत्वों से आरपार की लड़ाई लड़ते हुए अपना हक मांगना नहीं वर्‌न हासिल करना चाहते है। वे चाहते थे व्यक्ति को उचित मात्रा में जमीन मिले, मालिक और मजदूर एक समान हो सके इनके बीच का मतभेद समाप्त हो जाये।

इस प्रकार नक्सलवाद आन्दोलन का जन्म एक नई चेतना, एक नई शक्ति का जन्म था, जिसका लक्ष्य कार्लमार्क्स व लेलिन के विचारधारा का अनुशरण एवं माओत्सेतुंग के बंदुक की ताकत से सत्ता प्राप्त करने के सिद्धांत का पालन कर भारतीय सामाजिक

राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह से नेस्तानाबूद करना था। नक्सलवाद के जनक चारू मजूमदार ने जनवरी 1965 से 1967 तक पार्टी कामरेडों को आठ पत्र लिखे थें। इन पत्रों में भारत में क्रांति का प्रतिपादन का स्वरूप पेश किया गया था। बाद मे यही आठ पत्र नक्सलियों का दर्शनशास्त्र बना। ये लोग नक्सलवाड़ी का नेटवर्क पूरे देश में स्थापित कर ग्रामीण जनता को एकत्र राज्य की सत्ता को छीनना चाहते थे। वर्तमान में भी नक्सलवाद की रूमानी क्रांतिकारी अवधारणाआ से लिपटे हजारों नौजवान आजादी के छः दशक से अधिक समय बाद भी मतपेटियों के स्थान पर माओ की अवधारणा के अनुरूप बन्दूक की नलियां और बारूदी सुरंगों के जरिए क्रांति को आकार देने में जुटे हैं। यह तथ्य ये भी जानते हैं कि बंदूक की नलियां क्रांति नहीं है पर वे इन्हें जन क्रांति का उपकरण मानते हुए वैकल्पिक व्यवस्था के निर्माण में लगे हुए हैं जिसका तात्पर्य पुलिस व नक्सली के मध्य कार्यवाहियां, हिंसा व खून-खराबे के नये मोर्चे खोल रही है, जिसमें इस टकराव में शामिल लोगों के अलावा वे लोग भी प्रभावित हो रहे हैं जिनका इस खूनी वर्ग संघर्ष से कोई सरोकार नहीं। नक्सलवादियों की उपस्थिति से भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी, व्यापारी के हौसले जरूर पस्त पड़ गये हैं।

नक्सलियों की कार्यप्रणाली भी समय के साथ परिवर्तित हुई है। पहले वे शोषितों को न्याय दिलाने तक ही सीमित थे लेकिन अब उनकी कार्यप्रणाली का विस्तार हो चुका है। समर्पित नक्सलियों का कहना है कि वे ट्रेनिंग कैम्प चलाते हैं और अपने संगठन के लिए आधुनिक हथियारों का प्रशिक्षण प्राप्त कर आत्मघाती कार्यवाहियों को अंजाम देने में तत्पर रहते हैं तथा साहित्य का प्रकाशन भी करते हैं। वर्तमान में नक्सलवाद न केवल भारत की आंतरिक समस्या है वरन् यह एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में सामने आया है जो कि भविष्य में एक बड़ी चुनौती बन सकती है। नक्सली शोषण का प्रतिकार हिंसा द्वारा करते हैं। नक्सली आन्दोलन जिसे अपने प्रारंभिक चरण में व्यापक समर्थन मिला था, वर्तमान में आतंकवादी संगठन एवं व्यक्तियों के हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराये जाने लगा। नक्सलियों पर अवैध वसूली एवं सिद्धांतों से विमुख होने के आरोप भी लगने लगा है।

छ.ग. में नक्सलवाद के उदय के प्रमुख कारण–

1. राजनीतिक मत भिन्नता
2. दलितों एवं आदिवासियों का शोषण
3. बेरोजगारी एवं भूखमरी
4. शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार
5. गरीबी एवं शोषण
6. प्रशासनिक उदासीनता
7. प्रशासन के प्रति जनता का अविश्वास
8. विकास योजनाओं का सही क्रियान्वयन न हो पाना
9. विभिन्न राज्यों में समन्वय का अभाव
10. स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक व राजनैतिक हस्तक्षेप
11. क्षेत्रीय समस्याओं का राजनीतिकरण
12. मद्यपान की समस्या

13. अशिक्षा एवं अज्ञानता
14. मीडिया का नकारात्मक प्रभाव
15. प्राचीन परंपराओं एवं अंधविश्वासों का प्रभाव
16. प्रदेश में व्याप्त सामाजिक आर्थिक असमानता

नक्सलवाद के विकसित होने के कारण–

1. अंधविश्वास व कुप्रथायें को मान्यता देना।
2. सरकार से पर्याप्त सहयोग न मिलने व मुसीबतें मिलने के कारण आदिवासी नक्सललियों को अपना मददगार मानने लगे।
3. श्रम पलायन एवं जल, जंगल, जमीन के लिए सतत् संघर्ष।
4. सड़क एवं यातायात का अभाव।
5. बस्तर में वन विभाग, पुलिस और राजस्व के अधिकारी/कर्मचारी अपने जनविरोधी रवैये के कारण आदिवासियों में अलोकप्रिय एवं शत्रु हो चुके थे।
6. नौकरशाही के शोषित आचरण के विरूद्ध नक्सलियों के सहयोग पर विश्वास।
7. राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी।
8. स्थानीय परिथितियाँ।
9. ग्रामीण इलाकों में संचार के साधनों की कमी, गरीबों को रोजगार उपलब्ध न हो पाना। वन संरक्षण का कड़ा कानून, गरीबों का शोषण, पेयजल की समस्या, बिजली का न होना आदि कारण नक्सलियों के हित में शामिल हुए।
10. शासन की नीतियों का असफल होना।
11. आजादी को छः दशक से अधिक समय बीत जाने के बाद भी आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा 50 प्रतिशत तक नहीं पहुंच पाई है।
12. उन राज्यों में नक्सलियों ने पांव जमाये जहां आदिवासियों की संख्या ज्यादा है।
13. भ्रष्टाचार व लालफीताशाही।
14. नक्सलियों के लिए भौगोलिक आधार पर सुरक्षित स्थान।
15. जो इलाके राज्यों की राजधानी व जिला मुख्यालयों से दूर है, तथा यह इलाके कई राज्यों की सरहद को जोड़ते हैं।
16. झूठे आश्वासनों व घोषणाओं का प्रतिकूल प्रभाव।

बस्तर संभाग में सन् 2000 में राज्य निर्माण के बाद राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा विकास के अनेक कार्यक्रम व योजनाएँ पंचायत के माध्यम से संचालित किये गये हैं। परन्तु अधिकारियों द्वारा उनका सही क्रियान्वयन न किये जाने तथा स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा अधिकतर समय राजधानी में बिताने से स्थानीय आदिवासी विकास की मुख्य धारा से अभी भी कटे हुए हैं और उनकी स्थिति पुलिस और नक्सलवादियों के बीच एक तरफ खाई और एक तरफ कुआँ जैसी हो चुकी है, क्योंकि नक्सली उन्हें मुखबिर समझकर मारते हैं और पुलिस नक्सली समझकर। इसलिए आज भी बस्तर संभाग नक्सली समस्या से उबर नहीं सका है। इसके लिए जमीनी स्तर पर सभी राजनैतिक दलों को एक साथ मिलकर प्रयासकरने की आवश्यकता है।

बस्तर के नक्सलियों पर भारत के अन्य प्रदेशों में घटने वाली घटनाओं का भी प्रभाव पड़ रहा है और वहाँ से यहाँ के नक्सलियों को हथियार व अन्य सहयोग प्राप्त हो

रहे हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में नागा जनजाति बाहुल्य वाले नागालैण्ड की अपनी परम्परा, संस्कृति रही है। इन जनजातियों के जीवन यापन का मुख्य साधन ''झूम'' कृषि है। ये लोग अपने अधिकारो के प्रति सदैव सजग रहते है। अपने अधिकारो के खिलाफ आवाज बुलंद करना इन्हें बखूबी आता है। अवसर आने पर ये मुखिया के विरूद्ध भी लामबंद हो जाते है। इन जातियों का अतीत भी शोषण और अत्याचारों से भरा रहा है। अंग्रेज सरकार ने इनका जमकर शोषण किया। इन जनजातियों ने अपने शोषण का विरोध करते हुये अंग्रेज मुगल और अहोम राजाओं के खिलाफ जंग छेड़ी। नागाओं ने अपने शोषण की समाप्ति एवं अधिकाधिक स्वायत्तता एवं अधिकार को प्राप्त करने हेतु आन्दोलन का संचालन किया इसी के फलस्वरूप 1962 में नागालैण्ड को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।

स्वतंत्रता के बाद भी केन्द्र सरकार से नागा जनजातियों के कटु संबंधों की एक लंबी दास्ता रही है। वर्तमान में भी नागा जनजातियों का आंदोलन समय-समय पर उग्रता धारण कर लेता है। उपर्युक्त प्रमुख जनजातीय आंदोलन के प्रकाश में एक बाद स्पष्ट होती है और वह यह कि जनजातियों ने प्राचीन समय से ही अपने शोषण के विरूद्ध हिसंक प्रतिकार किया है एवं समय-समय पर अपने क्षोभ को व्यक्त किया है। एक तथ्य यह भी सर्वविदित है कि भारत में जनजातियों सदियों से होकर आज आपको समाज की मुख्यधारा में कटा हुआ महसूस करती है, शासन की विकास योजनाओं की भरमारता एवं अनेक लोकलुभावन योजनाओं का लाभ भी प्रशासनिक अक्षमता के कारण इन तक नही पहुंच सका है। इसीलिये इन जनजातियों में स्थापित सत्ता के प्रति आक्रोश उमड़ता रहता है जो कि विद्रोही के रूप में प्रस्फूटित होता है। नक्सलवादी आंदोलन को वर्तमान में जनजातीय वर्गो का व्यापक समर्थन प्राप्त है। यही कारण है कि नक्सलवादी भी जनजातीय क्षेत्रों के अविकसित रह जाने, उनके शोषण, उन पर अत्याचारों के खिलाफ उनको संगठित करने में सफल हो रहे है। सदियों से व्याप्त जनजातीय असंतोष नक्सलवाद की उर्वरा भूमि सिद्ध हो रहा है।

नक्सलवाद आंदोलन : प्रारंभ एवं विस्तार के चरण

नक्सलवाद पर कोई भी विचार साम्यवाद आंदोलन के व्यापक संदर्भ को छोड़कर नहीं किया जा सकता। मार्क्सवादी-लेनिनवादी भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी पीपुल्सवार ग्रुप की सोच है यह अकारण नहीं है कि जिस क्रम में भारत में साम्यवादी आंदोलन निस्तेज हुआ है, उसी क्रम में नक्सलवाद ने जोर पकड़ा है। वस्तुतः नक्सलवाद का जन्म ही इसलिये हुआ था क्योंकि भारत का साम्यवादी आंदोलन अपनी किताबी आवस्थाओं के प्रति वफादार नहीं रह गया था। 1964 में भारत की कम्युनिष्ट पार्टी का पहला विभाजन हुआ। इसका कारण या कम्युनिष्ट नेतृत्व का चीन के प्रति दृष्टिकोण चीनी आक्रमण कम्युनिष्ट पार्टी का पहला विभाजन हुआ। इसका कारण था चीनी आक्रमण के समय कम्युनिष्ट पार्टी के दो गुटों के बीच वैचारिक मतभेद उभर आए। एक गुट चीन को आक्रमण नहीं मानकर उसके सभी दावों का सही मान रहा था। दूसरा गुट चीनी आक्रमण के विरोधी (परम्परावादी गुट) ''भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी'' से बने रहे। परिवर्तनवादी गुट ने स्वयं की पार्टी का नाम दिया। भारत की मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी (सी.पी.आई.एम)। सी.पी.आई.एम. के नेता चारू मंजूमदार को एक तरह से भारत में नक्सलवाद आंदोलन

का जनक कहा जाता है, क्योंकि इन्होने जनवरी 1965 से मई 1967 तक पार्टी कामरेडो को आठ पत्र लिखे थे। इन पत्रों में भारत में क्रांति प्रतिपादन का स्वरूप पेश किया गया था। बाद में यही आठ पत्र नकसलियों का दर्शनशास्त्र बने। चारू मजूमदार द्वारा लिखे गये ये आठ पत्र एक तरह से नक्सलवादियों के मूलभूत दस्तावेज बन गये, इसी कारण जब 22 अप्रैल 1969 को लेनिन की जन्म शताब्दी पर ''कम्युनिष्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)'' की स्थापना हुई तो इन्हें पार्टी के सिद्धांतो के रूप में अपनाया गया।

इन बुनियादी दस्तावेजों में जिन सिद्धांतो की संरचना की गई है वह मार्क्स और लेनिन से भी चार कदम आगे है। ये सिद्धांत है-

1. भारतीय क्रांति सशस्त्र आंदोलन से ही सफल हो सकती है-
2. इसका आधार सोवियत नहीं चीनी क्रांति होनी चाहिये तथा
3. भारत में सशस्त्र संघर्ष को माओ-त्से-तुंग द्वारा बताये गये जन युद्ध का रूप लेना चाहिये। साथ ही चारू मंजूमदार ने यह भी घोषणा की कि यह उन्हीं लोगो का सहयोग करेंगे जो-

1. माओ को विश्व क्रांति का नेता मानते है और वर्तमान युग में उसके विचारों को मार्क्सवाद लेनिनवाद का सर्वोच्च रूप समझते हैं।
2. यह स्वीकार करते है कि भारत में हर क्रांति के अंकुर मौजूद है।
3. यह मानते है कि एक-एक जगह धीरे-धीरे सत्ता हथियाने से ही क्रांति लाई जा सकती है तथा
4. गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से ही क्रांति रंग ला सकती है।

1967 में कम्युनिष्ट पार्टी का दूसरा विभाजन हुआ। सी.पी.आई.एम. के अतिवादी गुट ने चारू मजूमदार, कानू सान्याल, सरोज दत्त आदि नेताओं के नेतृत्व में पूर्णतया माओवादी लाईन पर एक संघर्ष चलाकर जनवादी क्रांति के लिये लड़ने का निर्णय लिया। तब कम्युनिष्टों का एक नया दल अस्तित्व में आया, मार्क्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिष्ट पार्टी। इस गुट के नेताओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में जनवादी क्रांति का नारा देकर एक भूमिगत हिंसात्मक आंदोलन चलाने का प्रयास किया। नक्सलवाद की पहली चिंगारी उस वक्त भड़की जब साम्यवादी और गैर-कांग्रेसवाद की रणीनीति के तहत संयुक्त मोर्चा सरकारों में शामिल हुये। 1967 में आठ राज्यों में पहली गैर-कांग्रेसी सरकारें बनी। उस वक्त कुछ लोगों ने अब अपना राज्य आ गया है और कुछ भी किया जा सकता है, लेकिन सत्ता में शामिल होने के कारण कम्युनिष्ट एक हद तक संसदीय आचरण से बंधे हुये थे। सामाजिक अराजकता को प्रोत्साहन देने पर उनका सत्ता में बने रहना भी असंभव हो जाता। अतः नक्सलवादियों का पहला वास्तविक टकराव साम्यवादियों से ही हुआ है। नक्सलबाड़ी जहां से प्रारंभ होने के कारण इस आन्दोलन का नाम नक्सलवाद आंदोलन पड़ा, हिमालय की तराई में स्थित है। पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में स्थित यह क्षेत्र लगभग साठ गांवो का समूह है जो नेपाल, बंग्लादेश के निकट तथा तिब्बत से लगभग 120 किमी दूर है। फरवरी 1967 के आम चुनावों में पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चा की सरकार बनना निश्चित हुआ। इस मंत्रिमंडल में मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी वरिष्ठतम् भागीदार थी। पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चा का मंत्री मंडल 2 मार्च 1967 को बना और

3 मार्च 1967 से यह आन्दोलन शुरू हुआ। लेकिन ऐसा नहीं है कि यह आन्दोलन कम्युनिष्ट पार्टी के सत्ता में भागीदार बनते ही अचानक उठ खड़ा हुआ हो क्योंकि इसकी बुनियाद रखने का लाभ 1966 में ही शुरू हो चुका था।

1965-66 में ''सिलीगुड़ी ग्रुप'' ने (जो निर्मित माकपा का था) सशस्त्र क्रांति तुरंत शुरू करने का आव्हान करते हुये कुछ साइक्लोस्टाईल पर्चे निकाले थे। इनमें से एक पर्चे में तराई इलाके में छः महीनों के अन्दर गुरिल्ला युद्ध करने का आव्हान किया था। 1966 में वर्ष भर क्रांतिकारियों ने सिलीगुड़ी उप-संभाग के हर क्षेत्र में किसान प्रकोष्ठ की स्थापना करने का काम किया था, तीर-कमान और कुछ एक राइफलें भी जमा की गयी थी। कुछ ही दूरी पर कार्यरत नेपाली माओवादियों से भी संपर्क बनाया गया था। 1966 के आखिर में सिलिगुड़ी में क्रांतिकारी किसान सभा हुई और 3 मार्च 1967 को संघर्ष के अंकुर फूटने लगे। नक्सबाड़ी इलाके में किसानों के एक-एक जत्थे ने जमीन का एक टुकड़ा घेर लिया, लाल झण्डों से सीमा निर्धारित कर वे फसल काटने लगे।

नक्सलबाड़ी के चारू मजूमदार के समर्थक, किसानों के साथ तीर-कमान, लाठी-दरांती लेकर जमीन के टुकड़ो पर फैला गये उन्होंने लाल झंड़े गाड़कर घोषणा कर दी कि यह जमीन मार्क्सवादियों के किसान संगठन सभा की है। देखते ही देखते 8-0 सप्ताह में ही नक्सलबाड़ी और फांसी देवा पुलिस थानों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में ऐसी लगभग 60 वारदातें जिन पर जबरन कब्जे कर लिये गये, फसलें काट ली गई, चांवल-धान लूट लिये गये।

सत्ता में स्थित माकपा (सी.पी.आई.) के नेताओं ने पहले इस आंदोलन को शांत करने की कोशिश की, असफल होने पर पश्चिम बंगाल के तत्कालीन गृहमंत्री ज्योति वसु ने पुलिस कार्यवाही में एक महिला और बच्चे मारे गये। जून महीने में दार्जिलिंग जिले के तीनों प्रमुख क्षेत्रों नक्सबाड़ी, फांसीदेवा और खादीबाड़ी इलाके में नक्सलवादियों ने जोतदारों के घरों पर हमला कर हथियार और गोला बारूद जब्त किये। नक्सवादियों द्वारा जन अदालतें लगाई गई और फैसले सुनाये गये। यह गतिविधियाँ जुलाई तक चलती रही। सरकार ने कड़े कदम उठाते हुये 19 जुलाई को इलाके में अर्द्ध सैनिक बल तैनात किये। इन अर्द्ध-सैनिक बलों के द्वारा ''घेरा डालो और तलाश करो'' अभियान चलाया गया, जिसमें व्यापक पैमाने पर मारपीट की घटनाएं हुई एवं सौ से अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुये। चारू मजूमदार जैसे नेता भूमिगत हो गये और त्रिवेणी कानू, सोभन अली, गोरखा, माझी और तिलका मांझी जैसे नक्सली नेता मारे गये। कुछ सप्ताह बाद चारू मजूमदार ने लिखा-''नक्सलबाड़ी जिन्दा है और रहेगा क्योंकि वह अजेय मार्क्सवादी-लेनिनवाद और माओ विचारधारा की बुनियाद पर खड़ा है। हम जानते हैं कि हम ज्यों-ज्यों बढ़ते है हमें ज्यादा अड़चनों, ज्यादा मुश्किलों, कई गद्दारी की कार्यवाहियों और कठिनाईयों का सामना करना होगा। लेकिन नक्सलबाड़ी नहीं मरेगा.....''

1967 से प्रारंभ हुआ यह आंदोलन महज 1970 तथा 1971 दो सालों तक ही चोटी पर रहा। योजना के मुताबिक इस आंदोलन का विस्तार व विकास शहरी क्षेत्र में नहीं हो पाया। अगस्त 1971 में सरोज दत्त पुलिस गोलाबारी में मारा गया, जुलाई 1972 में चारू मजूमदार को गिरतार कर लिया गया। जिसकी 28 जुलाई 1972 को जेल में मृत्यु हो गई। 1972 के अंत तक इस आंदोलन के अधिकांश शीर्षस्थ नेता बंदी बना लिये गये थे।

विचारात्मक गतिरोध के कारण पार्टी असंख्यक छोटे-छोटे गुटों में बंट गई थी। सन् 1975 में आपात काल लागू किये जाने के पश्चात आंध्रप्रदेश में माओवादी समूहों की नीति में अत्याधिक बदलाव आया और अपनी गतिविधियों मैदानी इलाकों में फैलाई। विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों, कृषि मजदूरों आदि सभी को क्रांति के दायरे में लाने की कोशिश की गई। आंध्रप्रदेश में आपातकाल के बाद अस्सी के दशक में मुख्यतः दो नक्सली समूहों का बोलबाला रहा।

1. भारतीय कम्यूनिष्ट पार्टी (एम.एल.) सी.पी. ग्रुप
2. भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी (एम.एल.) पी.डब्ल्यू.जी 16

1972 में आंध्र प्रदेश में विधानसभा चुनाव की घोषणा के साथ ही सी.पीग्रुप ने अपनी पूर्व नीति में बदलाव लाते हुये इसमें भाग लेने की घोषणा की। चुनाव में भाग लेने की रणनीति के समर्थन में उनका कहना था कि इसके माध्यम से उनकी ब्यूह रचना लोकतंत्र प्रणाली के बारे में काम को उजागर करने की है।

दूसरी ओर चारू मजूमदार की मृत्यु के पश्चात पार्टी में जो अव्यवस्था फैली इसमें कौड़ापल्ली सीमारमैया ने स्वयं को सी.ओ.सी. ग्रुप के साथ संबंद्ध किया। परन्तु उसने सम्पूर्ण विनाश की नीति व जन आंदोलन के उदय की नीति में अपनी स्वतंत्र नीति जारी रखी। सामान्यतः उसकी नीतियां सी.पी. ग्रुप के मुकाबले ज्यादा विप्लवकारी होने के कारण युवकों में ज्यादा प्रसिद्ध हुई व युवक उसके संगठन में काफी बड़ी संख्या में आकर्षित हुये जिसके फलस्वरूप उसने 1980 में पी. डब्ल्यूजी. (पीपुल्सवार) का गठन किया। पी.डब्ल्यूजी. वामपंथी हिंसा में सर्वोपरि रहा है। व इसने हत्याओं व बारूदी सुरंग विस्फोटो की सर्वाधिक वारदाते की है। वर्तमान में कोड़ापल्ली सीमार मैया के नेतृत्व से हटकर गणपति के नेतृत्व में आकर यह ग्रुप और अधिक उग्र एवं अतिवादी हो गया है इसने आदिवासी इलाकों में प्रवेश करके बेरोजगारी बीच व्याप्त आर्थिक पिछड़ेपन तथा कथित शोषण वर्तमान में नक्सल वादियों का यही समूह सर्वाधिक बलशाली एवं क्रियाशील है तथा यह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पूर्ण रूप में विश्वास करता है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. सोनी, परसराम, (1975) छत्तीसगढ़ मे आतंकवाद, रायपुर, दुरी हटरी प्रेस।
2. कपूर, बीसन, (1967) नक्सलवाद या अकवाद, नई दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ पब्लिकेशन।
3. शुक्ल, डॉ. हीरालाल, (1992) हिस्ट्री ऑफ दि पीपल आफ बस्तर।
4. तिवारी, कनक, (1911) ग्रीन हण्ड।
5. अवस्थी एवं भामरी, (1980) भारत में लोक प्रशासन के सिद्धांत।
6. आमण्ड, ग्रेबिवेल ए., (1963) सिविल कल्चर, प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

भारतीय नागरिकों के संवैधानिक अधिकार

* दिनेश कुमार

सारांश- *जब कोई व्यक्ति निर्धनता के कारण न्यायालय तक नहीं पहुँच पाता है तो उसके लिए न्याय का क्या अर्थ रह जाता है। समाजवादी समाज में अर्थाभाव के कारण न्याय से वंचित रह जाना मूलभूत सिद्धांतो के प्रतिकूल है। यही कारण है कि संविधान के इस अनुच्छेद में सभी को समान न्याय एवं निःशुल्क राज्य की विधिक सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई हैं। यद्यपि यह व्यवस्था राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अधीन है फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि इन दिनों न्यायपालिका इस व्यवस्था को मूल अधिकारों के समरूप करने का प्रयास कर रही है। एम0एम0हास्कट बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी है कि निर्धन व्यक्ति को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराना राज्य का कर्तव्य है न कि अनुकम्पा। ठीक इसी प्रकार सुकदास और अन्य बनाम यूनियन टेरीटरी ऑफ अरूणाचल प्रदेश के मामले मे यह कहा गया है कि निर्धन व्यक्ति के आवेदन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।*

मुख्य शब्द– संवैधानिक अधिकार, अनुसूचित जाति, सामाजिक न्याय, आरक्षण

संवैधानिक अधिकार– भारतीय नागरिकों को प्रमुख संवैधानिक अधिकार निम्न रूपों में प्रदान किए गये हैं-

(अ) **विधिक अधिकार**– हमारे संविधान में समाज के कमजोर वर्ग के लिए कई महत्वपूर्ण व्यवस्थायें की गई है। इन व्यवस्थाओं को भाग चार में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में स्थान दिया गया हैं इनका मुख्य लक्ष्य समाज के ऐसे पीड़ित, व्यथित एंव शोषित वर्ग के लोगों को संरक्षण प्रदान करना है जो आर्थिक, मानसिक अथवा शारीरिक दृष्टि से कमजोर हैं। संविधान के अनुच्छेद 39-क में एक महत्वपूर्ण व्यवस्था समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता की गई है। इस व्यवस्था द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को न्याय के समान अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। जो व्यक्ति निर्धनता के कारण न्यायालय में दस्तक दे पाने मे असमर्थ है, उनके लिए निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था भी इस अनुच्छेद में की गई है। इस अनुच्छेद का मूल पाठ इस प्रकार है- ''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करें कि न्याय के समान अवसर के आधार सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य नियोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा''।

==========================

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

(ब) **सम्मान पूर्ण जीने का अधिकार**– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जीने के अधिकार से जुड़े कई मामले न्यायालय के समक्ष आये। न्यायालयों ने समय-समय पर इस अधिकार की उदार व्याख्या कर इसे सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अर्थ दिया। न्यायालयों ने कहा- जीने का अधिकार मात्र जन्म लेकर मर जाने तक सीमित नहीं है। इसका सम्मानपूर्वक अर्थात आवश्यक सुख-सुविधाओं के साथ एक सम्पूर्ण एवं अर्थपूर्ण जीवन जीने से है। शिक्षा, चिकित्सा, पानी एवं बिजली, रोजी-रोटी, पर्यावरण, त्वरित विचारण, निःशुल्क, विधिक सहायता, समुचित मजदूरी, कार्य की न्यायोचित दशाऐं, आदि अनेक बिन्दु जीने के अधिकार से जुड़े है। इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता हैं।

सूबल बेहरा बनाम इक्जीक्यूटिव इन्जीनियर सी0ई0एस0यू0 भुवनेश्वर, के मामलें में उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा एवं आवश्यक सेवाओं के उपभोग के साथ जीवन का अधिकार है।

(स) **मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय**– संविधान की प्रस्तावना और उसके अनुच्छेद 38 से जिस सामाजिक न्याय की परिकल्पना की गई है वह गरिमा के साथ जीने के अर्थपूर्ण अधिकार से जुड़ी है। सामाजिक न्याय समाज के कमजोर वर्ग की पीड़ा और व्यथा को दूर करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने का अवसर उपलब्ध कराने वाली एक गतिशील युक्ति हैं यह मात्र एक सामान्य विचार नहीं होकर दलित एवं शोषित वर्ग की व्यथा का निवारण करने की गूढ़ अवधारणा है।

सामाजिक न्याय संविधान के उस लक्ष्य को प्राप्त करने की एक अर्थपूर्ण परिकल्पना है जो सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक समानता की गारण्टी देता है। विधि के शासन में वर्ग-विभेद का उत्सर्जन सामाजिक न्याय की ही परिणति हैं संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का आवाहन किया गया है।

(द) **समान कार्य समान वेतन**– संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण की गारण्टी प्रदान की गई है। अनुच्छेद 16 सभी नागरिकों को लोक नियोजन के सम्बन्ध में अवसर की समता प्रदान करता हैं इससे कहा गया है कि लोक नियोजन में किसी नागरिक के साथ केवल धर्म, मूल-वंश, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाय। अनुच्छेद 39 (घ) में यह व्यवस्था दी गई है कि पुरूषों एवं स्त्रियों के समान कार्य के लिए समान वेतन देय होगा। लेकिन जब समान कार्य के लिए स्त्रियों को पुरूषों के समान वेतन से वंचित रखा गया तो उत्तराखण्ड महिला कल्याण परिषद् बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश के मामलें में उच्चतम न्यायालय को यह कहना पड़ा कि पुरूष एवं महिला शिक्षकों के बीच समान कार्य के लिए असमान वेतन देना न्यायसंगत नहीं है।

(इ) **सूचना का अधिकार प्रेस एवं जनसाधारण को**– संविधान के अनुच्छेद 19 (1-क) के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इस स्वतन्त्रता में प्रेस की स्वतन्त्रता भी सन्निहित हैं प्रेस अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रकाशन के माध्यम से कर सकता है। इस स्वतन्त्रता के अन्तर्गत प्रेस को किसी भी व्यक्ति से सूचना पाने का अधिकार है, लेकिन जब प्रेस को इस अधिकार से वन्चित रखने का प्रयास किया गया तो श्रीमती प्रभा दत्त बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया के मामलें में उच्चतम न्यायालय को यह कहना पड़ा कि प्रेस को सूचना पाने के अधिकार से

वन्चित नहीं किया जा सकता है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का महत्व काफी बढ़ गया हैं।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों को सरकारी वकीलों के पदों पर नियुक्ति हेतु-

उत्तर प्रदेश में शासनादेश सं0 डी-3196/सात- वि0म0 88/77 दिनांक 19 अक्टूबर 1977 द्वारा यह निर्देश दिया गया है कि सरकारी वकीलों के पदों पर नियुक्ति हेतु संस्तुत पेनल में अनुसूचित जाति के अधिवक्ताओं के नाम जोड़े जाने चाहिए शासकीय अधिवक्ताओं के पदों पर नियुक्ति हेतु प्रस्ताव बनाते समय अनुसूचित जाति के अधिवक्ताओं का पैनल बनाकर भेजने का निर्देश दिया किया गया है। शासनादेश संख्या डी-3521/सात-वि0में0 3 (5)/77, दिनांक 7 सितम्बर, 1978 के द्वारा प्रत्येक जिले में फौजदारी वकील का एक पद सृजित किया गया है जिस पर नियुक्ति में अनुसूचित जाति/जनजाति के अधिवक्ताओं को वरीयता दी जाती है।

सवैधानिक पद, सेवा क्षेत्री व सम्पत्ति का मानदण्ड- (अनूसुची -दो) धारा-3 (1)

एक-संवैधानिक पद- ऐसे किसी व्यक्ति का पुत्र या पुत्री जो-

(क) भारत का राष्ट्रपति हो (या रहा हो)

(ख) भारत का उपराष्ट्रपति हो (या रहा हो)

(ग) उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय हो (या रहा हो)

(घ) संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य, मुख्य निर्वाचन आयुक्त या भारत के नियंत्रक और महालेखा-परीक्षक (या रहा हो)

(ड़) इसी प्रकार के किसी अन्य संवैधानिक पदों पर आसीन हो (या रहा हो)

दो-सेवा श्रेणी-

(क) अखिल भारतीय केन्द्रीय और राज्य सेवाओं (सीधी भर्ती) के समूह क या श्रेणी एक अधिकारी निम्नलिखित के पुत्र या पुत्री -

(क) जिनके माता-पिता दोनों समूह क या श्रेणी एक के अधिकारी हो,

(ख) जिनके माता-पिता में से कोई भी समूह क या श्रेणी एक का अधिकारी हो,

(ग) जिनके माता-पिता दोनों समूह क या श्रेणी एक के अधिकारी हो, किन्तु उनमें से किसी एक की मृत्यु हो जाय या वह स्थायी अक्षमता से ग्रसित हो जाय,

(घ) जिनके माता-पिता में से कोई भी समूह क या श्रेणी एक का अधिकारी हो और ऐसे माता-पिता की मृत्यु हो जाय या वह स्थाई अक्षमता से ग्रसित हो जाय और ऐसी मृत्यु या अक्षमता के पूर्व उसे किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे संयुक्त राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक आदि में पांच वर्ष से अन्यून अवधि के लिए नियोजन का लाभ प्राप्त हुआ हो।

(ड़) जिनके माता-पिता दोनों समूह क या श्रेणी एक के अधिकारी हो और ऐसे माता-पिता दोनों की मृत्यु हो जाय या वे स्थाई अक्षमता से ग्रसित हो जाये और दोनों की ऐसी मृत्यु का अक्षमता के पूर्व उनमें से किसी एक को किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे संयुक्त राष्ट्र, मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि में पांच वर्ष की अन्यून अवधि के लिए नियोजन का लाभ प्राप्त हुआ हो,

(ख) केन्द्रीय और राज्य सेवाएं (सीधी भर्ती) समूह ख या श्रेणी दो के अधिकारी निम्नलिखित के पुत्र या पुत्री-

(क) जिनके माता-पिता दोनों समूह ख या श्रेणी दो के अधिकारी हो,

(ख) जिनके माता-पिता में से केवल पिता समूह ख या श्रेणी दो का अधिकारी हो और वह चालीस वर्ष या इसके पूर्व की आयु में समूह क या श्रेणी एक में आ जाय,

(ग) जिनके माता-पिता दोनों समूह ख या श्रेणी दो के अधिकारी हो और उनमें से एक की मृत्यु हो जाय या वह स्थायी अक्षमता से ग्रसित हो जाये और उनमें से किसी एक को ऐसी मृत्यु या स्थायी अक्षमता के पूर्व किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे संयुक्त राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि में पांच वर्ष से अन्यून अवधि के लिए नियोजन का लाभ प्राप्त हुआ हो,

(घ) जिनके माता-पिता में से पिता समूह क या श्रेणी एक का (सीधी भर्ती) या चालीस वर्ष के पूर्व पदोन्नति अधिकारी हो और पिता समूह ख या श्रेणी दो का अधिकारी हो और पिता की मृत्यु हो जाय या वह अस्थायी अक्षमता से ग्रसित हो जाये।

स्पष्टीकरण-इस श्रेणी के प्रयोजनों के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि पद 'स्थायी अक्षमता' का तात्पर्य ऐसी अक्षमता से है जिसके कारण कोई अधिकारी सेवा के बाहर हो जाय।

(ग) **सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कर्मचारी**- ऊपर उपश्रेणी (क) और (ख) में विनिर्दिष्ट मानदण्ड यथावश्यक परिवर्तन सहित उन अधिकारियों पर लागू होंगे जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, बैंकों, बीमा, संगठनों, विश्वविद्यालयों आदि में समकक्ष या तुलनीय पदों पर निजी नियोजन के अधीन भी समकक्ष या तुलनीय पदों और स्थानों पर हो। इन संस्थाओं में समकक्ष या तुलनीय आधार पर पदों के मूल्यांकन के लम्बित रहते नीचे श्रेणी छः में विनिर्दिष्ट मानदण्ड, इन संस्थाओं के अधिकारियों पर लागू होगा।

तीन- व्यावसायिक वर्ग और व्यापार धन्धे और उद्योग में लगे व्यक्ति नीचे श्रेणी छः में विनिर्दिष्ट मानदण्ड निम्नलिखित पर लागू होंगे-

(क) डाक्टर, वकील, चार्टर्ड एकाउन्टेंट, आयकर परामर्शदाता, दन्त चिकित्सक, अभियन्ता, खिलाड़ी, खेलकूद, व्यवसायी, मीडिया व्यवसायी या इस प्रकार के किसी अन्य व्यवसाय में लगे व्यक्ति।

(ख) धन्धे, व्यापार और उद्योग में लगे व्यक्ति।

चार- - सम्पत्ति स्वामी-

(क) कृषि भूमि- ऐसे माता-पिता जिसमें से कोई एक अपने परिवार के साथ जिसमें वह स्वयं उसकी पत्नी/पति और नाबालिग बच्चें सम्मिलित है, निम्नलिखित भूमि का स्वामी हो, के पुत्र या पुत्री ।

(क) केवल सिचिंत भूमि जो कानूनी अधिकतम जोत सीमा के पच्चासी प्रतिशत के बराबर या उससे अधिक हो, या

(ख) सिंचित और असिंचित दोनों प्रकार की भूमि हो, जहां सिंचित भूमि (जो किसी समान्य डिनोमिनेटर के अधीन किसी एक प्रकार में लायी गई हो) सिविल भूमि की साविधिक कानूनी अधिकतम जोत सीमा के चालीस प्रतिशत से अधिक है, वहां असिंचित भूमि विद्यमान परिवर्तन फार्मूला के आधार पर सिंचित भूमि में परिवर्तित कर दी जाएगी

और इस प्रकार संगणित सिंचित क्षेत्र को सिंचित भूमि के वास्तविक क्षेत्र के साथ जोड़ दिया जाएगा और इस प्रकार आई सिंचित भूमि के अनुसार कुल क्षेत्र सिंचित भूमि के लिए कानूनी अधिकतम जोत सीमा के अस्सी प्रतिशत के बराबर या अधिक हो।

पांच- आय या सम्पत्ति का मानदण्ड-

निम्नलिखित के पुत्र या पुत्री-

(क) ऐसे व्यक्ति जिनकी निरन्तर तीन वर्ष की अवधि के लिए सकल वार्षिक आय एक लाख रूपये या इससे अधिक हो या जिनके पास धनकर अधिनियम 1957 में यथा विहित छूट सीमा से अधिक सम्पत्ति हो।

(ख) श्रेणी एक, दो, तीन या पाँच (क) में विनिर्दिष्ट व्यक्ति जो आरक्षण के लाभ का अपात्र न हो, किन्तु जिनकी अन्य स्त्रोतों से आय इतनी हो जो उन्हे उपर उप श्रेणी (क) में विनिर्दिष्ट मानदण्ड के भीतर लाती हो।

स्पष्टीकरण- इस श्रेणी के प्रयोजनों के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि -

(एक) वेतन या कृषि भूमि से आय को मिलाया जायेगा

(दो) रूपये के अनुसार आय मानदण्ड प्रत्येक तीन वर्ष में उसके मूल्य परिर्वतन को ध्यान में रखकर उपान्तरित किया जायगा। परन्तु यदि स्थिति की ऐसी मांग हो तो इसका अन्तराल कम भी हो सकता है।

5. लम्बित भर्तियों के लिए विशेष उपबन्ध- इस अधिनियम द्वारा यथासंशोधित मूल अधिनियम के उपबन्ध लोक सेवाओं और पदों पर ऐसी भर्ती के सम्बनध में लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के दिनाँक को लम्बित है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए -

(क) कोई भर्ती लम्बित समझी जाएगी यदि उस भर्ती के अनुसरण में ऐसे प्रारम्भ के पूर्व कोई भी नियुक्ति न की गई हो।

(ख) पद ''लोक सेवाओं और पदों का वही अर्थ होगा जो उसके लिए मूल अधिनियम में समनुदेशित है।

6. **निरसन और अपवाद**- उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) (संशोधन) अध्यादेश, 2001 (उत्तर प्रदेश आध्यादेश संख्या 18 सन् 2001) एतद्द्वारा निरसित किया जाता है।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी उपधारा (1) में निर्दिष्ट अध्यादेश द्वारा यथासंशोधित मूल अधिनियम के उपबन्धों के अधीन कृत कोई कार्य या कार्यवाही इस अधिनियम द्वारा यथासंशोधित मूल अधिनियम के तत्समान उपबन्धों के अधीन कृत कार्य या कार्यवाही समझी जायेगी मानों इस अधिनियम के उपबन्ध सभी सारवान समय पर प्रवृत्त थे।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. मदुलाल, कुसुम (2006) दलित शिक्षा का परिदृश्य. दिल्ली कल्पज पब्लिकेशन.
2. वक्शी, एन0एस0 (2007) मानव अधिकार शिक्षा. दिल्ली प्रेरणा प्रकाशन.
3. शर्मा, रामशरण (2009) शूद्रो का प्राचीन इतिहास. इलाहाबाद राजकमल प्रकाशन पृष्ठ 16. 20
4. त्रिपाठी, मधुसूदन (2009) शिक्षा अनुसंधान और सांख्यिकी. नई दिल्ली ओमेगा पब्लिकेशन,

पेज 108-107

5. बसु, दुर्गादास (2009) भारत का संविधान. नई दिल्ली लेक्सिसस नेक्सिस पब्लिशिंग. कैनाट पैलेश
6. सिंह, संजय (2010) दलित और शिक्षा. नई दिल्ली आयोग पब्लिकेशन्स. दरियागंज
7. अग्रवाल, एच.ओ. (2010) हयूमन राईट. इलाहाबाद सेन्ट्रल लाँ पब्लिकेशन्स.
8. शास्त्री, शकरानंद (2011) डा. भीमराव आम्बेडकर जीवन संघर्ष एवं राष्ट्र सेवाएँ. नई दिल्ली सम्यक प्रकाशन, पेज 21-25
9. शास्त्री, शकरानंद (2011) पूना पैक्ट बनाम गाँधी. नई दिल्ली सम्यक प्रकाशन. घ्घ्घ 15
10. पाण्डेय, जय.नारायण (2011) भारत का संविधान. इलाहाबाद सेन्ट्रल लाँ पब्लिकेशन्स. पेज 349-385
11. गर्ग, अजय.कुमार (2012) रिजर्ववेशन एंड कंशेसन. नई दिल्ली नेभी प्रकाशन.
12. मिश्रा. आर.एन. (2015) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

भारत में गरीबी की माप : एक अध्ययन

* राम रतन
** आशुतोष सिन्हा

सारांश– *जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। भारत की जनसंख्या का विश्व की कुल जनसंख्या में योगदान 17.7 प्रतिशत है जबकि भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.42 प्रतिशत भाग ही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में विश्व के औसत जनसंख्या की अपेक्षा अधिक जनसंख्या निवास करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है लेकिन फिर भी यहाँ पर कृषि की स्थिति दयनीय है, भारतीय कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों ही दृष्टिकोण से पिछड़ी हुई है। जिसके कारण कृषि पर आश्रित जनसंख्या जो कि भारत के कुल जनसंख्या का लगभग दो तिहाई भाग है, की आर्थिक स्थिति निम्न है। कृषि के पिछड़ेपन, परम्परागत तकनीकों के प्रयोग एवं मानसून पर निर्भरता तथा साक्षरता का निम्न स्तर, रोजगार के सुविधाओं का अभाव, रुढ़िवादिता, जातिवाद सम्पत्ति का असमान वितरण और लम्बे समय तक पराधीन रहने के कारण यहाँ के लोगों का आय स्तर निम्न है जिसके परिणामस्वरुप व्यापक पैमाने पर गरीबी विद्यमान है। रंगराजन समिति के रिपोर्ट 2014 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 29.5 प्रतिशत भाग तथा उत्तर प्रदेश के कुल जनसंख्या का 39.8 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने के लिए मजबूर है।*

मुख्य शब्द– गरीबी, समिति, आयोग, आय, आय वितरण, कैलोरी ऊर्जा

गरीबी एक ऐसी स्थिति होती है जब व्यक्ति अपने जीवन के लिए आवश्यक अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम होता है। गरीबी एक ऐसी परिस्थिति है जिसको कोई भी अनुभव नहीं करना चाहता है लेकिन प्रथाओं, परम्पराओं, स्वभाव, प्राकृतिक आपदा, उत्पादन के साधनों की कमी, पूंजी की कमी या उचित शिक्षा की कमी के कारण इसे स्वीकार करना पड़ता है।

गरीबी मूलतः अपवंचन (Deprivation) से सम्बन्धित है। गरीबी से आशय जीवन की कुछ मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित रहने (Deprivation From Basic Necessaries of Life) लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जीवन के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल है तो वह गरीब है। अनेक अर्थशास्त्रियों, संस्थाओं, समितियों, आयोगों आदि

* शोधार्थी, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उ.प्र.)
** प्रोफेसर, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उ.प्र.)

ने गरीबी को अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है। जिनके आलोचनात्मक विश्लेषण का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

इंडियन प्लानिंग कमीशन की रिपोर्ट 1993 के अनुसार- ''यदि ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2100 कैलोरी ऊर्जा किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो रही है तो वह गरीब है।"

वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट1990 के अनुसार- ''यदि एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताओं- भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि की पूर्ति नहीं कर पा रहा है तो वह गरीब है।"

गरीबी के प्रकार– गरीबी को मुख्यतः दो प्रकार से परिभाषित किया जाता है-

1. निरपेक्ष गरीबी (Absolute Poverty)
2. सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty)

1. निरपेक्ष गरीबी–

निर्धनता की माप के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का सर्वप्रथम प्रयोग एफ0 ए0 ओ0 (Food and Agriculture Organization) के प्रथम महानिदेशक आर0 वायड ने 1945 में किया।

निरपेक्ष गरीबी से अभिप्राय उस स्थिति से होता है जिसके अर्न्तगत कोई व्यक्ति सामान्य जीवन के आवश्यकताओं को जुटाने में संसाधनों के अभाव का अनुभव करता है। दूसरे शब्दों में उसकी आय इतनी कम होती है कि वह अपने तथा अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है। विश्व बैंक रिपोर्ट Oct. 2015 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन 1.90 डालर से कम उपभोग व्यय करता है तो वह गरीब है।

2. सापेक्ष गरीबी–

सापेक्ष गरीबी यह प्रदर्शित करती है कि समाज का एक वर्ग, आय या उपभोग स्तर की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था के औसत आय या उपभोग से नीचे है। सापेक्ष गरीबी विभिन्न आय वर्गों के बीच विषमता की स्थिति को स्पष्ट करती है।

सापेक्ष गरीबी का सम्बन्ध 'आय के वितरण' से होता है यदि कोई व्यक्ति अच्छे खाते पीते परिवार का सदस्य है। फिर भी आय उपभोग, समाज के औसत आय या उपभोग से कम है तो वह सापेक्षिक रुप से गरीब है।

सापेक्ष गरीबी की माप जनसंख्या के विभिन्न आय वर्ग-चतुर्थांश, दसांश आदि के सन्दर्भ में वितरण का अध्ययन करके किया जाता है। सापेक्ष गरीबी की माप के लिए दो विधियां प्रचलित है-

1. Lorenz Curve Method (Max O. Lorenz-1905)
2. Gini Coefficient (Corredo Gini-1912 Itli)

लारेंज वक्र का प्रत्येक बिन्दु उन व्यक्तियों को प्रदर्शित करता है जो एक निश्चित आय के प्रतिशत के नीचे जीवन-यापन करते है। जैसे यदि हम यह प्रदर्शित करें कि कुल आय का 5% भाग 20% परिवारों के पास है। इसी प्रकार 10%, 20%, 30% आय को धारित करने वाले परिवारों की संख्या वाले बिन्दुओं को आपस मे मिला देने से लारेंज वक्र प्राप्त हो जायेगा।

गिनी गुणांक आय के वितरण की विषमता की माप की सबसे प्रचलित विधि है जो आय के प्रत्येक युग्म के बीच आय अन्तर (Income Difference) की माप करता है। यह वास्तविक लारेंज वक्र और निरपेक्ष समता रेखा के बीच के क्षेत्रफल तथा निरपेक्ष समता रेखा के नीचे के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के बीच अनुपात प्रदर्शित करता है।

निरपेक्ष समता रेखा और लारेंज वक्र के बीच का क्षेत्रफल

G = --

निरपेक्ष समता रेखा के नीचे का सम्पूर्ण क्षेत्रफल

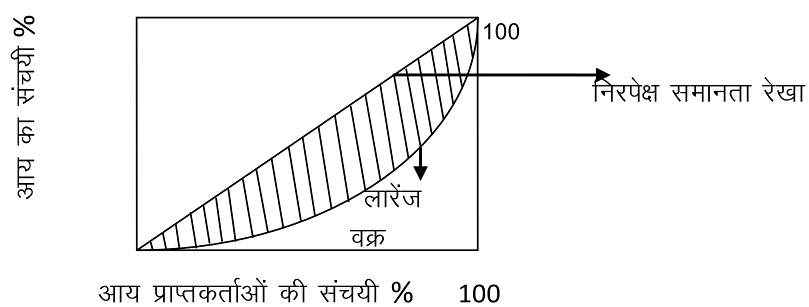

गरीबी रेखा की अवधारणा–

गरीबी रेखा से अभिप्राय उस मापदण्ड से है जिसके आधार पर गरीबों (निर्धनों) की आसानी से पहचान की जा सकती है यद्यपि कि भारत में स्वतंत्रता के समय से ही तीव्र आर्थिक विकास के द्वारा गरीबी दूर करने का प्रयास किया जा रहा था लेकिन गरीबी को दूर करने के लिए प्रत्यक्ष रुप से विशेष प्रयास नहीं किया गया था सर्वप्रथम 1962 में यह महसूस किया गया कि यद्यपि भारत के आर्थिक विकास से प्रत्येक वर्ग को लाभ होगा फिर भी यह विकास इस से होना चाहिए कि देश के सबसे गरीब वर्गों की दशा में सुधार अवश्य हो। इसके लिए पहली समस्या समाज के "सबसे अधिक गरीब" वर्गों के व्यक्तियों की पहचान करना था। इनकी पहचान करने के लिए कुछ मानदण्ड निश्चित करना आवश्यक था।

गरीबी रेखा के न्यूनतम मापदण्ड के निर्धारण के लिए योजना आयोग ने 1977 में वाई0 के0 अलघ की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ दल 'Task Force on Minimum Needs and Effective Consumption Demand' का गठन किया गया। इस विशेषज्ञ दल के रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2435 कैलोरी (20 रुपये प्रतिमाह) तथा शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2095 कैलोरी (25 रुपये प्रतिमाह) की प्राप्ति जिन व्यक्तियों को नहीं हो रहा है वह गरीब है।

अतः सर्वसम्मति से योजना आयोग ने विशेषज्ञ दल के इस रिपोर्ट को गरीबी रेखा के रुप में स्वीकृत कर लिया गया।

ग्रामीण गरीबी–

ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों का वह समूह जो अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रहता है उसे ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी

कहते है। दूसरे शब्दों में ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों का वह भाग जो योजना आयोग तथा अन्य समिति एवं अर्थशास्त्रियों द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को मजबूर है उन्हें ग्रामीण गरीबी कहते है।

ग्रामीण गरीबी के अर्न्तगत मजदूर, भूमिहीन कृषक, लघु एवं सीमान्त कृषक, कारीगर, पट्टे पर कृषि कार्य करने वाले आदि लोग सम्मिलित होते हैं।

शहरी गरीबी–

शहरी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों का वह समूह जो अपने जीवन निर्वाह के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहा है ऐसे व्यक्तियों के कुल शहरी व्यक्तियों के अनुपात को शहरी गरीबी कहते हैं।

शहरी गरीबी के अनुपात में निरन्तर कमी होने के बावजूद शहरी गरीबी की निरपेक्ष संख्या में लगातार वृद्धि हो रहा है जिसका मूलभूत कारण ग्रामीण क्षेत्र से गरीबो का शहर की तरफ रोजगार के लिए पलायन करना है।

गरीबी की माप–

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही विभिन्न व्यक्तियों, संस्थाओं, आयोगों और समितियों के द्वारा गरीबी के सन्दर्भ में अनुमान लगाने का प्रयास किया। प्रायः सभी लोगो ने गरीबी को अपने दृष्टिकोण से मापने का प्रयास किया है जिसके कारण इन लोगों के द्वारा लगाये गये गरीबी के अनुमान (Result) में भी पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। गरीबी मापन की मुख्यतः दो विधियां प्रचलित है-

1. आय से विचलन के आधार पर गरीबी की माप
2. कैलोरी ऊर्जा के उपभोग से विचलन के आधार पर

1. आय से विचलन के आधार पर गरीबी की माप–

पी.के. बर्धन के द्वारा गरीबी की माप- के अनुसार वर्ष 1960-61 में भारत के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में कुल मिलाकर 13.1 करोड़ व्यक्तियों को गरीबी रेखा से नीचे बताया इनके अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 38 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे है। इनका मानना था कि ग्रामीण क्षेत्र में 180 रुपये वार्षिक तथा शहरी क्षेत्र में 216 रुपये वार्षिक से कम प्रतिव्यक्ति आय वाले व्यक्ति गरीब हैं।

दांडेकर एव रथ के द्वारा गरीबी की माप- दांडेकर एवं रथ ने भी वर्ष 1960-61 के लिए भारत में गरीबी की माप प्रस्तुत किया इनके अनुसार केवल ग्रामीण क्षेत्र में ही 13.5 करोड़ व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे हैं। इन्होनें ग्रामीण व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुसार न्यूनतम आय 170 रुपये वार्षिक तथा शहरी क्षेत्रो के लिए 271 रुपये वार्षिक आय को मानक मानकर ग्रामीण क्षेत्रों में 40 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत व्यक्तियों को गरीबी रेखा के नीचे बताया।

1960-70 में दाण्डेकर एवं रथ ने गरीबी के सन्दर्भ में अपना दूसरा अनुमान प्रस्तुत किया जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में कुल 16.67 करोड़ (40.4 प्रतिशत) तथा शहरी क्षेत्र में 4.9 करोड़ (50 प्रतिशत) व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे हैं।

बी.एस. मिन्हास के द्वारा गरीबी की माप- मिन्हास ने गरीबी के सन्दर्भ में अपना प्रथम अनुमान 1960-61 में प्रस्तुत किया इन्होनें बताया कि ग्रामीण क्षेत्र में प्रति वर्ष 200 रुपये से कम आय प्राप्त करने वाला व्यक्ति गरीब है तथा ग्रामीण क्षेत्र में कुल 21.6

करोड़ व्यक्ति या 59.4 प्रतिशत ग्रामीण गरीबी रेखा के नीचे हैं।

1967-68 की अवधि में मिन्हास ने अपना दूसरा अनुमान प्रस्तुत किया और यह बताया कि ग्रामीण क्षेत्र में 21 करोड़ (50.60 प्रतिशत व्यक्ति) गरीबी रेखा के नीचे हैं।

पी.डी. ओझा के द्वारा गरीबी की माप- पी0 डी0 ओझा ने गरीबी को 1960-61 की अवधि में मापने का प्रयास किया उन्होनें बताया कि ग्रामीण क्षेत्र में 18.42 करोड़ व्यक्ति (51.8 प्रतिशत) तथा शहरी क्षेत्र में 6.9 करोड़ (76 प्रतिशत) व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।

एम.ए. अहलूवालिया के द्वारा गरीबी की माप:- आहलूवालिया ने 1956-57 में भारत में ग्रामीण क्षेत्र के 54.1 प्रतिशत व्यक्तियों (18.1 करोड़) को गरीबी रेखा के नीचे बताया। आहलूवालिया ने 1963-64 में गरीबी की पुन: माप किया और बताया कि ग्रामीण क्षेत्र में (44.5 प्रतिशत) 17.1 करोड़ व्यक्ति गरीब है। 1967-68 में 23.5 करोड़ (56.5 प्रतिशत) ग्रामीण व्यक्तियों तथा 1973-74 में 24.1 करोड़ (46.10 प्रतिशत) व्यक्तियों को गरीबी रेखा के नीचे बताया।

भारतीय योजना आयोग के द्वारा गरीबी की माप-

भारतीय योजना आयोग ने भारत में ग्रामीण गरीबी की माप के लिए 1979-80 के मूल्यों के आधार पर 77 रुपये ग्रामीण क्षेत्र में तथा 88 रुपये शहरी क्षेत्र में प्रति व्यक्ति की न्यूनतम मासिक आय का मानदण्ड निर्धारित कर नये Methodology के अनुसार सम्पूर्ण भारत, शहरी गरीबी तथा ग्रामीण गरीबी पर निम्न आकड़े प्रस्तुत किया-

Planning Commission"s Estimates of Poverty
(New Methodology)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी गरीबी	भारत
1972-1973	56.40%	49.0%	54.9%
1977-1978	53.10%	45.2%	51.3%
1983-1984	45.70%	40.8%	44.5%
1987-1988	39.10%	38.2%	38.9%
1993-1994	37.30%	32.4%	36.0%
1999-2000	27.1%	23.6%	26.1%
2004-2005	21.8%	21.7%	21.8%

Source-1, lanning Commission Ninth Five Year Plan, 1997-2002 (Delhi,1999) Volume-I Table-1.10, P-28) **(भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्र एवं पुरी, 2001 पेज175)**

योजना आयोग द्वारा जुलाई 1963 में गठित कार्यदल द्वारा माप-

भारत में निर्धनता रेखा के निर्धारण का पहला आधिकारिक प्रयास योजना आयोग द्वारा जुलाई 1962 में किया गया। योजना आयोग ने गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए डी0 आर0 गाडगिल की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया जिसके सदस्य अशोक मेहता, वी0 एन0 गांगुली, पी0 एस0 लोकनाथ, पीताम्कर पन्त, वी0 के0 आर0 बी0 राव0, श्रीमन्नारायण तथा अन्ना साहेब सहस्त्र बुद्धे थे। इस कार्यदल ने 1960-61 के मूल्य पर ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए बिना किसी आधार को स्पष्ट किये हुए प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह 20 रुपये वांछित उपभोग व्यय का सुझाव दिया योजना आयोग के इस

दृष्टिकोण की बहुत ही अधिक आलोचना हुई।

अमर्त्य सेन के द्वारा गरीबी की माप–

भारत के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री प्रो० अमर्त्य सेन ने गरीबी के सन्दर्भ में सर्वप्रथम अपने विचार 1973 में EPW में प्रकाशित अपने लेख Poverty, Inequality and Unemployment' में दिया जिसमें उन्होंने गरीबी के माप के लिए प्रचलित Head Count Method (सिर गणना विधि) को दोषपूर्ण बताते हुए गरीबी की गहनता (Intensity of Poverty) की माप करने पर बल दिया। तथा इसके लिए उन्होंने एक निर्देशांक विकसित किया जिसे 'सेन का निर्देशांक'' या ''सेन का गरीबी गुणांक'' के नाम से जाना जाता है तथा इसे 'P' से व्यक्त किया जाता है।

सेन ने अपने गरीबी सूचकांक के द्वारा गरीबों में सबसे गरीब की पहचान करने पर जोर दिया उनका मानना था कि यदि गरीबी रेखा मानक 500 रु. प्रति व्यक्ति प्रतिमाह है तो हमें यह नहीं ज्ञात करना है कि कितने लोग 500 रु. प्रतिमाह नहीं अर्जित कर पा रहे हैं। क्योंकि यह विधि सभी गरीबों की समान मान लेता है लेकिन वास्तव में उनकी गरीबी भिन्न-भिन्न स्तर की है। बल्कि यह ज्ञात करना है कि जो व्यक्ति प्रतिमाह 500 रु. नहीं अर्जित कर पा रहे हैं उन सभी व्यक्तियों को अवरोही क्रम में 499, 498, 497, 496... ...., 3, 2, 1 में रख लेते हैं इस क्रम में जो व्यक्ति जितना अधिक ऊपर होगा वह सबसे कम गरीब होगा और सबसे नीचे वाला व्यक्ति सबसे अधिक गरीब होगा इस प्रकार हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि प्रत्येक व्यक्ति की आय गरीबी रेखा के मानक आय से कितना कम है। और अब हम उसके आय को आसानी से भारांकित कर सकते हैं। गरीबी रेखा के मानक आय से कम आय वाले प्रथम व्यक्ति को अर्थात गरीबों में सबसे अधिक आय वाले व्यक्ति को भार-1 प्राप्त होगा उसके बाद वाले को भार-2 इस प्रकार सबसे अन्तिम व्यक्ति को अर्थात गरीबों में सबसे गरीब व्यक्ति की सबसे अधिक भार प्राप्त होगा। तथा उसकी गरीबी की गहनता अधिक प्रतिबिम्बित होगी।

सेन का गरीबी सूचकांक एक निरपेक्ष एवं व्यावहारिक माप है जो कि अधिक अर्थपूर्ण एवं तार्किक है तथा गरीबी के उन्मूलन के लिए एवं कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण के लिए यह विधि अधिक उपयोगी है। प्रो० सेन ने गरीबी के कारण के रुप में ''धन एवं आय के वितरण की असमानता'' को स्वीकार किया है उनका मानना है कि गरीबी निवारण के लिए ''धन एवं आय के वितरण की असमानता'' को कम करना, एक महत्वपूर्ण प्रयास होगा।

सुरेश तेन्दुलकर कमेटी द्वारा गरीबी की माप–

भारत सरकार ने 2005 में गरीबी का अनुमान लगाने तथा गरीबी की माप करने के लिए मानदण्ड विकसित करने के लिए सुरेश तेन्दुलकर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया।

तेन्दुलकर कमेटी के गठन का मुख्य उद्देश्य इसका परीक्षण करना था कि "क्या भारत में गरीबी वास्तव में गिर रही है या नहीं।" जैसा कि NSSO के 61वें चक्र से स्थापित होता है। इसके साथ ही नयी गरीबी रेखा तथा गरीबी की स्थिति के सम्बन्ध में अनुमान प्रस्तुत करना था।

तेन्दुलकर कमेटी ने अब तक चली आ रही गरीबी अनुमान सम्बन्धी कार्यपद्धति की

तीन प्रमुख कमियों की ओर संकेत किया।

1. गरीबी रेखा के अनुमान के सम्बन्ध में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में उपभोग ढ़ाँचे में आने वाली वस्तुओं को तीन दशक पहले 1973-74 में निश्चित किया गया था वर्तमान समय में इसमें बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है जिसे दृष्टि में रखना आवश्यक है।
2. मूल्य समायोजन की दोषपूर्ण पद्धति अपनायी गयी जिसके कारण अव्यावहारिक परिणाम प्राप्त हुए तथा कुछ राज्यों में शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या अधिक पायी गयी।
3. गरीबी रेखा के अब तक के अनुमान यह मानकर चलते हैं कि शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर होने वाला व्यय, केवल राज्य द्वारा किये जाते हैं, निजी क्षेत्र द्वारा नहीं।

तेन्दुलकर कमेटी ने गरीबी के बहुआमीय दृष्टिकोण का प्रयोग किया इसके अर्न्तगत न केवल मानव जीवन के अस्तित्व को प्रभावित करने वाले अथवा केवल जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं की संतुष्टि करने वाले, चर सम्मिलित होते हैं बल्कि जीवन के गुणवत्ता (Quality of Life) को प्रभावित करने वाले चर भी प्रयोग में लाये जाते हैं। तेन्दुलकर कमेटी के अनुसार गरीबी रेखा का निर्धारण उपभोग में लाये जा रहे खाद्यान्नों के अलावा छः बुनियादी आवश्यकताओं- शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी संरचना, स्वच्छ वातावरण तथा महिलाओं की काम एवं लाभ तक पहुंच (Access) के आधार पर किया जायेगा। इस प्रकार से प्राप्त आकड़े केवल संकेतक पर आधारित नहीं होगे, साथ ही विश्व बैंक से प्राप्त आकड़ो के साथ तुलना करने योग्य होगें।

तेन्दुलकर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 2009 में भारत सरकार को सौंप दिया जिसमें कमेटी ने स्पष्ट किया कि कैलोरी आधार पर अनुमानित गरीबी रेखा को छोड़ने की आवश्यकता है। तेन्दुलकर कमेटी ने 1993-94 तथा 2004-05 वर्ष के लिए नये अखिल भारतीय गरीबी रेखा का अनुमान लगाया जिसके अनुसार 2004-05 के मूल्यों पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 446.68 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह तथा शहरी क्षेत्र के लिए 578. 80 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह उपभोग व्यय को निर्धारित किया। इस समिति के अनुसार 2004-05 में सम्पूर्ण भारत में गरीबी का स्तर 37.2 प्रतिशत था तथा ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 41.8 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्र में 25.7 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे थे। जो कि NSSO के 61वें चक्र के अनुमानों से बहुत अधिक थे।

तेन्दुलकर समिति ने 2011-12 के लिए भी गरीबी का अनुमान लगाया जिसमें प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन ग्रामीण क्षेत्र में 27 रुपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए 33 रुपये प्रतिदिन उपभोग व्यय को निर्धारित किया और यह बताया कि सम्पूर्ण भारत में गरीबी 21.92 प्रतिशत है तथा शहरी क्षेत्रों में यह 13.70 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्र में 25.70 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं।

तेन्दुलकर कार्यविधि के अनुसार गरीबी अनुमान

वर्ष	गरीबी रेखा (रुपये में)		गरीबो की संख्या (मिलियन में)			गरीबी अनुपात		
	Rural	Urban	Rural	Urban	Total	Rural	Urban	Total
2004–05	446.68	578.80	326.3	80.8	40.71	41.8	25.7	37.2
2011–12	816	1000	216.5	52.8	269.3	25.7	13.7	21.9

(स्त्रोत- आर्थिक समीक्षा 2014-15)

तेन्दुलकर कमेटी ने विभिन्न राज्यों में व्याप्त असमानताओं के कारण सभी राज्यों की अलग-अलग निर्धनता रेखा की अवधारणा को स्थापित किया।

(2) कैलोरी ऊर्जा के उपभोग से विचलन के आधार पर-

वाई0 के0 अलघ विशेषज्ञ दल के द्वारा गरीबी की माप- गरीबी रेखा के न्यूनतम मापदण्ड के निर्धारण के लिए योजना आयोग ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 1977 में वाई0 के0 अलघ की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ दल 'Task Force on Minimum Needs and Effective Consumption Demand' का गठन किया गया। इस विशेषज्ञ दल ने अपनी रिपोर्ट 1979 में प्रस्तुत किया तथा 1973-74 की स्थिर कीमतों के आधार पर पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2435 कैलोरी (लगभग 2400 कैलोरी) और शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2095 कैलोरी (लगभग 2100 कैलोरी) ऊर्जा की प्राप्ति को गरीबी रेखा के मानक के रुप में प्रस्तुत किया है। वाई0 के0 अलघ का मानना था कि मुद्रास्फीति के कारण मूल्यों में हुए वृद्धि को समायोजित करने के बाद ही गरीबी अनुमानों की गणना की जानी चाहिए। उन्होनें गरीबी रेखा के मानक को मुद्रा में व्यक्त करते हुए ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49.10 रूपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह तथा शहरी क्षेत्र के लिए 56.70 रूपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह उपभोग व्यय को गरीबी रेखा का मानक निर्धारित किया।

योजना आयोग द्वारा गठित लकड़ावाला विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट(1993)- भारतीय योजना आयोग ने सितम्बर 1989 में प्रो0 डी0 टी0 लकड़ावाला की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ कार्यदल गठित किया जिसका उद्देश्य भारत में गरीबों की संख्या और अनुपात के अनुमान की कार्यविधि एवं परिकलन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना था इस विशेषज्ञ ने अपनी रिपोर्ट जुलाई 1993 में प्रस्तुत किया जिसके कुछ प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं-

1. न्यूनतम आवश्यकताओं एवं प्रभावी उपभोग मांग के पूर्वानुमान पर कार्यदल द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में 49.09 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 56.64 रुपये प्रति व्यक्ति मासिक कुल व्यय को निर्धनता के आधार रेखा (Base Line) के रुप में स्वीकार किया जाय।
2. 1973-74 की कीमतों को आधार माना जाय। क्योंकि इस आधार वर्ष पर बहुत ही सुव्यवस्थित कार्य हो चुका है।
3. प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग निर्धनता रेखा (State Specific Poverty Line) का अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर निर्धनता रेखा के अनुरुप मानकीकृत वस्तु समूह (Standardised Commodity Basket) को प्रत्येक राज्य में आधार वर्ष की कीमतों के अनुसार प्राप्त होगा।
4. सममूल्यक (Deflator) के चुनाव के लिए विशेषज्ञ दल ने ग्रामीण निर्धनता रेखा को अद्यतन बनाने के लिए कृषि-श्रमिक के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (Consumer Price Index For Agricultural Labourers) तथा नगरीय निर्धनता रेखा के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (Consumer Price Index For Industrial Workers) का प्रयोग करना चाहिए।

लकड़ावाला विशेषज्ञ दल का 1973-74 से 1987-88 की 14 वर्षों की अवधि का गरीबी का अनुमान निम्न है-

वर्ष	ग्रामीण गरीबी	शहरी गरीबी	कुल गरीबी
1973-74	56.4%	49.4%	54.90%
1977-78	53.1%	47.4%	51.80%
1983-84	45.6%	42.2%	44.80%
1987-88	39.1%	40.1%	39.30%

Source- Report of the Expert Group on Estimation of Population and Number of Poor (1993)

1973-74 के आधार पर गरीबी रेखा मानक (प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह व्यय रुपये में)

वर्ष	ग्रामीण व्यय (रुपये में)	शहरी व्यय (रुपये में)
1973-74	49.09 रु.	56.96 रु.
1977-78	56.84 रु.	72.50 रु.
1983-84	89.45 रु.	117.64 रु.
1987-88	115.43 रु.	165.58 रु.

(स्त्रोत- भारतीय अर्थव्यवस्था- दत्त एवं सुन्दरम-2002, पृष्ठ-250)

लकड़ावाला विशेषज्ञ दल के कार्यविधि का प्रयोग योजना आयोग ने नौंवी तथा दशवीं पंचवर्षीय योजना में किया।

रंगराजन कमेटी के द्वारा गरीबी की माप-

योजना आयोग ने 2012 में सी0 रंगराजन की अध्यक्षता में 'Methodology For Measurement of Poverty' की समीक्षा के लिए एक कमेटी का गठन किया। जैसा कि उल्लेखनीय है कि गरीबी की माप के सम्बन्ध में जो प्रविधि (Methodology) वाई0 के0 अलघ ने 1979 में दिया था उसका परिष्करण 1993 में लकड़ावाला विशेषज्ञ समूह ने किया एवं तेन्दुलकर समिति ने 2009 में उसको समुन्नत करने के सम्बन्ध में सुझाव दिया तथा लगभग सभी ने यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि पारिवारिक उपभोग व्यय के सम्बन्ध में NSSO के सर्वेक्षण से प्राप्त आकड़े अधिक विश्वसनीय हैं।

रंगराजन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट जून 2014 में आयोग को सौंप दिया जिसमे गरीबी को पुनः परिभाषित करते हुए अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 972 रुपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए 1407 रुपये प्रतिव्यक्ति मासिक व्यय से कम उपभोग व्यय करने वाली जनसंख्या को गरीबी रेखा के नीचे स्वीकार किया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि 2011-12 के मूल्य पर 5 लोगों के परिवार के लिए ग्रामीण क्षेत्र में 4860 रुपये तथा शहरी क्षेत्र में 7035 रुपये उपभोग व्यय को गरीबी के मानक के रुप में स्वीकार किया गया।

रंगराजन समिति की कार्यविधि के अनुसार 2011-12 में गरीबी की स्थिति

प्रतिव्यक्ति गरीबी रेखा (रुपये में)		गरीबो की संख्या (मिलियन में)			गरीबों का प्रतिशत		
Rural	Urban	Rural	Urban	Total	Rural	Urban	All India
972	1407	260.5	102.5	363	30.9%	26.5%	29.5%

रंगराजन कमेटी द्वारा प्रयोग में लायी गयी मेथडालॉजी एवं निष्कर्ष-

1. गरीबी रेखा के सन्तोषजनक पर्याप्त पोषण, वस्त्र, मकान किराया, शिक्षा तथा अन्य गैर खाद्य वस्तुओं पर व्यय के मानक (Normative) स्तर पर आधारित होना चाहिए।
2. रंगराजन कमेटी ने कैलोरी, प्रोटीन तथा वसा का ICMR (Indian Council of Medical Research) (भारतीय आर्युविज्ञान अनुसंधान परिषद) के मानक पर गणना किया इसके अनुसार इन्होनें ग्रामीण क्षेत्र के लिए 2155 KCGL प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र के लिए 2090 KCGL प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन ऊर्जा की आवश्यकता को ग्रामीण क्षेत्र के लिए 48 ग्राम तथा 28 ग्राम और शहरी क्षेत्रों के लिए 50 ग्राम तथा 26 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के मानक को स्वीकार किया।
3. कमेटी ने उपर्युक्त तीनों आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले खाद्य बास्केट को गरीबी खाद्य बास्केट के रुप में स्वीकार किया।
4. रंगराजन कमेटी की मेथडालॉजी के आधार पर गरीबी का अनुमान ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में तेन्दुलकर कमेटी की तुलना में क्रमशः 19 प्रतिशत, 41 प्रतिशत अधिक पाया गया।
5. रंगराजन कमेटी ने Modified Mixed Reference Period (MMRP¼ RkFkk Uniform Reference Period (URP) उपभोग व्यय को लिया जबकि तेन्दुलकर कमेटी ने केवल Mixed reference Period (MRP) को स्वीकार किया था। ग्रामीण गरीबी में 67 प्रतिशत की वृद्धि तथा शहरी गरीबी में 28 प्रतिशत की वृद्धि इसी परिवर्तन के कारण हो गया।
6. रंगराजन कमेटी ने 2011-12 के लिए गरीबी रेखा के रुप में ग्रामीण क्षेत्र में 972 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र के लिए 1407 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपभोग व्यय को निर्धारित किया।
7. रंगराजन कमेटी के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 260.5 मिलियन व्यक्ति, (30.5 प्रतिशत) तथा शहरी क्षेत्र में 102.5 मिलियन व्यक्ति (26.4 प्रतिशत) गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।

रंगराजन कमेटी तथा तेन्दुलकर कमेटी में अन्तर-

1. तेन्दुलकर कमेटी ने गरीबी रेखा के अनुमान के लिए 1979 से चले आ रहे कैलोरी मापक को स्वीकार नहीं किया था क्योंकि उन्होनें खाद्य उपभोग और उनसे प्राप्त पोषण के बीच कोई सम्बन्ध नहीं पाया, जबकि रंगराजन कमेटी ने कैलोरी मापक को गरीबी रेखा के अनुमान के लिए प्रयोग किया है।
2. तेन्दुलकर कमेटी ने राज्य स्तर पर ग्रामीण-शहरी गरीबी रेखा के अनुमान के लिए अखिल भारतीय शहरी गरीबी रेखा बास्केट का प्रयोग किया। जबकि रंगराजन ने लकड़ावाला प्रत्यागम का अनुगमन करते हुए ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के लिए दो अलग-अलग गरीबी रेखा बास्केट का प्रयोग किया तथा उसके आधार पर राज्य स्तर पर ग्रामीण तथा शहरी गरीबी रेखा का अनुमान लगाया।
3. रंगराजन कमेटी के अनुसार हाल के वर्षो में सामाजिक सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय में तीव्र वृद्धि हुई है जो NSSO द्वारा किये गये उपभोग व्यय सर्वेक्षण में प्रदर्शित नहीं होता है अतः इसके द्वारा व्युत्पादित गरीबी रेखा "गरीबी" का सही चित्र

प्रस्तुत नहीं करती है बल्कि वास्तव में उपभोग की गयी सेवाओं से कम प्रदर्शित करती है।

निष्कर्ष–

भारत में गरीबी के अनुमान के सन्दर्भ में दादाभाई नौरोजी, पी0 के वर्धन, दाण्डेकर एवं रथ, बी0 एस0 मिन्हास, पी0 डी0 ओझा, एम0 एस0 अहलूवालिया आदि के द्वारा किये गये व्यक्तिगत प्रयास इस दिशा में एक सराहनीय कार्य है लेकिन इनके द्वारा गरीबी की माप के लिये प्रयोग की गयी विधियाँ और गरीबी रेखा का पैमाना स्वत: और मनमाने ढ़ग से निर्धारित किया था जिनमें एकरुपता का अभाव है। योजना आयोग द्वारा सर्वप्रथम अधिकारिक प्रयास 1963 में गरीबी की माप के लिए गाडगिल कार्यदल का गठन करके किया गया। लेकिन गरीबी की माप के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कार्य, योजना आयोग द्वारा सितम्बर 1989 में गठित प्रो0 डी0 टी0 लकड़ावाला कार्यदल के द्वारा किया गया लकड़वाड़ा कार्यदल ने 1993 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किया और सभी राज्यों के लिये अलग-अलग निर्धनता रेखा (State Specific Poverty Line) का सुझाव दिया।

नोवेल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री प्रो0 अमर्त्यसेन ने 1973 में EPW में प्रकाशित अपने लेख 'Poverty, Inequality and Unemployment' में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया था कि गरीबों की माप के लिए प्रचलित Head Count Method (सिर गणना विधि) दोषपूर्ण है हमें गरीबों में सबसे अधिक गरीब की खोज करनी चाहिए तथा गरीबी को दूर करने के लिए समाज में व्याप्त असमानता को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

तेन्दुलकर कमेटी ने कैलोरी मापक विधि को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उन्होनें खाद्य उपभोग और उससे प्राप्त पोषण के बीच कोई सम्बन्ध नहीं पाया। लेकिन इनके द्वारा अखिल भारतीय शहरी गरीबी रेखा वास्केट का प्रयोग ग्रामीण एवं शहरी दोनों स्थानों पर गरीबी रेखा के अनुमान के लिए प्रयोग किया गया जो कि त्रुटिपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों की दशाओं में काफी अन्तर विद्यमान है।

रंगराजन समिति ने ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में गरीबी रेखा के अनुमान के लिए अलग-अलग "गरीबी रेखा खाद्य बास्केट" का प्रयोग किया लेकिन कैलोरी मापक को पुन: स्वीकार कर लिया। जबकि विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से अलग-अलग उपयोगिता प्राप्त होती है जिसके कारण उसकी माप करना कठिन कार्य है।

सुझाव–

1. गरीबी रेखा बास्केट का निर्धारण करते समय सभी राज्यों के लिए अलग-अलग ग्रामीण क्षेत्र के लिए गरीबी रेखा बास्केट तथा शहरी क्षेत्र के लिए अलग गरीबी रेखा बास्केट का निर्धारण किया जाय।
2. गरीबी रेखा के मापक के रुप में आय विधि/व्यय विधि का ही प्रयोग किया जाय। कैलोरी मापक विधि त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि न तो सभी व्यक्तियों की कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता एक समान होती हैं और न ही किसी वस्तु के उपभोग से सभी को समान मात्रा में उपयोगिता प्राप्त होती है।
3. गरीबी रेखा को प्रदर्शित करने के लिए निर्धारित न्यूनतम आय का निर्धारण प्रत्येक

वर्ष के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर किया जाना चाहिए।

4. **गरीबी की माप के साथ-साथ गरीबी गहनता की माप अवश्य किया जाना चाहिए।**
5. **आय या व्यय के निर्धारण के लिए सरकारी व्यय के साथ-साथ निजी उपभोग व्यय को जोड़ा जाना चाहिए।**
6. **विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं पर मिलने वाली सहायता अनुदान (Subsidy) को भी गरीबी की माप में स्थान दिया जाय।**
7. **गरीबी रेखा बास्केट में गुणवत्ता पूर्ण जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़ा मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, मनोरंजन के साधन, प्रतिव्यक्ति आय आदि को सम्मिलित किया जाय।**

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम.-2014 भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि, रामनगर, नई दिल्ली।
2. मिश्र, एस.के.एवं पुरी, वी.के.-2017, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस।
3. लाल, एस.एन. एवं लाल, एस.के.-2016, भारतीय अर्थव्यवस्थ-सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, शिवम पब्लिशर्स, मधवापुर जी.टी.रोड, इलाहाबाद।
4. सोनी, आर.एन.-2009, कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय, विशाल पब्लिशिंग, पुराना रेलवे रोड, जालन्धर।
5. पंत, जे.सी. एवं पंत, एस.के.-2014, आर्थिक विचारों का इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
6. अलघ, वाई0 के0 -1979, न्यूनतम आवश्यकता एवं प्रभावी उपभोग मांग पर विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट, योजना आयोग प्रभाग।
7. रंगराजन, सी.-जून 2014, गरीबी की माप की वर्तमान कार्यपद्धति की समीक्षा के लिए विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट, योजना आयोग प्रभाग।
8. आर्थिक समीक्षा 2014-15, आर्थिक कार्य प्रभाग, भारत सरकार

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का योगदान : पटना जिला के धनरूआ प्रखण्ड का एक भौगोलिक अध्ययन

* विवेक कुमार

सारांश- *ग्रामीण सेवा केन्द्र का सामान्य अर्थ वैसे ग्रामीण केन्द्रों से है जो अपने लोगों के साथ-साथ आस-पास के क्षेत्र के लोगों को भी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध कराता हो। बिहार जैसे पिछड़े राज्य में ग्रामीण लोगों को विभिन्न प्रकार के वाणिज्यिक, शैक्षणिक, बैंकिंग, स्वास्थ्य एवं अन्य आवश्यक शहरी सुविधाओं को प्रदान करने में ग्रामीण सेवा केन्द्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये केन्द्र एक कार्यात्मक केन्द्र के रूप में कई कार्यो को संपादित करता है। इस प्रकार बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। बिहार की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि आधारित है। भारत सरकार जनगणना 2011 के अनुसार बिहार की कुल जनसंख्या का लगभग 88.7 प्रतिशत (92074713 व्यक्ति) जनसंख्या गांवों में निवास करती है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है-ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों के योगदान का सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन करना। इस अध्ययन कार्य में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण अध्ययनकर्त्ता द्वारा स्वयं अवलोकन एवं ग्रामीणों से साक्षात्कार के माध्यम से तथा द्वितीयक आँकड़ों का संग्रहण जनगणना कार्यालय, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, इन्टरनेट एवं अन्य सरकारी कार्यालयों से प्राप्त किया गया है। अध्ययन कार्य के लिए चयनित सूक्ष्म स्तरीय प्रदेश, बिहार के पटना जिला का एक प्रखण्ड (धनरूआ प्रखण्ड) है, जिसका कुल क्षेत्रफल 18553 हेक्टेयर (185.53 Km^2) है एवं पटना जिला के दक्षिण-पूर्वी सीमा पर दरधा एवं कररूआ नदी के मैदानी भाग में स्थित है। वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार इस प्रखण्ड में कुल 122 गाँव हैं, जिसमें से 20 गाँव ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है। इस प्रखण्ड के विभिन्न ग्रामीण सेवा केन्द्रों में विभिन्न प्रकार के आवश्यक सेवाओं यथा-शैक्षणिक, स्वास्थ्य, प्रशासनिक, वाणिज्यिक, बैंकिंग, संचार, परिवहन आदि के उपलब्धता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आशातीत विकास हुआ है। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों के प्रभाव में अध्ययन क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। लोग आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्‍ तिक रूप से समृद्ध एवं प्रगतिशील हो रहे हैं।*

मुख्य शब्द- ग्रामीण सेवा केन्द्र, ग्रामीण विकास, **PURA**, समग्र विकास, जनसंख्या

परिचय- प्रस्तुत शोध-पत्र "ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का

* शोधार्थी, यूजीसी-नेट/जेआरएफ, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

योगदान" मुख्य रूप से ग्रामीण परिवेश में नगरीय सुविधाओं की उपलब्धता, व्यवस्था एवं उनकी उपयोगिता से संबंधित है। ग्रामीण सेवा केन्द्रों में नगरीय सुविधाएँ उपलब्ध होते हैं, जिसके कारण वे अपनी एवं आस-पास की ग्रामीण जनसंख्या को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ग्रामीण सेवा केन्द्रों का उद्भव एकांकी सेवाओं के साथ, पूर्व स्थापित अधिवासीय केन्द्र में या अधिवासों के निर्माण के साथ-साथ होता है। जहाँ कालांतर में सेवाओं की संख्या एवं सेवा प्रदान करने की क्षमता तथा गुणवत्ता में भी वृद्धि होती जाती है और एक बड़े ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो जाते हैं।

ग्रामीण सेवा केन्द्र, ग्रामीण क्षेत्रों में विकास केन्द्र का कार्य करता है और बिहार जैसा प्रदेश जहाँ की कुल जनसंख्या का 88 प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में निवास करते हैं, के लिए ग्रामीण सेवा केन्द्र और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि यहाँ के अधिकांश लोग जो गाँवों में रहते हें, अपने जीविकोपार्जन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर रहते हैं और विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादों के विक्रय एवं कृषि कार्य के लिए आवश्यक वस्तुओं के क्रय करने के साथ-साथ अन्य सेवाओं (जैसे-स्वास्थ्य, प्रशासनिक, शैक्षणिक, परिवहन एवं संचार, वाणिज्यिक, बैंकिंग आदि) के लिए ग्रामीण सेवा केन्द्रों पर ही निर्भर रहते हैं। अध्ययन क्षेत्र बिहार के पटना जिला का एक प्रखण्ड (धनरूआ प्रखण्ड) है, जिसका कुल क्षेत्रफल 18553 हेक्टेयर है एवं पटना जिला के दक्षिण-पूर्वी सीमा पर दरधा एवं कररूआ नदी के मैदानी भाग में स्थित है। भारत सरकार जनगणना 2011 के अनुसार इस प्रखण्ड में कुल 122 गाँव में से 20 गाँव पूर्ण ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है, जहाँ विभिन्न प्रकार के आवश्यक वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध है एवं 32 संभावित ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विकास कर रहा है।

उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं-

1. ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर ग्रामीण सेवा केन्द्रों का प्रभाव का सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन करना।
2. ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति एवं विकास के लिए आवश्यक दशाओं की पहचान करना।

संकल्पना– प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यतः निम्नलिखित संकल्पनाओं पर विचार किया गया है-

1. ग्रामीण सेवा केन्द्र के प्रभाव में सेवित क्षेत्र समग्र विकास की ओर अग्रसर होता है।
2. सेवित क्षेत्र के लोगों की समय एवं परिवहन खर्च की बचत होती है।
3. ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास से व्यावसायिक फसलों के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

अध्ययन क्षेत्र–

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र बिहार राज्य के पटना जिला का धनरूआ प्रखण्ड है। यह प्रखण्ड 25°16'14" उत्तरी अक्षांश से 25°27'18" उत्तरी अक्षांश एवं 82°02'39" पूर्वी देशांतर से 85°11'22" पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 18553 हेक्टेयर है, जिसमें कुल 211376 लोग निवास करते हैं। इसमें कुल 122 गाँव है, जिसमें से 20 गाँव ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो चुके हैं। इस प्रखण्ड का

प्रखण्ड-सह-अंचल कार्यालय धनरूआ में ही है, जो राजकीय उच्च पथ-01 पर स्थित है। यहाँ मुख्यतः मगही एवं हिन्दी भाषाएँ बोली जाती है। यहाँ मानसूनी प्रकार की जलवायु मिलती है। इस प्रखण्ड के उत्तर में पुनपुन प्रखण्ड, दक्षिण में जहानाबाद जिला, पूरब में नालंदा जिला एवं पश्चिम में मसौढ़ी प्रखण्ड स्थित है।

विधि-तंत्र-

प्रस्तुत शोध-पत्र मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। परंतु इसके साथ-साथ प्राथमिक आँकड़ों एवं स्वावलोकन तथा अपने अनुभवों अर्थात् Empirical Experienc मे का भी उपयोग किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों का संग्रहण जनगणना कार्यालय, पटना; पटना जिले के सांख्यिकी विभाग, अंचल कार्यालय धनरूआ तथा इंटरनेट के माध्यम से किया गया है तथा शोध-पत्र में उपयोग किये गये संबंधित प्रखण्ड का मानचित्र भी जनगणना कार्यालय, पटना से ही प्राप्त किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण व्यक्तिगत सर्वेक्षण, निरीक्षण एवं पूछताछ के अलावे अपने अनुभवों के आधार पर किया गया है, क्योंकि मैं स्वयं अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड का निवासी हूँ एवं उपरोक्त विधियों द्वारा संकलित आँकड़ों को आवश्यक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर क्रमबद्ध रूप से विश्लेषण किया गया है एवं उन्हें मानचित्रों तथा आरेखों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

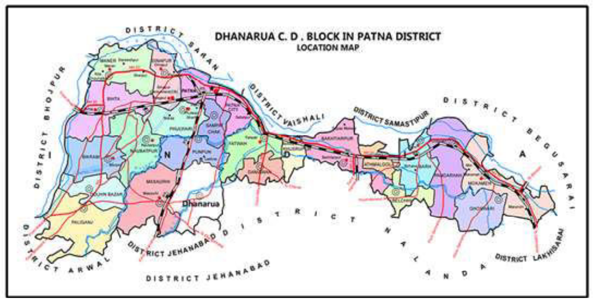

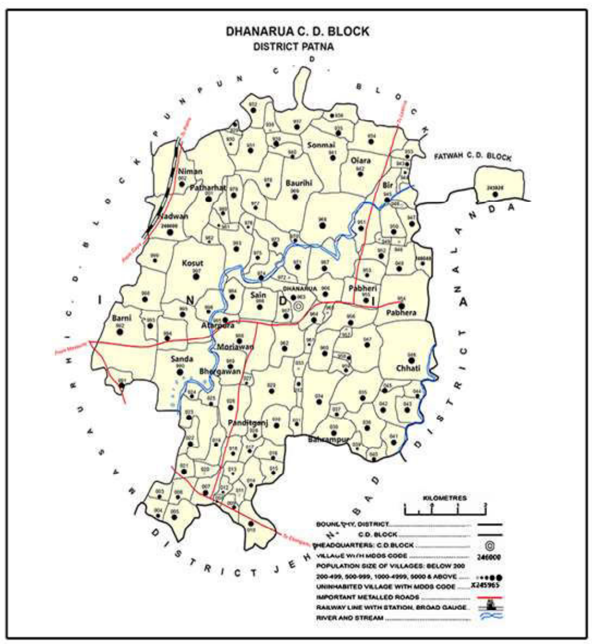

ग्रामीण सेवा केन्द्रों को चयन करने के तरीके-

एस०पी० जायसवाल ने अपने अध्ययन में सेवा केन्द्रों को पहचानने के लिए पाँच सुविधाओं को चुना है, जिनमें से तीन सुविधा प्रदान करने वाले गाँव को सेवा केन्द्र के रूप में माना गया है। लेकिन प्रस्तुत अध्ययन में सात सुविधाओं को चुना गया है, जिसमें

Serial No.	Name of village	Location code No.	Area (in hectare)	Population of village	Middle school	Secondary school	S. Secondary school	Degree college	Post office	Cyber café	Bus stand	Railway Station	Bank/ATM	Regular market	Health centre	Total worker (in %)	Percentage of Main worker of total population	Percentage of Marginal worker of total population	Percentage of Non worker	Percentage of Non Agricultural main worker of total population	Literacy rate	Net Area sown (in %)	Percentage of Total Irrigated area of total area	Main source of irrigation (Tube well-TW, Tank-T, Other-O)	Public Library	Sports Field	News paper supply	Community centre
	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29
1	**Sonmai**	245941	344	4612	4	2	0	0	Y	Y	N	N	Y	N	Y	38	31	7	52	15	46	90	90	O	Y	Y	Y	Y
2	**Oiara**	245942	301	3580	1	3	0	0	Y	Y	N	N	Y	Y	Y	44	34	10	56	11	54	87	87	O	Y	Y	Y	Y
3	**Bir**	245945	241	3256	1	2	1	0	N	Y	Y	N	Y	Y	Y	37	36	1	63	4	41	99	21	TW	N	Y	Y	N
4	**Pabhera**	245954	452	6690	5	1	3	0	Y	Y	N	N	Y	Y	Y	30	21	9	70	17	52	74	73	O	N	Y	Y	N
5	**Pabheri**	245955	158	1699	1	4	0	0	N	Y	Y	N	N	Y	N	32	31	1	68	12	43	81	61	TW	N	N	Y	N
6	**Dhanarua**	245963	193	2938	1	2	0	0	Y	Y	Y	N	Y	Y	Y	48	28	3	69	22	57	82	68	O	N	N	Y	Y
7	**Baurihi**	245969	482	4098	1	3	0	0	Y	Y	N	N	N	Y	N	25	23	9	68	22	52	96	96	T	Y	N	Y	Y
8	**Atarpura**	245985	88	2605	3	1	0	0	N	Y	Y	N	N	N	N	38	24	14	62	17	43	72	72	TW	Y	N	N	Y
9	**Sain**	245986	210	3407	1	1	1	1	Y	Y	Y	N	Y	N	N	30	28	2	70	14	55	55	49	TW	Y	Y	Y	Y
10	**Moriawan**	245988	379	3458	4	3	0	0	N	Y	Y	N	Y	N	Y	32	27	11	62	8	48	98	50	Canal	Y	N	N	Y
11	**Bhergawan**	245989	183	1709	2	5	2	1	Y	Y	N	N	Y	N	Y	28	25	3	72	15	53	87	67	TW	N	N	Y	N
12	**Sanda**	245990	524	7675	2	1	0	0	Y	Y	N	N	N	Y	Y	41	33	7	60	14	51	92	70	TW	N	Y	Y	N
13	**Barni**	245992	598	9010	8	2	3	1	Y	Y	Y	N	N	Y	Y	32	17	15	68	16	54	91	66	TW	Y	Y	Y	Y
14	**Kosut**	245997	558	5833	3	8	0	0	Y	Y	Y	N	N	Y	Y	39	32	7	61	16	51	75	40	TW	N	N	Y	N
15	**Nadwan**	246000	344	6255	4	2	3	1	Y	Y	Y	Y	Y	Y	Y	31	27	4	69	35	52	77	39	TW	N	Y	Y	N
16	**Patharhat**	246001	524	5719	2	3	2	0	Y	Y	N	N	N	Y	Y	41	31	10	59	7	40	75	28	TW	Y	N	Y	Y
17	**Niman**	246002	305	2425	1	2	0	0	Y	Y	Y	Y	N	Y	N	32	30	3	67	13	60	86	20	TW	Y	N	Y	Y
18	**Panditganj**	246028	45	833	1	1	1	0	Y	Y	N	N	N	Y	N	40	23	18	59	13	35	89	59	TW	N	Y	N	N
19	**Bahrampur**	246038	160	2115	1	1	0	0	Y	Y	N	N	N	Y	Y	38	9	30	61	12	52	54	36	TW	N	Y	N	N
20	**Chhati**	246046	546	6335	5	5	4	0	Y	Y	Y	N	N	Y	N	40	35	5	60	11	46	67	40	TW	Y	Y	Y	Y
DHANARUA BLOCK (TOTAL)		**379**	**18553**	**211376**	**195**	**188**	**25**	**4**	**39**	**50**	**14**	**2**	**13**	**17**	**55**	**40**	**29**	**11**	**60**	**11**	**50**	**82**	**61**	**TW**	**21**	**14**	**55**	**21**

Source: Census of India 2011.

से कम से कम पाँच सुविधाएँ प्रदान करने वाले ग्रामीण केन्द्र को ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में माना गया है तथा वैसे ग्रामीण केन्द्र जो कम से कम चार शर्तों को पूरा करते हैं उन्हें संभावित ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में माना गया है। ये सात सुविधाएँ निम्नलिखित है-

1. सेवा प्रदान करने वाले गाँव की कुल जनसंख्या कम से कम 1500 होना चाहिए।
2. सेवा प्रदान करने वाले गाँव की कुल कार्यिक जनसंख्या का कम से कम 15% मुख्य कार्यिय जनसंख्या गैर-कृषि कार्यों में संलग्न हो।
3. वैसे केन्द्रीय स्थल जहाँ कम से कम एक मध्य विद्यालय या अन्य उच्चतर शैक्षणिक संस्थान उपलब्ध हो।
4. जहाँ पंजी.त डश्वक्टर या दवाखाना उपलब्ध हो।
5. जहाँ जनउपयोगी संस्थानों जैसे-प्रखण्ड कार्यालय, थाना, ATM, बैंक, नियमित बाजार, साइबर कैफे आदि में से कम से कम एक मौजूद हो।
6. जहाँ अपने आस-पास के जरूरतों की पूर्ति के लिए आवश्यक वस्तुएँ मिलती हो।
7. परिवहन या संचार के साधन जैसे-डाकघर, बस स्टैण्ड या रेलवे स्टेशन में से कम से कम एक साधन मौजूद हो।

अतः उपरोक्त शर्तों के आधार पर धनरूआ प्रखण्ड में स्थित 20 ऐसे ग्रामीण केन्द्रों का चयन किया गया है जो पूर्ण ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विभिन्न प्रकार की सेवाएँ प्रदान करा रहा है तथा 32 संभावित ग्रामीण सेवा केन्द्रों का चयन किया गया है।

ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति एवं विकास-

सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति मुख्यतः दो तरह से होती है, पहला यह कि किसी जगह पर शैक्षणिक संस्थान, अस्पताल, प्रशासनिक केन्द्र, रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड आदि में से एक-दो सुविधाएँ भी बहाल कर दिये जाते हैं तो वहाँ धीरे-धीरे उन सेवाओं से संबंधित अन्य सुविधा केन्द्र भी स्थापित हो जाते हैं और वह स्थान एक सेवा केन्द्र के रूप में उभरकर सामने आता है और दूसरा यह कि किसी गाँव में या किसी चौक-चौराहा पर एक्का-दुक्का दुकानों, साप्ताहिक बाजारों, नाई-धोबी की दुकान आदि छोटी-मोटी सुविधाएँ प्रदान करने वाले केन्द्रों का आकार, सेवा प्रदान करने की क्षमता आदि में धीरे-धीरे वृद्धि होते रहने के कारण वो सुविधा केन्द्र अंततः एक पूर्ण ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो जाता है। विकासशील प्रदेशों में सामान्यतः या तो बड़े नगर या फिर छोटी ग्रामीण इकाईयाँ जहाँ कुछ विशिष्ट सुविधाएँ उपलब्ध होती है, केन्द्र स्थलीय क्रियाकलाप करते हैं। बेरी महोदय ने बताया कि किसी पारिवारिक ईकाई या निकटतम सामाजिक वर्ग द्वारा वस्तु एवं सेवाओं का पारस्परिक आदान-प्रदान अथवा विनिमय व्यवस्था के कारण केन्द्र स्थल या बाजार स्थलों की उत्पत्ति होती है।

अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड के सभी ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति स्वातंत्रयेत्तर काल (1947ई० के बाद) हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सेवा केन्द्रों के विकास में परिवहन मार्गों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस काल में अध्ययन क्षेत्र में संयुक्त रूप से पक्के एवं कच्चे सड़क का जाल बिछा दिया गया है एवं कई शैक्षणिक संस्थानों का निर्माण किया गया। परिणामस्वरूप इन सड़कों के किनारे कई जगह ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ है।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों के योगदान को प्रदर्शित करने वाले मुख्य तत्व :

कृषि-अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड का धरातलीय दशा मूलतः मैदानी प्रकृति की है। यहाँ उपजाऊ मिट्टी के साथ-साथ भूमिगत जल एवं नदियों का जल प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है। अर्थात् यह क्षेत्र कृषि प्रधान है। यहाँ हरित क्रांति की विशाल संभावनाएँ छिपी हुई है। यहाँ की कुल कार्यिक जनसंख्या (83915 व्यक्ति) का 84 प्रतिशत से अधिक (70602 व्यक्ति) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्य में लगा हुआ है तथा यहाँ कुल 82 प्रतिशत भूमि पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ वर्ष में चार फसल (गरमा, भदई, अगहनी एवं रबी) उगायी जाती है। यहाँ गहन निर्वाहन प्रकार की कृषि की जाती है, परंतु ग्रामीण सेवा केन्द्रों के प्रभाव में ये व्यावसायिक एवं नकदी फसलों की उत्पादन की ओर अग्रसर हो रही है। इस क्षेत्र में व्यवसायिक एवं नकदी फसलों के रूप में मुख्यतः कच्चा चना, मक्का (भुट्टा), गन्ना, धान, गेहूँ, प्याज, हल्दी एवं अन्य विभिन्न प्रकार के सब्जी फसलों की खेती की जाने लगी है। इससे किसानों को पहले के तुलना में अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों में भ्ल्ट बीज, आवश्यक किटनाशकों, रासायनिक उर्वरकों एवं विभिन्न प्रकार के आधुनिक कृषि यंत्रों की उपलब्धता के कारण किसान आसानी से इसे अपने कृषि कार्य में प्रयोग कर रहे हैं। इस प्रकार उन्हें परंपरागत कृषि के तुलना में अधिक उत्पादन प्राप्त हो रहा है तथा उन कृषि उत्पादों को बेचने के लिए नजदीक में ही बाजार केन्द्र की उपलब्धता के कारण उन्हें परिवहन खर्च एवं समय की बचत होती है। यहाँ तक कि जल्दी खराब होने वाले कृषि उत्पादों एवं पशु उत्पादों की बर्बादी में भी काफी कमी आयी है। इस प्रकार किसानों को कृषि कार्य से होने वाले आय में भी वृद्धि हुई है। अर्थात् सेवा केन्द्रों के प्रभाव में अध्ययन क्षेत्र में कृषि क्षेत्र में भी विकास हुआ है।

शिक्षाः

समन्वित ग्रामीण विकास में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। शैक्षणिक संस्थाएँ किसी स्थान विशेष की सामाजिक-आर्थिक विकास को सु.ढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड की कुल जनसंख्या 211376 है एवं प्रखण्ड की औसत साक्षरता दर केवल 50% है तथा पुरुष एवं महिला साक्षरता दर क्रमशः 59% एवं 39% है, जो इसी प्रखण्ड के कुछ ग्रामीण सेवा केन्द्रों के साक्षरता के तुलना में काफी कम है। जिसका मुख्य कारण है सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षणिक संस्थानों एवं सुविधाओं का पर्याप्त मात्र में उपलब्ध न होना। धनरूआ प्रखण्ड में कुल 122 गाँव हैं परंतु मात्र चार महाविद्यालय एवं नौ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय ही उपलब्ध है। अधिकांश ग्रामों में केवल प्राथमिक या मध्य विद्यालय तक की ही शैक्षणिक केन्द्र उपलब्ध हैं। अतः लोग गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए ग्रामीण सेवा केन्द्रों की ओर उन्मुख हो रहे हैं। लोगों में शैक्षणिक विकास होने के कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उनके सामाजिक एवं सांस्.तिक क्रियाकलापों में विकास होता है तथा अंततः ये शिक्षा लोगों के आर्थिक विकास में भी सहायक होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षणिक विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

परिवहन एवं संचारः

परिवहन न केवल समन्वित ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करता है, बल्कि सेवा केन्द्रों के उद्‌भव एवं विकास में भी सहायक होते हैं। वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र (धनरूआ प्रखण्ड) से होकर दो राजकीय उच्च पथ-एसएच-01 एवं एसएच-100 एवं प्रखण्ड के पश्चिमोत्तर भाग से होकर राष्ट्रीय उच्च पथ-83 गुजरती है। इसके अलावे इस प्रखण्ड के लगभग सभी गाँव पक्की सड़कों के माध्यम से इन राष्ट्रीय एवं राजकीय उच्च पथों से जोड़ दिया गया है तथा प्रखण्ड के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित नीमा तथा नदवाँ ग्राम से होकर पटना-गया रेल मार्ग गुजरती है तथा इन दोनों गाँव के पास सभी पसेन्जर रेलगाड़ियों का ठहराव भी है। इसके अलावा इस प्रखण्ड के अधिकांश लोग तरेगना रेलवे स्टेशन से रेलवे की सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार परिवहन के दृष्टिकोण से ये प्रखण्ड काफी बेहतर स्थिति में है एवं अध्ययन क्षेत्र में कुल 39 डाकघर है तथा सभी ग्रामीण सेवा केन्द्रों पर साइबर कैफे की सुविधा उपलब्ध है। इस प्रकार संचार के दृष्टिकोण से भी यह क्षेत्र काफी अच्छा स्थिति में है, जो क्षेत्र के समग्र विकास में सहायक है। परंतु यह देखा गया है कि अधिकांश ग्रामीण सेवा केन्द्रों का विकास वैसे ग्रामीण केन्द्रों में हुआ है जहाँ से होकर कोई न कोई महत्वपूर्ण सड़क गुजरती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति एवं विकास में परिवहन के साधनों का महत्वपूर्ण भूमिका होता है।

अध्ययन क्षेत्र में परिवहन एवं संचार के अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण ग्रामीण लोगों को अपने उत्पादित वस्तुओं को दूर स्थित बाजारों एवं विपणन केन्द्रों तक पहुँचाना आसान हो गया है। इस कारण किसानों को अपने उत्पादों को औने-पौने दामों पर बेचने की विवशता नहीं होती है। अब वो मनपसंद व्यापारियों को अपने उत्पाद बेचने को स्वतंत्र रहते हैं और मनपसंद दुकानों से आवश्यक वस्तुएँ खरीद पाते हैं। इस प्रकार उन्हें परिवहन खर्च भी कम पड़ता है, समय की बचत होती है और अधिक मुनाफा भी प्राप्त होता है।

आर्थिक क्रियाकलापः

ग्रामीण सेवा केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाकलापों का केन्द्र होता है। ये केन्द्र अपने प्रभाव क्षेत्र के लोगों को विभिन्न प्रकार के सेवाएँ प्रदान करने के साथ-साथ गाँवों में स्थित छोटे-मोटे दुकानों के लिए अभिपूर्तिकर्ता का काम भी करते हैं। ग्रामीण लोग अपनी बैंकिंग कार्यों के संपादन के लिए मुख्य रूप से ग्रामीण केन्द्र पर ही निर्भर रहते हैं, क्योंकि बैंक एवं ATM सामान्यतः ग्रामीण बाजार एवं नगरीय केन्द्रों में ही स्थित होते हैं। इसके अलावे लोग अपनी दैनिक जरूरत की वस्तुओं की प्राप्ति एवं कृषि कार्य के लिए आवश्यक बीज, किटनाशक, उर्वरक एवं अन्य रासायनिक पदार्थों तथा आधुनिक कृषि यंत्रों की आपूर्ति के लिए निकटवर्ती ग्रामीण सेवा केन्द्रों पर ही निर्भर रहते हैं। इसके साथ-साथ कृषि एवं पशु उत्पादों का विक्रय के लिए भी इन्हीं ग्रामीण सेवा केन्द्रों को पसंद करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड में 20 ग्रामीण सेवा केन्द्र है, जिसमें 17 केन्द्रों में नियमित बाजार लगता है। परंतु प्रखण्ड के लगभग आधा से अधिक लोग अपनी आर्थिक क्रियाकलापों के लिए धनरूआ ग्रामीण सेवा केन्द्र में ही आना पसंद करते हैं, क्योंकि यह आस-पास के सबसे बड़ा ग्रामीण सेवा केन्द्र है एवं क्षेत्र के दूसरी बड़ी आबादी मसौढ़ी

नगरीय केन्द्र से विभिन्न प्रकार की आर्थिक सेवाएँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार इन सेवा केन्द्रों के साथ-साथ अन्य ग्रामीण सेवा केन्द्र भी ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

स्वास्थ्य सुविधाएँ:

धनरूआ प्रखण्ड में कुल 55 ग्रामीण केन्द्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जो अपने प्रभाव क्षेत्र के लोगों को सामान्य स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करते हैं तथा लोग कुछ बेहतर स्वास्थ्य सेवा के लिए प्रखण्ड मुख्यालय धनरूआ तथा विशेषी.त स्वास्थ्य सेवाएँ की प्राप्ति के लिए सबडिविजन मुख्यालय मसौढ़ी एवं जिला मुख्यालय पटना जैसे नगरीय केन्द्रों पर निर्भर रहते हैं। अतः इस प्रकार के ग्रामीण सेवा केन्द्रों में उच्च कोटि के स्वास्थ्य केन्द्रों की आवश्यकता है, जिससे कि ग्रामीण लोग को अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं की प्राप्ति के लिए दूर स्थित नगरीय केन्द्रों पर निर्भर नहीं रहना पड़े। इससे लोगों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का आसानी से निदान हो सकेगा तथा विषम परिस्थितियों में भी उनकी जान की रक्षा की जा सकेगी एवं लोगों का समय तथा पैसे की बचत भी होगी जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास में सहायक होगा।

प्रशासनिक सुविधाएँ:

धनरूआ प्रखण्ड का सबसे बड़ा प्रशासनिक केन्द्र धनरूआ प्रखण्ड ही है, क्योंकि इस प्रखण्ड का प्रखण्ड-सह-अंचल कार्यालय एवं थाना धनरूआ में ही स्थित है। अतः इस प्रखण्ड के सभी लोग अपने प्रशासनिक कार्यों के लिए इसी ग्रामीण सेवा में आते हैं।

रोजगार निर्माण:

ग्रामीण सेवा केन्द्र छोटे स्तर पर रोजगार निर्माण का कार्य भी करता है। सामान्यतः ऐसा देखने को मिलता है कि जब किसी ग्रामीण केन्द्र या चौक-चौराहा पर सुविधा केन्द्रों का विकास होता है तो वहाँ पर विभिन्न प्रकार की कई दुकानें जैसे-किराना दुकान, कपड़े की दुकान, स्टेशनरी, मशीनरी, हार्डवेयर, शृंगार, रेडिमेड, होटल, फोटोकॉपी, धोबी, नाई, चर्मकार, स्टूडियो, ग्रील निर्माण, फर्नीचर आदि कई प्रकार के दुकानें स्थापित हो जाते हैं। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक संस्थान, अस्पताल, दवाखाना, फूटपाथी दुकान आदि स्थापित कर दिये जाते हैं, जिसमें काम करने वाले लोगों को अपने भरण-पोषण का साधन मिल जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ग्रामीण सेवा केन्द्र छोटे स्तर पर ही सही पर अपने गाँव में ही रोजगार प्रदान करने का कार्य करता है। भारत की जनगणना 2011 से यह स्पष्ट होता है कि धनरूआ प्रखण्ड में कुल कार्यिक जनसंख्या (83915 व्यक्ति) का केवल 11% (9442 व्यक्ति) मुख्य कार्यिक जनसंख्या ही गैर-कृषि कार्यों में संलग्न है। जबकि ग्रामीण सेवा केन्द्रों में यह औसतन 15 प्रतिशत है। कुछ ग्रामीण सेवा केन्द्रों जैसे-नदवां एवं धनरूआ में तो इसका प्रतिशत क्रमशः 35 एवं 22 तक पाया गया है। इससे यह साबित होता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्र लोगों को रोजगार प्रदान करने का कार्य भी करता है।

सामाजिक-सांस्.तिक विकास:

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों का उदभव एवं विकास होने से वहाँ के लोगों का आर्थिक स्थिति में भी सुधार आता है। कई लोगों को रोजगार मिलता है। कृषकों को नजदीक में ही बाजार मिलता है एवं बच्चों को विभिन्न

प्रकार के शैक्षणिक सुविधाएँ मिलती है, जिससे वहाँ के लोगों का शैक्षणिक विकास होता है। तथा यह सर्वविदित है कि लोगों की आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास होने पर उनका सामाजिक-सांस्.तिक स्थिति में स्वतः सुधार आ जाता है। अर्थात् ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास के साथ-साथ वहाँ के लोगों का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्.तिक विकास होता है।

निष्कर्ष एवं सुझावः

अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है। अतः मौनसून की अनिश्चितता से इस प्रखण्ड की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होती है। यहाँ अनाजों की खरीद-बिक्री के लिए मुख्यतः गोला (अनाज का दुकान), खुदरा व्यापारी या किसी अन्य विचौलियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसके कारण उत्पादकों को अपने उत्पादों का पर्याप्त कीमत नहीं मिल पाता है। अतः प्रखण्ड के प्रत्येक पंचायत में कम से कम एक 'ग्रेन कलेक्सन सेन्टर' खोलने की आवश्यकता है, जहाँ किसान अपने उत्पादों को उचित दाम पर बेच सके। यहाँ के अधिकांश ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति एवं विकास भी कृषि आधारित सुविधाओं की वजह से हुआ है। हालांकि बाद में वहाँ गैर-कृषि सुविधाएँ (जैसे-प्रखण्ड मुख्यालय, थाना, शैक्षणिक केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र आदि) भी बहाल कर दी गई। फिर भी प्रखण्ड के विकास में कुछ लघु, सूक्ष्म एवं कुटीर उद्योगों के अलावा मध यम एवं बड़े उद्योगों का योगदान लगभग नगण्य है। इस प्रखण्ड में उद्योगों के विकास के लिए निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं-

* उद्योग स्थापित करने के लिए इच्छुक लोगों को उद्योगों से संबंधित प्रशिक्षण देकर उन्हें आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग प्रदान कर प्रोत्साहित करना।
* कच्चे मालों की आपूर्ति एवं तैयार मालों की बिक्री के लिए बाजार का व्यवस्था करना।
* सतत् बिजली आपूर्ति की व्यवस्था करना।
* परिवहन के साधनों को सु.ढ़ करना। इत्यादि।

इसके अलावा अध्ययन क्षेत्र धनरूआ प्रखण्ड के समग्र विकास के लिए निम्नांकित आवश्यकताओं एवं समस्याओं पर भी ध्यान देने की जरूरत है-

* प्रखण्ड में सिंचाई के साधनों को विकसित करने एवं कृषि के लिए आवश्यक वस्तुएँ (जैसे-खाद, बीज, कीटनाशक आदि) एवं आधुनिक कृषि उपकरणों एवं तकनीकों को छोटे किसानों के सामर्थ के लायक भी बनाया जाना चाहिए।
* व्यावसायिक फसलों एवं औद्योगिक फसलों के उत्पदान के लिए किसानों को प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
* किसानों को सस्ती दरों पर बिजली की सतत् आपूर्ति की जानी चाहिए।
* छोटे ग्रामीण सुविधा केन्द्र में भी विभिन्न प्रकार के नगरीय सुविधाएँ जैसे-शैक्षणिक केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, संचार एवं परिवहन के साधन आदि की व्यवस्था किया जाना चाहिए।
* प्रखण्ड के संभावित ग्रामीण सेवा केन्द्रों को भी पूर्ण ग्रामीण सेवा केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।
* सड़कों को नियमित रूप से मरम्मत किया जाना चाहिए। इत्यादि।

धनरूआ प्रखण्ड के स्वावलोकन एवं क्षेत्र सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि सेवा केन्द्र किसी भी क्षेत्र के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कृषि विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, संचार, कृषि उकरण, खाद, बीज, बाजर आदि से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति भी सेवा केन्द्रों से ही संभव हो पाता है। इससे सेवित क्षेत्र के लोगों का समय की बचत होती है। किसान व्यवसायिक एवं औद्योगिक फसलों के उत्पादन के लिए प्रोत्साहित होते हैं। अर्थात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अन्ततः मैं यह कहना चाहूँगा कि अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता के लिए खास कर खुले में शौच से मुक्ति के लिए व्यापक जागरूकता अभियान चलाये जाने की जरूरत है।

==================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. कुमार, सुमंत (2013) : बिहार के शेखपुरा जिला में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का क्षेत्रीय प्रतिरूप, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पटना विश्वविद्यालय।
2. Gautam, Harender Raj (2015) : Adoption of Technology can change Agriculture from subsistance to commercial, Kurukshetra, Vol. 63, No. 3, p. 3-7.
3. Ghanshyam Goel & Samrat Bandopadhyay (2015) : Measures to make Agriculture Profitable, Kurukshetra, Vol. 63, No. 3, p.30-31.
4. Katiman Rostam (1991) : The role of service centre on Rural Development : A Study of the Settlements in Hilir Perak, Malaysia, Akademika-38, (January 1991), p. 29-58.
5. Bromley, R. (1984) : Market Centres, Marketing Policies and Agricultural Development, Regional Development Dialogue 5 (1) : p. 149-65.
6. Sudhir Wanmali and Yassir Islam (1995) : Rural Services, Rural Infrastructure and Regional Development in India, The Geographical Journal, Vol. 161, No. 2, July 1995.
7. Singh, Puran (2014) : Swachh Bharat Mission - An opportunity for making India open defecation free and clean, Kurukshetra, Vol. 63, No. 2, p. 3-6.
8. Sinha, V.N.P., Nazim, M., Ahmad, P.F. (2013) : Bihar : Land, People and Economy, Rajesh Publication, New Delhi.
9. District Census Hand Book, Patna-Part-A & B, 2011.
10. Census of India, 2011.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

झारखंड के परंपरागत कृषि में बदलाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

* जगदीश कुमार महतो

सारांश– *झारखंड जंगलों का राज्य कहा जाता है। यहाँ 28 से 30 प्रतिशत जंगल है। झारखंड में जंगलों की बहुलता के कारण खेती के लिए जमीन तो सीमित है, पर यहाँ के लोग खेती से संबंधी विषयों में हमेशा संशय और द्वंद की स्थिति में रहते हैं। झारखंड का कड़वा सच यह भी है कि यहाँ की व्यवस्था कृषि केंद्रित व्यवस्था नहीं है। अनाज की कमी से उत्पन्न भुखमरी से बचने के लिए प्रायः झारखंड से अधिकांशतः आदिवासी पलायन कर जाते थे। हांलाकि, मनरेगा आने के बाद यह पलायन रूका है। लेकिन अब भी मुबंई व कोलकाता जाने वाली ट्रेने चंद महीनों को छोड़ कर खेती–किसानी से बिछड़े मजदूरों से भरी रहती है। एक अध्ययन के अनुसार भारतीय परिदृश्य में 1991 से 2015 के बीच करीब डेढ़ करोड़ किसानों ने खेती छोड़ दी। उस दौरान प्रतिदिन खेती छोड़नेवाले किसानों की औसत संख्या 2,035 थी। इनका ध्यान अपनी जमीन पर औद्योगिक भवन या किराये के लिए मकान खड़ा कर जमीन से पैसे उगाही पर चला गया लेकिन यहाँ दुष्परिणाम यह होने लगा कि हरेक के द्वारा ऐसा करना संभव भी नहीं था और कृषि छोड़ने के बावजूद मंहगे होते अनाजों से पेट भरना भी एक चिंतनीय प्रश्न था। अतः ऐसे में पारंपरिक कृषि में बदलाव कर किसानों के द्वारा लाभ लेने की ओर सबका ध्यान केंद्रित हुआ।*

मुख्य शब्द– पलायन, पारम्परिक खेती, पैदावार, बदलाव, जैविक खेती।

2011 की जनगणना के अनुसार, झारखंड में दिन में दो बार भोजन न पाने वाले परिवारों का प्रतिशत संयुक्त बिहार की तुलना में अपेक्षाकृत ऊँचा है। यह पूरे भारत के औसत आंकड़े से भी काफी ज्यादा है। जब नवगठित राज्यों से तुलना करते हैं, तो बिना पर्याप्त भोजन के जीने वाले परिवारों का प्रतिशत भी झारखंड में सर्वाधिक है। अतः पारंपरिक खेती में बदलाव लाकर किस तरह पैदावार बढ़ाई जाय ताकि खाद्यान्न उत्पादन ज्यादा हो और झारखंड में भूख की समस्या को कम किया जा सके, यह शोध अध्ययन का महत्वपूर्ण बिन्दु है। इसलिए वर्तमान परिदृश्य में यह अत्यंत प्रासंगिक शोध-पत्र है जिसमें झारखंड के जनसमुदाय के द्वारा पारंपरिक कृषि में बदलाव को अनेक दृष्टिकोणों से समझने की कोशिश की गई है।

शोध–पत्र का उद्देश्य– शोध का उद्देश्य निम्न है :

क) झारखंड में परंपरागत कृषि की स्थिति व उसमें बदलाव क्यों होना चाहिए के कारणों का अध्यन करना।

* सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग जगन्नाथ नगर, झारखण्ड महाविद्यालय, धुर्वा, राँची

ख) परंपरागत खेती में बदलाव व उसके स्वरूप का अध्ययन करना।

ग) बदलाव हेतु सुझाव का रूपांकन करना।

शोध–अध्ययन विधि–

शोध-अध्ययन के अन्तर्गत् निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सर्वप्रथम क्षेत्रीय सर्वेक्षण का कार्य किया गया। इसके तहत साक्षात्कार-अनुसूची, रिकॉर्डर का प्रयोग किया गया। शोध-कार्य को और स्पष्ट करने हेतु द्वैतियक आँकड़ों का भी अध्ययन किया गया।

विश्लेषण–

झारखंड में परंपरागत कृषि की वर्तमान स्थिति–

झारखण्ड में अलग-अलग इलाकों में परंपरागत कृषि का स्वरूप अलग-अलग है। शोध-अध्ययन से स्पष्ट है कि राँची केंद्र यानी पलामू से लेकर हजारीबाग तक कृषि 60 प्रतिशत लोगों की पहली पसंद है तो धनबाद केंद्र में संथालपरगना से लेकर कोयलांचल तक 42 प्रतिशत।[2] संथालपरगना का बड़ा भू-भाग कृषि आधारित व्यवस्था को जाता है, जहाँ धान की खेती की प्रमुखता है। इतना ही नहीं, पान तक की खेती इन इलाकों में होती है। वहीं कोयलांचल में धान व सब्जी की प्रमुखता है। राँची, खूंटी, हजारीबाग जैसे इलाकों में खरीफ फसलों के साथ सब्जी की प्रचुरता है। झारखंड में धान, आलू, टमाटर आदि के कृषि जोन बनाने की बात हो रही है।

झारखंड की अर्थव्यवस्था और इसके जीवन का मूल आधार कृषि व जंगल है। झारखंड की कुल आबादी 27 मिलियन है, जिसमें से 20 मिलियन लोग खेती और जंगलों पर आश्रित रहते हैं। इन 20 मिलियन लोगों में से ज्यादातर किसान छोटे और मंझोले श्रेणी के किसान हैं जिनके पास औसतन एक से डेढ़ एकड़ जमीन खेती के लिए है।[3] ऐसे में छोटे और मंझोले किसान जंगलों से लकड़ियाँ काटकर उससे संबंधित व्यवसाय करते हैं। यहाँ के खेती का मॉडल वास्तव में देश-दुनिया के खेती के मॉडल से मिलता-जुलता है। शोध-अध्ययन से स्प्ष्ट होता है कि यहाँ के किसान समझते हैं कि धान की खेती करने में ज्यादा फायदा है, क्योंकि इनको धान की खरीद-बिक्री में ज्यादा पैसा है। जबकि इनको धान की खेती से ध्यान हटाकर परंपरागत कृषि में बदलाव की तरफ ध्यान देना चाहिए। इसका प्रमुख कारण निम्न है-

1. झारखंडीय सत्ता के केंद्र में न तो किसान हैं और न ही कृषि कार्य से जुड़े उद्योग।
2. किसान अब भी कृषि कार्य की बुनियादी जरूरतों सिंचाई, बीज, उर्वरक और नयी तकनीकों से वंचित हैं।

कुल सिंचित क्षेत्र/कुल बोया गया क्षेत्र[4]

राज्य	कुल बोया गया क्षेत्र
झारखंड	0.09
बिहार	0.62
छत्तीसगढ़	0.22
महाराष्ट्र	0.17
पंजाब	0.94
तमिलनाडु	0.54
उत्तरांचल	0.29

स्त्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार वर्ष-2017

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि कृषिगत भूमि के सिंचाई के मामले में झारखंड की हालत बड़ी दयनीय है। यहाँ के 10 प्रतिशत से भी कम कृषि क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा है। इतनी कम भूमि का सिंचित होना इस राज्य के कृषि क्षेत्र में विकास के लिए एक बड़ी चुनौती है।

3. किसानों के उत्पादन और बाजार के बीच तर्क सम्मत सामंजस्य नहीं है।

झारखंड में रोपा (हजार हेक्टेयर में) वर्ष 20175

जिला	रोपा	जिला	रोपा
राँची	76.52	खूंटी	93.61
गुमला	77.03	सिमडेगा	76.92
लोहरदगा	75.12	गढ़वा	43.09
पलामू	60.00	लातेहार	70.05
पूर्वी सिंहभूम	56.00	प.सिंहभूम	76.59
सरायकेला	76.58	हजारीबाग	86.22
रामगढ़	75.72	चतरा	68.11
कोडरमा	75.88	गिरिडीह	55.81
धनबाद	49.58	बोकारो	60.08
दुमका	69.75	देवघर	85.00
जामताड़ा	72.00	गोड्डा	67.00
साहेबगंज	91.02	पाकुड़	80.00

स्त्रोत :कृषि विभाग, झारखंड सरकार रिर्पोट वर्ष 2017

4. कृषि क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के वर्चस्व ने किसानों की आत्मनिर्भरता और परंपरागत कृषि की ताकत को हड़प लिया है। परिणामस्वरूप बीज से लेकर उर्वरक तक के लिए किसानों को महाजनों के यहाँ चक्कर काटना पड़ता है।

5. सहकारी बैंक और अन्य राष्ट्रीय बैंक कुछ ऋण की व्यवस्था जरूर करते हैं, लेकिन वह न केवल अपर्याप्त है, बल्कि उसकी प्रक्रिया भी बहुत जटिल है।

6. कभी-कभी सरकार कर्ज माफी की घोषणा करती है, लेकिन उससे किसान अंशतः ही प्रभावित होते हैं। निस्संदेह कर्ज माफी किसानों को तत्काल राहत देती है, लेकिन जब तक ठोस कृषि व्यवस्था नहीं बन जाती, तब तक कर्ज माफी के बाद भी किसान पुनः कर्ज की अंधेरी गलियों में भटकने के लिए विवश होंगे ही।

7. ग्लोबल वार्मिंग की वजह से मौसम परिवर्तन का यह भी असर है कि परंपरागत जल स्त्रोत अब खत्म होते जा रहे हैं। इसके साथ ही भूगर्भ जल का स्तर भी अपनी मानक सीमा में नीचे जा रहा है। ऐसे में किसानों के लिए पानी की स्थायी व्यवस्था संभव नहीं है।

8. कृषि की जो अनुचित तकनीकें अपनाई गई हैं तथा रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं, खरपतवारनाशक दवाओं का जो अंधाधुंध उपयोग हुआ है, उससे मिट्टी के प्राकृतिक उपजाऊपन पर बहुत प्रतिकूल असर पड़ा है।

9. जिन खेतिहरों के पास जमीन है, उन्हें सिंचाई की सुविधा और उपकरण समुचित मात्रा में नहीं मिल सके हैं।

10. अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल, गैस, लोहा, बॉक्साइट और हथियारों की होड़ का देशी

प्रभाव किसानों में साफ दिखता है। इसी का परिणाम है कि धीरे-धीरे कृषि और कृषि से जुड़े उद्योग ध्वस्त हो चुके हैं।

11. सबसे बड़ी विडंबना है कि इतना बड़ा किसान समुदाय आज कोई निर्णायक आंदोलन खड़ा नहीं कर पा रहा है।

परंपरागत खेती में बदलाव-

किसी भी राज्य को खेती में उन्हीं बातों पर ध्यान देना चाहिए जिससे कि ज्यादा से ज्यादा फायदा हो। झारखंड को कुल 44 लाख टन चावल की आवश्यकता होती है, जिसमें से केवल 22 लाख टन का उत्पादन झारखंड में हो पाता है और बाकी चावल की भरपाई दूसरे राज्यों से होती है। इस पर शर्म नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि हर राज्य हर क्षेत्र में पूर्ण नहीं हो सकता है, अगर गहराई से शोध-अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि हर राज्य किसी न किसी चीज के लिए किसी न किसी राज्य पर आश्रित तो रहता ही है। ऐसे में यहाँ के किसानों को दूसरे अन्य फसलों के बारे में भी सोंचना चाहिए, जिसका अधिक से अधिक राज्य व किसानों को फायदा हो साथ ही इस बात का ख्याल रखा जाय कि उससे पर्यावरण का कोई नुकसान नहीं हो। अतः परंपरागत कृषि में बदलाव का स्वरूप निम्न होना चाहिए :

बदलाव का स्वरूप :

1. झारखंड के पास जैव विविधता है, जिसके ऊपर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है, उस पर विशेष रूप से फोकस किये जाने की आवश्यकता है।
2. झारखंड में बहुत ट्रेडिशनल प्लांट हैं। यह आदिवासी बहुल इलाका है। इसलिए यहाँ औषधीय पेड़-पौधे और प्राकृतिक जड़ी-बूटियाँ ज्यादा मिलते हैं। उनको ऑफबीट करने के बजाय उनपर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है।
3. यहाँ औषधीय पौधों की खेती करना लाभकारी है। इसके लिए औषधीय पौधों के पैदावार को बढ़ावा देना, और उसकी मार्केटिंग करना यहाँ के आदिवासी जनसमुदाय के लिए काफी फायदेमंद साबित हो सकता है।
4. यहाँ के लोग लकड़ियाँ काटकर बेचते हैं, लेकिन उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं जैसे महुआ एक ऐसा पेड़ है जो झारखंड में बहुत संख्या में पायी जाती है। महुआ का आदिवासी जन-समुदाय में काफी उपयोग होता है। अगर इसके सारे क्षेत्रों को ध्यान दें तो इसे उद्योग के रूप में बढ़ावा दिया जा सकता है।
5. खेत में धान की कटनी के बाद मूंगफली अथवा आलू की खेती की जानी चाहिए। इसके अलावा अमरूद और पपीता जैसे फलदार वृक्ष भी लगाये जाने चाहिए क्योंकि कुछ ही समय में ये फल देना शुरू कर देंगे तो किसानों का मुनाफा बढ़ जायेगा।
6. बहुफसली पैदावार के साथ टमाटर, बैंगन, मूली, मूंगफली, गाजर बीन जैसे सब्जियों की पैदावार बढ़ाई जानी आवश्यक है।
7. मड़ुवा, उड़द जैसे फसल जो झारखंडी व्यंजनों और आदिवासी इलाकों में ज्यादातर उपजते थे, उनकी उपज बढ़ाकर ग्रामीण इलाकों में कुपोषण को दूर किया जा सकता है।
8. झारखंड में औषधीय पौधों के साथ फूलों की खेती करना भी लाभप्रद है।

बदलाव हेतु सुझाव–

1. शोध-अध्ययन से स्पष्ट होता है कि झारखंड में सबसे दुखद बात यह है कि कृषि संबंधी विभाग जंगल को नहीं देखते हैं और जंगल वाले कृषि को नहीं देखते हैं। यह झारखंड के लिए सबसे बड़ी समस्या है और इसे झारखंड को ही तोड़ना होगा।

2. झारखंड में 'चक्रिय विकास प्रक्रिया' को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है जिसके तहत झारखंड से बाहर रहनेवाले ऐसे लोग, जिनके पास काफी मात्रा में जमीन है, उनके जमीन में खेती से होनेवाले आमदनी में 30 प्रतिशत खेत के मालिक को, 30 प्रतिशत किसान को, 30 प्रतिशत उस गाँव के फंड कोष और 10 प्रतिशत सोशल कार्य के लिए उपयोग किया जाय।

3. सउदी अरब की तरह झारखंड में भी रॉयल्टी प्रणाली की जरूरत है। सउदी अरब में जिसकी जमीन के नीचे तेल निकलता है, उसको सरकार की तरफ से रॉयल्टी दी जाती है।[6] झारखंड में भी जिसकी जमीन में मिनरल्स मिले, उसको सरकार की तरफ से रॉयल्टी दी जानी चाहिए।

4. फसल बीमा तो किसान को प्राकृतिक आपदा से ही बचा सकती है। सिंचाई से ही समस्या सुलझ जाती, तो नहरों से पटे पंजाब का किसान परेशान नहीं होता। कर्ज देना कोई समाधान होता, तो आज देश के हर कोने का किसान चहक रहा होता। उन्नत बीज भी चाहिए और उन्नत टेक्नोलॉजी भी। लेकिन देश की 85 प्रतिशत कृषि जोतों का आकार पांच एकड़ से कम है। यही हाल झारखंड का भी है। दो दशक पहले श्रीपाद अच्युत् दोभोलकर साबित कर गये हैं कि कैसे आधा एकड़ जमीन में भी जैविक खेती से चार लोगों का परिवार खुशहाल रह सकता है।7 इसलिए इन 85 प्रतिशत किसानों को पारंपरिक खेती के स्वरूप में बदलाव कर जैविक और चक्रीय खेती के लिए प्रेरित किया जा सकता है। बाकी जिन दो-चार प्रतिशत लोगों के पास ज्यादा जमीन है, वे बकायदा कंपनी बना कर कॉरपोरेट व व्यावसायिक खेती में उतर सकते हैं। इसके लिए लाह की खेती सबसे अच्छी है।

5. झारखंड में राज्य में अच्छी मात्रा में वर्षा होती है, वर्षा के पानी को एकत्र करने के लिए नहरों, तालाबों और झीलों को बड़ी संख्या में संरक्षित करना आवश्यक है। इससे न केवल भूमिगत जल के स्तर में सुधार होगा बल्कि इस जल का उपयोग सीधे सिंचाई के लिए भी किया जा सकेगा।

निष्कर्ष–

झारखंड के राँची में परंपरागत खेती के स्वरूप में बदलाव पर अध्ययन– झारखंड राज्य में फूल उत्पादन की व्यापक संभावना है। सरकार इसका आकलन कर रही है। कुछ प्रयोग किये गये हैं जो सफल रहे हैं। किसानों की आय दोगुनी करने में यह काफी सहायक होगा।

झारखंड के ओरमांझी प्रखंड में 20 एकड़ से अधिक जमीन पर फूलों की खेती हो रही है। इस प्रखंड में तैयार होनेवाले फूलों की गुणवत्ता आयात होनेवाले फूलों से भी अच्छी है। इस कारण बाजार में इसकी मांग भी अधिक हैं। करीब 20 एकड़ जमीन में होनेवाले खेती से एक दिन बीच का छोड़कर 500 बंडल जरबेरा (एक बंडल में 10 फूल), गुलाब, ग्लेडूलस, गेंदा तथा कारनेशन के फूल तोड़े जाते हैं। थोक में जरबेरा का

एक फूल तीन से लेकर पांच रूपये प्रति पीस है। गुलाब पांच रूपये प्रति पीस है। करीब आठ रूपये प्रतिपीस कारनेशन की कीमत है। इससे सिर्फ ओरमांझी प्रखंड से हर माह 10 लाख रूपये के फूलों का उत्पादन हो रहा है।[8]

इसी तरह प्रखंड के डहु, सिकिदरी और सांडी में भी खेती हो रही है। 15 एकड़ से अधिक जमीन पर सिकिदिरी के आसपास खेती करायी जा रही है। सरकार और बैंकों से लिंकेज कराने में 'पर्वतीय दुर्गम शिक्षा विकास' जैसी संस्था के माध्यम से करीब दो दर्जन किसान परिवार जुड़े हुए हैं। जो इनको तकनीकी सहायता के साथ-साथ मार्केट भी उपलब्ध कराने में सहयोग कर रही है।[9]

अतः शोध अध्ययन से स्पष्ट है कि नियोजित रूप से पारंपरिक खेती में बदलाव लाने पर किसानों की समृद्धि व खुशहाली बढ़ती है तथा अनेक समस्याओं से वे अतिशीघ्र मुक्त हो सकते हैं।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. शांता, पी. एस.- ''भारतीय कृषि में उभरते गतिरोध'', रत्नाकर पब्लिकेशन हाउस, कटिहार, बिहार। 2017 पृ.-21-22
2. लुगुन, अभिषेक-''झारखंड में खेती किसानी'', झारखंड विचार (पत्रिका), राँची। 2011, पृ. -8
3. वर्मा, ममता-'' भारत के पिछड़े राज्यों में कृषि अर्थव्यवस्था'', माटी के रंग (पत्रिका), राजस्थान। 2015, पृ.-17-18
4. ''कुल सिंचित क्षेत्र/कुल बोया गया क्षेत्र'', रिर्पोट- कृषि मंत्रालय, भारत सरकार वर्ष 2017
5. ''झारखंड में रोपा'', रिर्पोट- कृषि विभाग, झारखंड सरकार वर्ष 2017
6. आस्था, किरण-'' कैसा हो विकास की रूपरेखा ?'' ज्योर्तिगम्य पब्लिकेशन कोलकाता। 2005 पृ.-79
7. सिंह, डॉ. एस.के.-'' और भी रास्ते हैं जमीं के'', दृष्टिपात (पत्रिका) राँची। 2009
8. राजेंद्र महतो, उम्र-45 वर्ष पता : चकला, ओरमांझी साक्षात्कार तिथि : 12 सितंबर 2018
9. श्याम सुंदर बेदिया, उम्र-29 वर्ष पता :- अनगड़ा, साक्षात्कार तिथि : 13 सितंबर 2018

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

गोंड़ जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक-स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन

* प्रमोद कुमार नायक
** मंजुषा नामदेव

सारांश– *प्रस्तुत शोध का उद्देश्य गोंड जनजाति के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करना है। इस अध्ययन के लिये न्यादर्श के रूप में गोंड जनजाति के कक्षा आठवीं के 800 विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत गैर आनुपातिक या.च्छिक विधि का उपयोग किया गया। सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के मापन के लिये प्रो.आर.पी.वर्मा, प्रो.पी.सी.सक्सेना तथा डॉ.(श्रीमती) उषा मिश्रा द्वारा निर्मित सामाजिक आर्थिक स्तर सूची पत्र का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण के लिये प्रसरण विश्लेषण, मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा टी–मूल्य का उपयोग किया गया। परिणाम में पाया गया कि विद्यार्थियों के परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया जाता है किंतु सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग एवं इनकी अंतःक्रियाओं का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है।*

मुख्य शब्द– मूल्यनिष्ठ, वातावरण, स्तर, अन्त:क्रियात्मक प्रभाव।

भूमिका– भारत में प्राचीन काल से ही आदिवासी जनजातियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन ग्रंथों में इनके संबंध में बहुत सी जानकारियाँ मिलती है। भगवान राम ने अपने वनवास काल में गोड़-भील के मुखिया के यहाँ रात्रि बिताई थी और उन्हें अपना मित्र कहकर संबोधित किया था। पुरातत्व लेखों ने आदिवासियों को वनवासी भी कहा जाता था। भारतीय संविधान के 34वें अनुच्छेद में आदिवासियों के लिये अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारत में जनजातियों का वर्गीकरण अनेक आधार पर किया जाता है जैसे भौगोलिक आधार, भाषायी आधार, प्रजातीय आधार, संस्कृति तथा आर्थिक आधार पर किया जाता है। भारत में आज लगभग 580 अनुसूचित जनजातियाँ है तथा 2011 की जनगणना के अनुसार इनका प्रतिशत संपूर्ण जनसंख्या के प्रतिशत का 8.6% है। इनकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग भारत के पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी भागों में स्थित है। 25% जनसंख्या दक्षिण क्षेत्रों में फैली है।

सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य किसी व्यक्ति के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर से है। यह स्तर व्यक्तिगत व पारिवारिक पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। किसी व्यक्ति

* प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
** शोधार्थी, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

का सामाजिक व आर्थिक स्तर उसके तथा परिवार की आय, शिक्षा तथा व्यवसाय पर आधारित होता है। सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि का निर्धारण किसी परिवार के आर्थिक स्तर के आधार पर किया जाता है। सामाजिक आर्थिक स्थिति को तीन वर्गों में बांटा गया है- उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति, मध्यम सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति।

भुनाव एवं कुमार (2003)नेपाया कि विद्यार्थियों की सामाजिक, आर्थिक स्तर का स्वचेतना एवं शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।कुमार एवं वेल्लीमलाय (2012) ने यह परिणाम निकाला कि विद्यार्थियों के अभिभावकों का सामाजिक आर्थिक स्तर उच्च था और वे अपने बच्चो को घर में भी बेहतर शिक्षा और मूल्यनिष्ठ वातावरण प्रदान करते थे। सुब्बुराम एवं सय्यनम (2013) ने ज्ञात किया कि जिन विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्तर निम्न है उनकी सीखने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। पाण्डे एवं नामदेव (2014) ने पाया कि उच्च सामाजिक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों को शैक्षणिक उपलब्धि शहरी विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि से कम रही। सामान्य एवं निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि बाहरी विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक रही।पोरवाल एवं चौहान (2014) ने अपने शोधकार्य में पाया कि इनमें शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास के अभाव के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ पाई जाती है जिससे इनका आर्थिक विकास कठिन है। अतः सामाजिक बुराइयों पर नियंत्रण करके आदिवासियों का सामाजिक आर्थिक स्तर सुधारा जा सकता है। सुनीता एवं सोनेकर (2016) ने यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि बाल श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति बहुत ही निम्न है वे 7 से 9 घण्टे काम करते हैं तथा उनके परिवार की आय लगभग 1000/- से 2000/- समूह वर्ग के है। तथा कुल आय से बाल श्रमिकों की आय सर्वाधि ाक है।

उद्देश्य– गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

परिकल्पना–

H_0I_1 गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर मुख्य तथा अंतःक्रियात्मक सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

न्यादर्श– प्रस्तुत अध्ययन में दुर्ग एवं राजनांदगाँव के कक्षा आठवीं के 800 गोंड विद्यार्थियों का चयन उद्देश्यपूर्ण गैरआनुपातिक या.च्छिक विधि से किया गया है।

उपकरण– प्रस्तुत अध्ययन में सामाजिक आर्थिक स्तर के मापन के लिये उपकरण के रूप में प्रो.आर.पी.वर्मा, प्रो.पी.सी.सक्सेना तथा डॉ. (श्रीमती) उषा मिश्रा द्वारा निर्मित सामाजिक आर्थिक स्तर सूची पत्र का चयन किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण– प्रस्तुत अध्ययन में सांख्यिकीय विश्लेषण के रूप में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं टी-मूल्य का उपयोग किया गया है।

निष्कर्ष एवं विश्लेषण– प्रस्तुत परिकल्पना की जाँच हेतु ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के कक्षा 8वीं के गोंड जनजाति के 800 छात्र - छात्राओं को चयनित किया गया है। आंकड़ों के स्पष्टीकरण के लिये प्रसरण विश्लेषण, मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा टी मूल्य की गणना की गई जिसे अधोलिखित तालिका क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

H_0I_1 गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर मुख्य तथा अंत:क्रियात्मक सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना है। अतः साँख्यिकीय विश्लेषण हेतु सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग, परिवेश त्रिदिश प्रसरण विश्लेषण की संगणना की गयी है। त्रिदिश प्रसरण विश्लेषण $(3 \times 2 \times 2)$ की संगणना से प्राप्त सारांश को तालिका क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक-1

गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग तथा परिवेश के स्वतंत्र तथा अंत:क्रियात्मक प्रभावों उनकी शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में $(3 \times 2 \times 2)$ के प्रसरण विश्लेषण का सारांश

प्रसरण के स्त्रोत	वर्गों का योग	स्वतंत्र अंश	मध्यमान वर्ग	F - अनुपात
सामाजिक आर्थिक स्तर	123.600	2	61.800	0.507 NS
लिंग	387.844	1	387.844	3.180 NS
परिवेश	3899.981	1	3899.981	31.97*
सामाजिक आर्थिक स्तर x लिंग	190.250	2	95.125	0.780 NS
सामाजिक आर्थिक स्तर x परिवेश	615.562	2	307.781	2.523 NS
लिंग x परिवेश	19.856	1	19.856	0.163 NS
सामाजिक आर्थिक स्तर x लिंग x परिवेश	24.483	2	12.242	0.100 NS
त्रुटि	74157.944	608	121.970	
कुल	2769051.000	620		
* = 0.01 Level of Significance, ** = 0.05 Level of Significance, NS = Not Significant				

तालिका क्रमांक 1 के मूल्यों के अवलोकन से मुख्य प्रभाव निम्नवत स्पष्ट होते है।

सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग–

सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग के मुख्य प्रभाव के लिये F का मान क्रमशः 0. 507तथा 3.180है जो कि df = (2 / 608) तथा df = (1 / 608) पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इस प्रकार गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग का शैक्षिक उपलब्धि पर मुख्य प्रभाव सार्थक नहीं पाया जायेगा। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिवेश–

परिवेश के मुख्य प्रभाव के लिये F का मान क्रमशः 31.975है जो कि df = (1 / 608) पर सार्थकता के 0.01स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के परिवेश का शैक्षिक उपलब्धि पर मुख्य प्रभाव सार्थक पाया जायेगा। अतः यह परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिवेश के आधार पर विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में प्राप्त प्रदत्तों के मध्यमान को तालिका क्रमांक 1 (a) की सहायता अवलोकन कर सकते है।

तालिका क्रमांक-1(a)

गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के परिवेश के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

क्रमांक	**परिवेश**	**संख्या**	**मध्यमान**	**प्रमाणिक विचलन**
1.	शहरी परिवेश	313	63.26	12.09
2.	ग्रामीण परिवेश	307	68.51	9.891

आरेख क्रमांक 1

गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के परिवेश के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

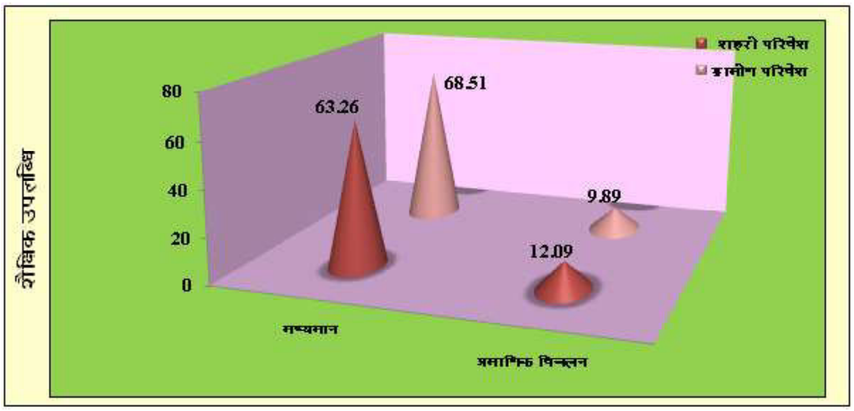

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 63.26 - 68.51 है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि, शहरी क्षेत्र के शैक्षिक उपलब्धि से अधिक श्रेष्ठ हैं।

अंत:क्रियात्मक प्रभाव–

सामाजिक आर्थिक स्तरएवं लिंग, सामाजिक आर्थिक स्तर एवं परिवेश, लिंग एवं परिवेश तथा सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश के मध्य अंत:क्रिया के लिये F का मान क्रमशः 0.780; 2.523; 0.163 तथा 0.100 है जो कि df = (1 / 608) पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इस प्रकार गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग; सामाजिक आर्थिक स्तर एवं परिवेश; लिंग एवं परिवेश तथा सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का अंत:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग, सामाजिक आर्थिक स्तर एवं परिवेश; लिंग एवं परिवेश तथा सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का संयुक्त अन्योन्याश्रित प्रभाव नहीं पड़ता है।

परिणाम–

मुख्य प्रभाव–

सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग–

* गोंड़ जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग का मुख्यप्रभाव नहीं पाया गया है।

परिवेश– गोंड जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर परिवेश का मुख्यप्रभाव नहीं पाया गया है। ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से उच्च पायी गयी।

अंत:क्रियात्मक प्रभाव– गोंड जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग; सामाजिक आर्थिक स्तर एवं परिवेश; लिंग एवं परिवेश तथा सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का संयुक्त अन्योन्याश्रित प्रभाव नहीं पड़ता है।

निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग का मुख्य प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक नहीं पाया गया अत: परिकल्पना अस्वीकृत होती है। किंतु परिवेश का उनके कुल शैक्षिक उपलब्धि पर मुख्य प्रभाव सार्थक पाया गया। अत: परिकल्पना अस्वीकृत होती है। गोंड जनजाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं लिंग; सामाजिक आर्थिक स्तर एवं परिवेश; लिंग एवं परिवेश तथा सामाजिक आर्थिक स्तर, लिंग एवं परिवेश का अंत:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. आडिल, एस. (2011-2012), स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनके आत्मविश्वास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन.लघुशोध प्रबंध, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर।
2. बैरी, जे. (2006), वैयक्तिक शैक्षिक उपलब्धि पर शालेय सामाजिक आर्थिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन. लघुशोध प्रबंध, विचिता विश्वविद्यालय.
3. भटनागर, आर.पी. एवं भटनागर, एम. (2008), शैक्षिक एवं मानसिक मापन. मेरठ, लाल बुक डिपो, 142ए 165ए 261.
4. शुक्ला, एस. (2009-2010), बी.एड के प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास पर उनके सामजिक आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन.लघुशोध प्रबंध, प.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर।
5. शर्मा,आर. ए. (2013), शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया. 124-126, 135, 163, 170, 525, 568, 635, 716
6. शाह,बी. (2012), इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च. 2(2)
7. सुब्बुराम, सी. एवं अनंतसय्यनम (2000), इंटरनेशनल जर्नल लैंग्वेज सोसाइटी एंड कल्चर।
8. सिंह, ए.के. (2011-12), मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ. पटना, 44-46, 217, 220, 232
9. वल्लीमलाय,एस.के. (2012), इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एकैडमिक रिसर्च इन बिजनेस एंड सोशल सांइस. 2(8)
10. पाण्डे एवं नामदेव (2014), विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों पर विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर का प्रभाव. रिसर्च लिंक एन इंटरनेशल जर्नल,122 (XIII) मई, 2014, 76
11. सुनीता एवं डॉ. बी.एल. सोनेकर (2016), असंगठित क्षेत्र में कार्यरत बाल श्रमिकों का सामाजिक आर्थिक अध्ययन. रिसर्च लिंग इंटरनेशनल जर्नल, रिसर्च लिंक एन इंटरनेशल जर्नल,144 (XV) मार्च, 2016
12. पोरवाल एवं चौहान (2014), मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के आदिवासियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन. रिसर्च लिंक एन इंटरनेशल जर्नल,129 (XIII), 10, दिसम्बर, 2014, 119

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

लोककला संजा के समक्ष नई चुनौतियाँ एवं नए आयाम

* कुमकुम भारद्वाज
** शीतल सोनी

सारांश– *कला के जन्म और विकास की कथा अति प्राचीन हैं मनुष्य ने ज्यो–ज्यो अपने मानसिक विकास के साथ ही रचनात्मक सोच और उसका प्रदर्शन किया इसी सोच के साथ ही कला भी जन्मी ओर विकसित होती गयी। इस तरह से हर युग में मनुष्य द्वारा अपनी रचनात्मक एवं कलात्मक सोच के जरिए किये जाने वाले कला कार्य की छाप पीछे छोड़ते गए एवं आगे की और बढ़ते गए। ग्रामिण जनमानस समूहों द्वारा कि जाने वाली कला लोककला के रूप में सामने आयी तथा हमारी इस लोककला की परम्परा को आगे बढ़ाने तथा संजोए रखने का कार्य भी ग्रामीण जनता द्वारा ही किया गया। ग्रामीणों द्वारा अपनी प्राचीन संस्कृति और कला की विरासत को जीवन दान देकर उसकी रक्षा की और उसमें जीवन शक्ति भरी की वह विश्वकला की प्रगतिशील भाव–धारा के साथ आगे बढ़ सके।*

मुख्य शब्द– लोक कला, नारी, उभरांकन, सांझी, गोबर

भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में लोककला ने जा काय्र किया उसकी तुलना नही कि जा सकती अधिकांशतः लोक कलाओं में मुख्य भूमिका नारी की ही रही है। लोक कलाओं के विभिन्न प्रकारों में से एक भित्ति चित्रण जो कि संजा लोककला के रूप में प्रचलित हुआ। यह भित्ति चित्रण उभरांकन शैली लिए हुए होते है।

मध्यवर्ती भारत के अधिकांश प्रदेशों में सांझी की परंपरा किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है। सांझी लोक कला कुवारी कन्याओं द्वारा मनाया जाने वाला लोक पर्व है जो कि श्राद्ध पक्ष के सोलह दिवसों तक निरंतर रूप से होता है। इसमें कन्याओं द्वारा दीवार पर मिट्टी से लीप कर गोबर द्वारा आकृतियाँ बनाकर संध्या के समय पूजन कर आरती व गीत गाए जाते है। यह लोक कला मध्यवर्ती तथा उत्तरवर्ती क्षेत्रों में व्याप्त रूप से प्रचलीत है।

सांझी लोक पर्व परम्परागत लोकांचलों में जीवित है इसके विपरित शहरों में सीमेन्ट के पक्के मकान बनते जा रहे है इसके चलते वह पक्की दीवारों को गोबर से गंदा नहीं करना चाहते फिर भी परम्परा को जीवित रखना भारतीय पद्धति में शामिल है। तो नया तरीका खोज लिया परम्परावादियों ने उन्होंने सांझी की आकृतियों के पाठे मिलते है वह

* विभागाध्यक्ष चित्रकला विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर
** शोधार्थी, चित्रकला

भित्ति पर अस्थायी रूप से लगा कर उन्हें पूज कर लड़कियाँ खाना पूर्ति करने लगी पर इसमें कलात्मकता और ज्ञान की वह बात कैसे आ सकती है कि अपने हाथों से गोबर लाना, साफ करना, लीपना, तिनके-कंकड़ हटाना, गूँथना फिर अपनी कल्पना शक्ति से अपनी अँगुलियों से आकृतियाँ बनाना तथा बनाते-बनाते आकृतियाँ बनाने में दक्षता आ जाना। कला सीखने की यह आरंभिक पाठशाला है। इसमें स्वावलम्बन, सक्रियता, चुस्ती, लीपने की पद्धति, आकृतियाँ बनाना, गीत गाना, पूजा पद्धति आदि सब एक साथ सीखती रहती है। वह भी एक या दो दिन नही पूरे सोलह दिनों का यह समग्र सांस्कृतिक शिविर होता है- घर-घर, मुहल्ले-मुहल्ले में यह एकल होकर भी सामूहिक रूप से करती है। समाज को बचपन से ही संस्कारित करने की ये पारम्परिक अटूट और अमोध पद्धतियाँ रहीं जिनकी अब नयी पीढ़ियाँ उपेक्षा करने लग गयी है और नगरों से तो अब इनकी विर्रा होने लग गयी हैं। अब तो पारंपरिक मोहल्लों में कही-कही ही सांझी के दर्शन होते है। मालवा के गाँवों में अभी ये परम्पराएँ चल रही है परन्तु नगरीय हवा वहां भी पहुंचने लगी है। यदि लोकरक्षक समाज समय रहते जगा तो वह दिन दूर नही, जब ये परंपराए भी इतिहास की वस्तु बन जाएगी।

लोक की यह समृद्ध धरोहर केवल बालिकाओं के मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रही है अपितु साहित्य और संस्कृति कर्मियों ने भी इसके महत्व को पहचाना है। परम्परागत चित्रकला में, लोक चित्रकला में पद-पद पर आस्था हैं, निष्ठा है, अपने लक्ष्य के प्रति मोह है, लगन है, जिज्ञासा है और अभिव्यक्ति की कुशलता है। लोक इसलिए अमर है। उस अमरता की निशानी है आज भी रंग बिखेरती लोक चित्रकला। मध्यवर्ती भारत उस प्रवाह की निरंतरता के लिए आज भी सक्रिय है यह सक्रियता ही उस लोक प्रवाह को जिन्दा रखे हुए है। फिर भी समय पविर्तन के साथ-साथ........................

लोककलाओं में निरंतर विकास होने की क्षमता बनी रहती है। लोककलाओं के कुछ पक्ष कम बदलते हैं, लेकिन कुछ पक्षों में परिवर्तन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समाज के बदलते परिदृश्य के साथ ही मानव की संवेदनाएं भी बदलती हैं तथा इन बदलाव के कारण ही लोककलाकार अपनी कलाओं में परिवर्तन लाता है।

इन बदलाव से प्रश्न यह उठता है कि यदि लोककलाओं का बाहरी रूप परिवर्तित होता है। तो क्या उसका मौलिक रूप भी बदलेगा। इसके अंतर्गत कलाओं के बाहरी रूप के परिवर्तित होने से ज्यादा अहं (अहम्) मुद्दा है लोककला की मौलिकता के परिवर्तन होने का।

लोककलाएँ जनमानस के दैनिक जीवन के विविध पक्षों को प्रदर्शित करती है। जनमानस का सम्पूर्ण जीवन अपने बहुरंग के साथ लोक कलाओं में समाहित है। मामूली परिवर्तन के साथ यह गुण आज भी लोककलाओं में बना हुआ है।

लोककलाकारों ने कभी भी लोककला को लोक जीवन से अलग करके देखने की कोशिश नही की वह लोककला को जीवन में अटूट रिश्तों की भांति मानता है इन्हीं के तहद सामाजिक परिवर्तन और जन जीवन के बदलते आयामों के सामने चुनौतियाँ खड़ी कर दी है। लोककलाओं के मूलरूप के संरक्षक का प्रश्न आता है। औद्योगिक क्रांति और संचार माध्यमों के आकर्षक प्रभाव से लोककला की सामूहिक चेतना भी प्रभावित हुई है। इसका एक बड़ा कारण नगरीकरण भी है जिस तरह मानव गाँवों को खत्म कर नगर की

स्थापना कर रहा है जिसके कारण वह पक्के मकानों का निर्माण कर रहा है और आध ुनिकीकरण को अपनाते हुए दीवारों को लोककलाओं द्वारा गंदा नहीं करता। ओद्योगिकीकरण के प्रभाव के कारण मानव ने नये-नये उद्योग धंधों की स्थापना करके सामाजिक जीवन को नए रूप में प्रस्तुत किया जिससे समाज के अंतर्गत नए मूल्यों का उदय हुआ। कई जन जातियों ने इन नए आयामों का खुल के स्वागत किया यह जरिया उन्हें जीवन यापन की नवीन दृष्टि प्रतीत हुई, इस प्रकार नवीन सोच और दृष्टि वाले जनमानस नवीनीकरण की और अग्रसर कहे जाने लगे इस प्रकार समाज दो तरह के वर्गो में बट गया प्रथम नवीनीकरण की और जाने वाला तथा दूसरा जन साधारण और पुरानी रीति रिवाजों को मानने वाला समय के चलते इन दोनों वर्गों में परंपराओं तथा जन जीवन के मानक में दूरी बढ़ती गयी इसी के फलस्वरूप लोककलाओं का परिष्काट (परिकाष्ट) तथा आधुनिकीकरण का विकास हुआ इसके साथ ही कुछ अन्य नयी कलाओं का भी जन्म हुआ जो कि आधुनिक वर्गों के प्रभाव से अनछुई न रही। इस स्थिति में यह चुनौती पैदा हुइ कि लोककलाओं के विविध रूपों में विशेषज्ञता का आगाम तो हुआ किन्तु समूह कार्य का पतन भी हुआ। कलाकार द्वारा व्यक्तिता का प्रभाव बढ़ने लगा वह समूह में कार्य करने की जगह स्वयं के कार्य को प्राथमिकता देने लगा। साथ ही साथ लोककलाओं का व्यवसायिकरण होने लगा इसके चलते लोककला के मौलिक स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया जिसे परिवर्तनशीलता की सहज प्रवृत्ति ही माना गया। सामाजिक परिवर्तन के साथ लोककलाओं में भी परिवर्तन स्वाभाविक है जो कि हर मायने में उपेक्षित भी है।

इसके विपरीत जब लोक कला के मौलिक स्वरूप की बात हो तो हम उसके बचाव पक्ष में ही खड़े होंगे। जिस प्रकार परिवेश परिवर्तन करने से आंतरिक मनोस्थिति परिवर्तित नही होती उसी प्रकार लोक कला के व्यवसायिक परिवर्तन से उसके मौलिक रूप में भी आंशिक परिवर्तन ही होता है, जो कि चिंताजनक नही होता। चिन्ता तो उस स्थिति में मान्य है जब लोककला का मौलिक स्वरूप संपूर्ण रूप से परिवर्तित हो और लोकगीत की मूल धनु को फिल्मी गीतों की धुनों पर गायका जाने लगे तथा लोक चित्रों के नाम पर आदिवासियों के भौंड़े चित्र बनने लगे। इस तरह के अमान्य प्रयोग लोककलाओं के लिए बड़ी चुनौती है।

मनोरंजन के आयामों के विस्तार में उपजे संचार माध्यमों और आधुनिकीकरण ने भी लोक कलाओं के मूल स्वरूप में बड़े पैमाने पर तब्दीली की है। लोककलाओं के प्रदर्शन हेतु मंचों पर प्रस्तुति द्वारा नवीनीकरण एवं आकर्षक बनाने हेतु मौलिक रूप से अत्यधिक बदलाव किए गए है। यह बदलाव लोककलाओं के पक्ष में एक अत्यधिक चिंतनीय विषय है।

औद्योगिकीकरण, नगरीकरण तथा सामाजिकीकरण के विकसित परिवर्तन से लोककलाओं के सामने एक नयी चुनौती पैदा कर दी जिससे कलाएं सम्पूर्ण रूप से खत्म तो नही हुई परन्तु उसके स्वरूप में आधुनिक आयाम के जुड़ाव से उसके मौलिक रूप को कही न कही ठेस पहुंची हैं। इसके फलस्वरूप लोककलाएं समाप्त तो नहीं हुई, परन्तु जनमानस को एक नयी कला संस्कृति का सामना करना पड़ा। इस परिस्थिति में लोक कलाओं को अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए मौलिक रूप और आधुनिक समावेश में तालमेल बैठाना पड़ा। आधुनिकीकरण का समावेश लोककलाओं की समाप्ति का

कारण बन सकती थी किन्तु लोककलाओं तथा उनके संरक्षक कलाकारों द्वारा उनके मौलिकता से जुड़े रहने की ताकत अर्थात नये परिवर्तन को अपनाकर अपने मूल स्वरूप को बचाए रखने की प्रवृत्ति ने उन्हें सुरक्षित एवं जिन्दा रखा। कहीं कहीं तो यह भी देखा गया कि समय की लम्बी अवधि तथा परिवर्तन की यात्रा में कुछ लोककलाएँ नष्ट हो गयीं और कुछ नए परिवेश और मौलिकता के बीच आज भी अपना अस्तित्व कायम किए हुए है। इसी प्रकार देशकाल और आधुनिकता के सन्दर्भ में किस वक्त तक लोककलाएँ अपनी मौलिकता और अस्तित्व को विशुद्ध रूप से बचाए रख सकती हैं, यह एक महत्वपूर्ण सवाल है।

जनमानस में नगरीकरण, आधुनिकता और औद्योगिकी विकास के कारण आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और व्यक्तिगत विकास का प्रभाव बढ़ गया जिसके फलस्वरूप सामुदायिक भावना नष्ट हो गयी और वह एकल कार्य पर ही विश्वास करने लगा सामूहिक तौर पर की जाने वाली कलाओं का ह्रास होने लगा जो कि लोककलाओं के मूल में थी। सामूहिक तौर पर लोक चित्रकार और गीतकार द्वारा स्वयं का नाम अंकित नही किया जाता।

सामूहिक तौर पर कोई भी कलाकार बनाई गयी कला का श्रेय नही लेता था किन्तु आधुनिक काल में हर व्यक्ति अपने द्वारा किए जाने वाले कार्य का श्रेय लेने की होड़ में लगा रहता है।

आधुनिकीकरण के प्रभाव से शहरों में लोक कलाकारों द्वारा दिया जाने वाला प्रस्तुतिकरण सामुदायिक न रहकर व्यक्ति प्रधान हो गया है और दर्शक भी उस कला को समूह भाव से न लेकर व्यक्तिगत तोर पर लेता है। आधुनिक सदी में मनुष्य द्वारा सुख और आराम की स्थिति के रूप में कलाओं को मान्य किया इसके विपरित ग्रामीण व्यवस्था में आराम तथा सुख के पक्ष का महत्व नहीं था उनके लिए नाच-गाना ही सबसे बड़ा सुख था। समूह में कार्य करना उन्हें सुख और आराम की अनुभूति कराता था। ग्रामीणों में कलाकार का महत्व न होकर कला को महत्वता दी जाती थी तथा बीसवीं सदी में कला को महत्व न देकर कलाकार को महान बनाया जाता है। ग्रामिणों के लिए लोककला लोकजीवन का हिस्सा हुआ करती थी। इसके विपरित आधुनिक युग में लोककलाएं विभिन्न अवसरों पर मात्र प्रदर्शन की वस्तु रह गयी। पहले लोक कलाकारों की उदरपूर्ति सामूहिक रूप से ग्राम स्तर पर ही हो जाया करती है। शरों में यह स्थिति नही थी।

मनुष्य की आधुनिक एवं आरामदायक, संसाधनों की इच्दा पूर्ति के चलते वह दिन-रात कार्यो में जुटा रहता है तथा शहरी विकास के साथ ही बाजार, सड़के, नगर तथा महानगरों का निर्माण हुआ इसके चलते ग्रामिणों द्वारा गाँव का अन्न तुरन्त नगरों में पहुचने लगा एवं लोक कलाकार पेट भूखा रहने लगा। इससे पहले गाँव के खेतों में लोककलाकार का हिस्सा तय हाता था। यह स्थिति चिंतनीय है जो कि लोककलाओं के लिए चुनौती लेकर आया।

लोककला का गहरा संबंध उस क्षेत्र से होता है जहाँ वह जन्म लेती है। मध्यवर्ती भारत में पाँचों जनपदों मालवा, निमाड़, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और चम्बल में लोककलाएँ, लोकनृत्य एवं लोकगीत दिखने में मोटे तौर पर कुछ समानता लिए हो पर इन सभी में अंतर किया जा सकता है। किसी भी क्षेत्र की परम्परा- वहाँ के परिवेश, संसाधन, जीवन पद्धति इत्यादि मिलकर ही लोककलाओं के स्वरूप का निर्माण करती है

तथा इन क्षेत्रों के रंग वहाँ की प्रचलित लोककलाओं में अवश्य समाहित होने है। इसी क्रम के चलते सभ्यता के विकास में लोक कलाकर अपनी आधुनिक जीवन यापन की जरूरत को पूर्ण करने हेतु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन करता है जिससे लोककला का पतन हुआ है क्यों कि स्थान परिवर्तन, समयअंतराल और साधन अभाव से लोक कलाकार या सामान्य जन मानस अपनी कला और संस्कृति से ना चाहकर भी दूरी बना लेता है। इसके कारण आने वाली पीढ़ियाँ अपने पैतृक क्षेत्र की लोककला से अबोध और अनभिज्ञ हो जाती है तथा ना ही तो वह इसे सम्पन्न करने में रूचि रखती है और ना ही विश्वास। जबकि अगर नयी पीढ़ि यदि अपनी जड़ों को खोदकर देखेगी तो वह लोककलाओं द्वारा मानव विकास की सारणी से भरी पड़ी है। अगर लोककलाएँ नहीं होता तो मानव संस्कृति के मूल्यों को ही नही समझ पाता अतः जीवन में देश के सांस्कृतिक मूल्यों को जानने हेतु लोककलाओं के इतिहास और स्वरूप को जानना जरूरी है। आधुनिक समाज का विकसित रूप की मूल जड़े परम्परागत संस्कृति और लोक साहित्य की धरा में ही फैली है। समस्त लोक कलाएं एवं लोक परम्पराएँ हमारी संस्कृति का का दर्पण ही है। आज भारत देश सम्पूर्ण विश्व में कला और संस्कृति के रूप में ही विशारद प्राप्त किए हुए है, विदेशी नागरिक भी यहाँ की लोक कला संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होते है। लोक कला एंव संस्कृति के साथ एक भारतीय के सामुहिक आचार-विचार, सुख-दुख, अतीत एवं वर्तमान सुरक्षित है। जिस तरह प्रकृति अपने रंगों को बिखेरने में स्पष्टता रखती है उस प्रकार लोककलाकार भी लोककला द्वारा अपने भीतर छुपे रंगों, भावो, कल्पनाओं इत्यादि को स्पष्टता से प्रदर्शित करता है। समय परिवर्तन के साथ आधुनिक युग के समावेश में लोककलाओं तथा लोक कलाकारों का बड़ा ही ह्रास हुआ गाँवों से कस्बों में परिवर्तित तथा कस्बों से नगरों में परिवर्तन के समय काल में गाँवों की शुद्धता समाप्त हो गयी अब गाँवों में पहले जैससी भावना नही रही ना ही व्यक्ति के प्रति और ना ही संस्कृति के प्रति, इसमें आधुनिक युग के समावेश से गहरे ज्ञान का अभाव दिखाई पड़ता है। ग्रामीण जीवन में भी ग्रामीणों की बुद्धि व्यवसायिकता और चतुराई की और दौड़ना शुरू हो गयी इसी के विपरित प्रकृति और पदार्थों के प्रति रचनात्मक रूचि बहुत कम हो चुकी है।

इन सभी समय रूपी समुद्र के थपेड़ों में गोते खाता ग्रामीण जीवन ना ही शुद्ध ग्रामीण रहा और ना ही आधुनिक शहर और नहीं लोककला में वह शुद्धता रही लोककलाओं के प्रति आधुनिक युग में लोककलाकारों का वास्तविक और स्वाभाविक रूझान भी कम हो गया है। अगर इसी तरह से चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं की लोककलाएं विलुप्त हो जाएगी आधुनिक युग में लोककला संरक्षकों को इस चुनौती से झुझना पड़ेगा क्योंकि जीवन चाहे जितना भी प्रगतिशील हो जाए लोक के बिना वह अध ुरा, रसहीन और निर्जीव रहता है। लोक जीवन में समग्रता समाहित होती है। उससे अलग होकर उसे पूर्ण रूप से नही देखा जा सकता।

लोककला संजा के 'समक्ष आने वाली चुनौतियाँ कई रूपों में विभाजित है। जैसे- अरूचि, साधन में कमी होना, प्रोत्साहन में कमी होना, लोककला को नियत स्थान प्रदान न होना, कला की मौलिकता में कमी, सांस्कृतिक मंच पर सीमित क्षेत्र में प्रस्तुति इत्यादि आधुनिक युग में समय के अभाव के कारण नई पीढ़ी द्वारा लोककला का भारत तो नहीं बन रहा है। वह नए नए पाठ्यक्रमों में उलझा रहता है और ज्यादा धन आय की सोच रखने

के कारण वह लोककला से दूरी बनाते हुए अपनी और से अरूचि का प्रदर्शन करता है।

जिसके कारण लोककला को समाज में जो दर्जा मिलना चाहिए उससे वह विहीन है और इसमें सत्यता भी है क्योंकि सरकार द्वारा ऐसे कला के प्रति कार्य करने वाले विद्यार्थियों को ना तो कोई प्रोत्साहन मिलता है ना ही किसी प्रकार की धनराशि तो क्यों कोई भी इस तरफ रूझान लेगा इस हेतु सरकार को चाहिए की वह कला के प्रति कार्य करने वाले विद्यार्थियों तथा कलाप्रेमियों का विशेष ध्यान रखे जिससे अन्य विद्यार्थियों को भी इस पक्ष में कार्य करने में रूचि का अनुभव हो सकें।

इसी चरण में अगली चुनौती है साधनों में कमी का होना संजा लोककला के साधन वैसे तो कोई महंगे नही है किन्तु शहरीकरण के कारण इनकी उपलब्धता में अत्यधिक कमी हो रही है। इसमें सबसे प्रथम अवस्था में गोबर की कमी देखी जा रही है स्वस्छ भारत अभियान के तहत् सरकार द्वारा सड़कों पर से गायें ही साफ कर दी गयी है। तो फिर गोबर कहा से मिलेगा ग्रामीण जीवन इसके पर था वहाँ गाय को माता माना जाता था तथा घर से रोटी बनाने के पहले सर्वप्रथम रोटी गाय की ही बनाई जाती थी किंतु आधुनिक युग में मनुष्य और गाय के बीच का माँ और पुत्र का संबंध भी नही बचा अब ना गाय की रोटी बनती है और ना ही गाय बची है।

शहरी सौन्दर्यीकरण के चलते गोबर का मिलना भी मुहाल हो गया है। अब इन्हें लोगों द्वारा सिर्फ दुग्ध व्यवसाय हेतु पाला जा रहा है। सरकार द्वारा गाय बचाने, बढ़ाने और पालन हेतु कोई तो मुहीम चलानी चाहिए जिससे निकटवर्ती क्षेत्रों में गायों के बाड़े हो जिनमें उन्हें सुरक्षित रखा जा सके ओर आस-पास के क्षेत्र के लोगों द्वारा वहाँ की गायों की सुरक्षा का संकल्प लिया जा सके तथा वही से इस लोक कला के लिए संसाधन अर्थात् गोबर को भी प्रयोग में लाया जा सके।

अगली कड़ी में आता है प्रोत्साहन में कमी होना यह तो सत्य बात है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा किया जाने वाले कार्यों के लिए यदि प्रोत्साहन नही दिया जाता है तो वह कार्य दोबारा करने में उसकी वह रूचि नहीं रहेगी। अतः सरकार द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में प्रतिभागी हर एक छात्रा कलाकार से कम नही उनकी जितनी तारीफ की जाए वह कम है, क्योंकि उसने इस पारंपरिक लोक कला की प्रतियोगिता में भाग लिया है। क्योंकि सिर्फ अव्वल आने वाले प्रतिभागियों पर ध्यान देना ठीक ना होगा ऐसी स्थिति में जो दूसरे प्रतिभागी है वह इस कला को लेकर निराशा का भाव रखना शुरू कर देते है। इसके निराकरण हेतू सरकार द्वारा प्रत्येक प्रतिभागी को एक निश्चित इनाम के रूप में धनराशि देना चाहिए जिससे उनमें अरूचि का भाव पैदा ना हो तथा उनका प्रोत्साहन उस कला के प्रति बना रहे।

अगली चुनौती के रूप में लोककला को नियत स्थान प्रदान न होने के रूप में है। यह लोककला क्षेत्र का एक कटु सत्य है कि लोककला को आज भी यह स्थान प्राप्त नही हो सका है जिसकी वह मान्यता रखता है। आज भी लोककलाओं को और विशेष रूप से सांझी की तुच्छ नजरों से आंका जाता है। कि इससे दीवार गंदी होगी, और इसे तो गोबर से बनाना होगा पर यह कोई नही समझता की गाय के गोबर के स्पर्श मात्र से ही शुद्धता का वातावरण और एहसास होता है और यह एहसास बाहरी और व्यक्ति मात्र न होकर मन और मस्तिष्क के भीतर तक शुद्धता का वातावरण बनाता है। आज भी पंडितों

द्वारा कराए जाने वाले किसी भी अनुष्ठान में जमीन को सबसे पहले गोबर द्वारा लीपा जाता है जो की शुद्धता को दर्शाता है और किसी भी अनुष्ठान में किया जाने वाला गोबर द्वारा शुद्ध वातावरण वैज्ञानिकों द्वारा भी सिद्ध है। इसी कड़ी में कुलदेवी या देवता को पूजते वक्त भी भित्ति पर पहले गोबर से लीपा जाता है उसके बाद ही देवी या देवता का चित्रांकन होता है। तो फिर इस कला को इन नजरो से क्यों देखा जाता है क्या हमारे बुजुर्ग अपनी आने वाली पीढ़ी को इसकी विशेषता बताने में सक्षम नहीं है यहाँ पर सिर्फ नई पीढ़ी को समझाने की कमी दिखती है क्योंकि वह पश्चिमी कला की ओर अग्रसर हो रहे है और विदेशी कलाकार यहाँ के मूलक मंत्रों के बीजों को खोदने में लगे हैं। हम भारतीय अपनी कला को छोड़कर पाश्चात्य की और दौड़ लगा रहे हैं तो यही वक्त है कि सरकार द्वारा ऐसा कदम उठाया जाए जिसमें स्वदेशीय लोककला को कलाक्षेत्र में वह स्थान प्राप्त हो जिसका वह हकदार है और रहेगा।

इसी क्षेत्र में आगे बढ़ने पर हमें लोककला की मौलिकता में कमी का एहसास होता है जो कि कई हद तक सही भी है। जिस तरह किसी भी वस्तु के लगातार उपयोग से उसमें ह्रास या कमी होती है उसी प्रकार लोककला में भी मौलिक रूप की कमी होकर नए नए प्रयोगों का आविष्कार हुआ कही तो यह ठीक भी लगता है परन्तु मूलरूप यदि पूर्णता से खो दिया जाए तो वह लोककला का अर्थ और रूप दोनों को ही पलट देती है। परिवर्तन एक हद तक ही ठीक होता है। किसी भी लोककला में परिवर्तन की अति उस कला को अंत की ओर ले जाती है अतः आने वाले समस्त कलाकारों और कलाविदों को यह बात दिमाग में बैठानी होगी की कला में ज्यादा परिवर्तन ठीक नहीं - हाँ प्रयोगात्मकता के रूप से किया गया कुछ प्रतिशत ठीक होता है। किंतु वह भी उसकी मौलिकता खत्म किए बिना इस पक्ष में एक कलाकार को ही लोककला के संरक्षण हेतू अपनत्वता दिखानी होगी कि वह लोककला के मौलिक रूप को बनाए हुए उसे विकास की और ले जाए।

एक अन्य चुनौती में आता है ''लोककलाओं की लोकसांस्कृतिक मंच पर सीमित क्षेत्र एवं सीमित समय में प्रस्तुति'' क्यों लोककला किसी तरह का दिखाए जाने वाला नाट्य है या किसी प्रकार का सुनाया जाने वाला वाद्य जो सीमित समय और क्षेत्र में प्रस्तुत किया जा सके- यदि नही तो जल्द ही कलाप्रेमियों को इस स्थिति को नियंत्रण में लाने हेतू कई कदम उठाने होगे इसके आयाम के चलते कलाकारों द्वारा सरकार की मदद से लोककला के प्रशिक्षण हेतु शिविर लगाने के साथ ही साथ इनको पुस्तक ज्ञान भी देना होगा जिससे जनमानस लोककला के प्रति जागरूक हो सके लोककला संजा को उस स्थान तक उपर लेकर जाना है। जहाँ इसे सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध और सीमित आयामों वाली लोककला का दर्जा मिलते हुए विदेशी कारोबार में भी ख्याति प्राप्त हो।

लोककला सांझी ना केवल कुँवारी कन्याओं की कलात्मक अभिरूचि को बढ़ाता है अपितु अपने प्रिय जनों को स्मृति को बनाए रखता है इस अनुष्ठानिक प्रक्रिया से कन्याएँ पित्रों के प्रति श्रद्धा और आस्था की भावांजलि भी देती है।

यह कला कन्याओं का भावी कलात्मक गृहस्थ जीवन के गुर सिखाती है जिससे वह स्वयं अपने जीवन में सांस्कृतिक परिवेश का अनुपम आनंद लेती है।

लोक संस्कृति में लोककला सांझी की यह समृद्ध धरोहर केवल मात्र कन्याओं के मनोरंजन का विषय नही रह गयी है अपितु इस आकर्षक कला में जनमानस के रूझान न

लेने के कारण साहित्यकारों द्वारा अनेक साहित्यों में इस कला को बढ़ावा देने हेतु नए आयामों का उल्लेख भी किया ताकि जनमानस इस कला को विलुप्त ना होने दे साथ ही साथ संस्कृतिकर्मियों द्वारा भी समय-समय पर विशेषता से संजा कला के महत्व को पहचान जनमानस से अवगत कराया तथा प्रतियोगिताओं द्वारा इस कला के वर्चस्व को बनाए रखा, हर वर्ष नियमित रूप से होने वाली प्रतियोगिता को प्रतिभागी कन्याओं को भी बहुत इंतजार रहता है। कुछ कलाकारों ने संजा लोककला को चित्रकला की एक शसक्त अभिव्यक्ति मानते हुए इस कला के कला तत्वों को अपने चित्रांकन शैली में सम्मिलित करते हुए व्यापम क्षेत्र दिया, इसके साथ ही भारत में बड़े-बड़े प्रख्याति प्राप्त चित्रकारों में शान्ति देव, एम.एफ. हुसैन, रजनीकांत पांचाल, सतीश गुजराल, लक्ष्मण पं, पीराजी सागरा, भूपेन्द्र रखर, ज्योति भट्ट, रमेश गर्ग, डॉ. रेखा, निमिषा शर्मा, मंजू मिश्रा, बसन्त कश्यप, वीरबाला भावसार आदि ने अपने चित्रों में संजा लोककला से प्रभावित होकर उभरांकन शैली का प्रयोग कर नए आयाम उद्घाटित किए।

फलस्वरूप इस कला के प्रेमी विदेशों में भी है, विदेशी कलाविदों ने भी सांझी लोककला के अध्ययन तथा अनुशीलन में अपनी गहरी रूचि दिखाई है। संजा लोक कला के समक्ष आने वाली नई चुनौतियाँ तथा चुनौतियों के समाधान हेतु नए आयामों की भी निरंतर खोज जारी है। जिसका सुखद परिणाम आने वाले निकटवर्ति समय में देखने को मिलेगा।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

प्रभा खेतान के उपन्यास छिन्नमस्ता में स्त्री-विमर्श

* विनीता कुमारी

सारांश– *प्रभा खेतान द्वारा लिखित उपन्यास 'छिन्नमस्ता' भारत में स्त्री–जीवन के संघर्ष के विविध आयामों को अभिव्यक्त करता है। 'छिन्नमस्ता' एक मिथकीय अवधारणा है। यह अवधारणा भारतीय समाज में नारी के जीवन की दशा को प्रतीकात्मक रूप से उद्घाटित करता है। उसे समाज में देवी की संज्ञा प्राप्त है परन्तु व्यावहारिक रूप से उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। समाज की समस्त वर्जनाएँ आज भी उसे पराधीनता की बेड़ी में बाँधती हैं, जबकि पुरुष उन वर्जनाओं के बन्धन में कभी नहीं बंधता। यदि कभी बंधता भी है तो जब जी चाहे उन्हें तोड़ फेंकता है। स्त्री कभी पिता और भाई के लिए तो कभी पति और पुत्र के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। नतीजा यह है कि औरत को हर क्षेत्र में हर जगह सिर्फ रोते हुए जीवन कुर्बान कर देना पड़ता है–औरत कहाँ नहीं रोती ? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भाग्य–ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासुजी की तरह पलंग पर रात–रात भर अकेले करवटें बदलते हुए। हाड़–माँस की बनी ये औरतें......अपने–अपने तरीके से जिन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें। हजारों साल से इनके ये आँसू बहते आ रहे हैं। प्रभा खेतान का यह उपन्यास इन्हीं आँसुओं को पोंछने का एक सफल और साहसिक प्रयत्न है।*

मुख्य शब्द– सामाजिक परिवेश, अन्तर्विरोध, अन्र्तद्वन्द, संघर्ष, नारीवाद

सुप्रसिद्ध कथा लेखिका प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' भारतीय सामाजिक परिवेश में व्याप्त अन्तर्विरोधों और अन्तर्द्वन्द्वों के बीच अपने स्वप्नों, आकांक्षाओं तथा स्त्री-प्रश्नों का उत्तर तलाशती एक नारी के संघर्ष की गाथा है। इस उपन्यास में कथा नायिका के जीवन-संघर्ष के साथ समाज की स्त्री-दृष्टि का भी चित्रण हुआ है। शारीरिक-मानसिक शोषण, उपेक्षा और प्रेम की प्रत्याशा में बार-बार छली जाने के बावजूद अपनी अदम्य जिजीविषा से वह समाज की स्त्री-विरोधी मानसिकता से अपने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में संघर्ष करती है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से यह उपन्यास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि 'छिन्नमस्ता' के मिथकीय प्रतीक के माध्यम से इसमें भारतीय समाज में स्त्री की वर्तमान जीवन-स्थिति का चित्रण हुआ है। सामाजिक अवधारणा में स्त्री जननी, आदि शक्ति और सृजन का आधार है, परन्तु वही आज सर्वाधिक शोषित और उत्पीड़ित है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व आज भी अर्जित नहीं कर सकी है, समाज की सारी वर्जनाएँ झेलती स्त्री आज भी पराधीनता की बेड़ी से जकड़ी हुई है। इन्हीं कठिन

* अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डॉ. एल.के.वी.डी. कॉलेज, ताजपुर (समस्तीपुर) बिहार

स्थितियों में 'छिन्नमस्ता' स्त्री के संघर्ष, आत्मबल और जिजीविषा का अन्यतम अभिव्यक्ति है। समकालीन कथा-साहित्य में लेखिकाओं की उपस्थिति पर विचार करते हुए वरिष्ठ आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव का मानना है-''प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' देह उत्पीड़न का भयावह आख्यान है।''[1] वर्तमान सामाजिक परिवेश में स्त्री-जीवन की भयावह त्रासदी और संघर्ष का जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

प्रसिद्ध आलोचक अभय कुमार दुबे अपने आलेख 'नारीवाद की हिन्दी कथा' में प्रभा खेतान की रचनाओं में अभिव्यक्त नारीवाद पर विचार करते हुए लिखते हैं-''प्रभा खेतान के हाशिए आम स्त्री हाशियों से कुछ अलग तरह के हैं, क्योंकि वे अपने सशक्तिकरण की सचेत कोशिश में लगी हुई दिखती है। सशक्त होना यूँ तो आधुनिक क्रिया है और पैसा कमाकर सशक्त होने की प्रक्रिया का एक आधुनिक पाठ भी होता है, पर प्रभा खेतान के जीवन में वह सिलसिला मारवाड़ियों के जातीय मंत्र के रूप में आता है। परिवार और समुदाय का माहौल तो है ही ऐसा और माँ भी बचपन से बेटी को इसी मंत्र से दीक्षित करती है। बाद में पैसा कमा लेने के बाद वे समाज के साथ कई तरह के समता मूलक संबंध विकसित करने की कोशिश में वह रिश्ता बना बैठती है, जिसे क्रिस्टोफर कौडवेल ने ''कैश रिलेशन'' कहा था। वे खुद को जानबूझकर ठगवाती हैं, खुले हाथ से पैसा देती है। इससे उन्हें कुछ-कुछ उछाल जैसा एहसास होता है।''[2] प्रभा खेतान का नारीवाद एक स्त्री के सशक्तिकरण, उसकी बुद्धि और धनोपार्जन की क्षमता में निहित है। इसलिए उनकी रचनाओं में हम स्त्री को राजनीतिक और आर्थिक रूप से सचेत होते हुए पाते हैं। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका को अनेक आलोचकों ने प्रभा खेतान का प्रतिरूप माना है। स्वयं प्रभा खेतान ने अपने एक साक्षात्कार में 'छिन्नमस्ता' में आत्मकथात्मक तत्व है, क्या ऐसे तत्व अन्य उपन्यासों में भी है? प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था-''कोई भी लेखक अपने अनुभवों को तोड़ता-मरोड़ता है, विभिन्न साहित्यिक विधाओं द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त भी करता है। उन परिस्थितियों पर कलम उठाता है जिनमें वह जी रहा है या फिर सीधे- सीधे कह लीजिए जो कुछ उसने भोगा है, उस भोगे हुए सच को दूसरों के सच के साथ तादात्म्य खोजना ही लेखन का मुख्य उद्देश्य रहता है। 'छिन्नमस्ता'में आत्म-कथात्मक तत्व अवश्य है और इसीलिए इस उपन्यास को इतना प्रमाणिक माना गया। यदि मैंने इस उपन्यास को आत्म-कथात्मक शैली में न लिखा होता तो शायद हिन्दी साहित्य में इसे वह स्थान नहीं मिलता।''[3] यह सच है कि उनका नारीवाद न तो पश्चिम का नारीवाद है और न भारत के सामाजिक विचारकों या रचनाकारों की नारीवादी अवधारणा का प्रतिरूप है। एक स्त्री की निजता और व्यक्तिगत अस्तित्व की तलाश करता उनका नारीवाद स्त्री-स्वातंत्र्य की सर्वथा नवीन जीवन-दृष्टि है। वे स्वयं कहती हैं-''मेरी यह आवाज एक भिन्न आवाज है और इस आवाज का खतरा यही था कि यह आवाज अनसुनी रह जाती, क्योंकि न मैं पूरी तरह उदारवादी थी और न ही मार्क्सवादी, न परम्परा से चिपकी रही और न ही आधुनिकता को भली-भाँति ओढ़ पायी। बस दिक्काल के निश्चित दायरे में अपने स्वभावगत तमाम विरोधाभासों के लिए जीती रही। मेरे लिए एक ओर मुक्ति की नयी-नयी उड़ानें थीं तो दूसरी ओर पुनः लौटकर उसी दायरे में बंधे रहने की विवशता भी थी।''[4] 'छिन्नमस्ता'[5] में नायिका सामाजिक वर्जनाओं एवं परम्परागत रूढ़ियों का प्रतिकार कर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करती है। उसके संघर्ष में

निहित नारीवाद पश्चिमी नारीवाद का अंधानुकरण नहीं है। नारीवाद का यह स्वरूप भारत के सामाजिक परिवेश में भारत के स्त्री-वर्ग की चेतना को अभिव्यक्त करता है।

उपन्यास की शुरूआत बड़े प्रभावी ढंग से नाटकीय अंदाज में होती है। अड़तालीस वर्षीया केन्द्रीय पात्र प्रिया, जो चमड़े की एक सफल व्यवसायी है, शिकागो से कलकत्ते की लम्बी हवाई यात्रा पर है। कलकत्ता पहुँचने से पहले बीच में ही वह बेलग्रेड हवाई अड्डे पर बीमारी और बेहोशी की हालत में वहाँ के सरकारी अस्पताल में पहुँच जाती है। प्रिया की यह दशा अत्यधिक कर्मशील और परिश्रमी होने के कारण होती है। विदेश की धरती पर उसके दो अन्तरंग दोस्त है हालैंड के शहर वाल वाइक वासी दम्पत्ति फिलिपि और जुडी। प्रिया की बीमारी की सूचना पाकर फिलिप वहाँ अस्पताल में उसकी मदद के लिए पहुँचता है। फिर अस्पताल में ही प्रिया के दिमाग में स्मृतियों के छोटे-छोटे बादल के टुकड़े तैरने लगते हैं, वह अपनी जिन्दगी के अतीत के गहरे सागर में गोते लगाने लगती है। वस्तुतः ये संवेदना की स्मृतियों के वे टुकड़े हैं-जिन्हें प्रिया ने हमेशा के लिए दफना दिया था, भूल जाना चाहा था ठीक उसी तरह जैसे अजनबी लोगों के चेहरे बस चेहरे लगते हैं, हम उन्हें देखते हैं, उनके साथ ट्यूब रेल में सफर करते हैं और स्टेशन के अन्धेरे से बाहर निकलकर साफ रोशनी में अपनी-अपनी दिशाओं में चले जाते हैं। हमारे सामने फैला होता है दिन का उजाला। उजाले में चमक रही होती है एक और दुनिया-हमें उस दुनिया में पहुँच जाने की जल्दी होती है। वर्तमान में प्रिया इस उजाले भरी दुनिया में पहुँच चुकी है, लेकिन आज अतीत की अंधेरी सुरंगें उसे अपनी ओर खींच रही है, जहाँ जाने को वह विवश है, शायद आत्मविश्लेषण और अपनी जिन्दगी का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए कि अपने इस जुझारू जीवन-संघर्ष में उसने क्या पाया, क्या खोया! दरअसल एक-दूसरे से असम्पृक्त प्रिया की ये वे स्मृतियाँ हैं जो दिन-रात दर्द का बोझ लिये दौड़ती तो रही है, किन्तु उसे विश्वास था कि वे पाताल के अंधेरे में कैद रहेंगी, कभी बाहर नहीं निकल सकेंगी, लेकिन अस्पताल के एकाकीपन में अंधेरे में कैद वे ही स्मृतियाँ इतनी प्रबल हो जाती हैं कि प्रिया के संकल्प को पीछे छोड़ सतह पर तैरने लगती हैं और प्रिया उनमें डूबने-उतराने के लिए विवश हो जाती है।

इस पृष्ठभूमि से जाहिर है कि यह उपन्यास बिखरे हुए अतीत को समेटने की चेष्टा है। पूरे उपन्यास के कथा-विन्यास में प्रिया की जिन्दगी के कई महत्वपूर्ण पड़ाव दृष्टिगत होते हैं। बचपन में वह घर में उपेक्षित है। उसके साथ उसका भाई ही कामुक दुराचरण करता है। कॉलेज में असीम के साथ उसका उत्तेजक जुड़ाव होता है। इन्हीं परिस्थितियों में वे दोनों प्रेमालिंगन की हद तक जाते हैं। प्रिया को भी मादक अनुभूति होती है। फिर सोचने पर प्रिया तो अनासक्त हो जाती है, किन्तु असीम की आसक्ति विवाहित होने के बाद भी अन्त तक बनी रहती है। बाद में आगे प्रिया की जिन्दगी में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है, जब वह अपने प्राध्यापक प्रो. मुकर्जी की मोहक नजरों के बहकावे में आ जाती है। छह माह तक प्रो. मुकर्जी निःस्वार्थ एवं शर्तहीन समर्पण करनेवाली प्रिया की भावनाओं और शरीर, दोनों से खेले रहते हैं। बाद में प्रिया की आँखें तब खुलती हैं जब अकस्मात् प्रो. मुकर्जी की नवविवाहिता से उसका सामना होता है। प्रिया उस शिक्षित अमानुष के छलावे और दोगलेपन से किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है। मानसिक आघात लगने से उसे यथार्थ-बोध होता ही है, साथ ही वह सच यह भी जान लेती है कि अब भावुकता

में आँसू बहाना व्यर्थ है। वह पुरुष जाति से घृणा करने लगती है और समाज की इस विसंगति से आजीवन लड़ने का संकल्प लेती है। इसके बाद के चरण में प्रिया का नरेन्द्र से विवाह होता है जो विदेश में शिक्षित एक समृद्ध उद्योगपति है। यह विवाह अप्रत्याशित एवं अविश्वसनीय रूप से होता है।

नरेन्द्र से विवाहोपरान्त प्रिया पुनः अन्तर्द्वन्द्व में पड़ती है। उसे जिन्दगी में एक नयी दिशा दिखाई देने लगती है। वह सोचती है कि उसे अब समाज में भय और असुरक्षा से छुटकारा मिलेगा। अतः उसका घायल मन बार-बार कहता है कि वह नरेन्द्र से अपना अतीत ईमानदारी से साफ-साफ बयान कर दे, किन्तु फिर उसी का एक और मन उसे रोकता भी है। उसका यह निर्णय बाद में तब सही साबित होता है जब नरेन्द्र बिना अतीत को जाने ही प्रिया को तरह-तरह से लांछित और उत्पीड़ित करने लगता है। आरंभ से ही दुःखी, पीड़ित, उपेक्षित प्रिया पति नरेन्द्र के पास भी इन त्रासदियों से छुटकारा नहीं पाती, वरन् पहले से जमी इनकी परत और मोटी होती जाती है। ससुराल में भी प्रिया तन-मन, कहीं से भी सुखी नहीं हो पाती। नरेन्द्र उसे सेक्स पूर्ति का माध्यम भर समझता है, जबकि प्रिया प्रेम की भूखी है। प्रेम तो उसे नहीं ही मिलता है, वहाँ वह स्त्री-पीड़ा के कई और रूपों से रू-ब-रू होती है। उसके संवेदनशील, किन्तु कमजोर व्यक्तित्व के ससुर का सास से अलग एक रखैल भी है, जिसकी नीना नाम की एक तेज तर्रार पुत्री भी है। वह रखैल ही प्रिया की छोटी माँ है और नीना ही उसकी ननद, जिससे बाद के जीवन में उसका गहरा लगाव जुड़ जाता है और वे परस्पर एक-दूसरे की सहायता करते हुए आपसी सहानुभूति भी रखती है।

नरेन्द्र और उसकी माँ के लाँछनों से ऊबी प्रिया अन्ततः एकरस गृहस्थ जीवन से भी ऊब जाती है। उसे लगता है कि वह इस घर की बहू-पत्नी न होकर उपभोग की एक वस्तु है, पति की जरूरतें पूरी करनेवाली सेक्रेटरी या नौकरानी है। बात-बात में उसे अनुमति लेने की जरूरत पड़ती है। करोड़पति अग्रवाल हाऊस की बहू होकर पैसे-पैसे के लिए उसे मोहताज होना पड़ता है। परिवार के चार सदस्यों की चार दिशाएँ हैं। नरेन्द्र सुविधाभोगी, स्वार्थी, ईर्ष्यालु, दिखावटीपन में जीने वाला, ऐयाश, वहशी, सवेदनहीन, पाशविक प्रवृत्ति का है। उसने हारना नहीं सीखा है, स्त्रियों का अनादर करना उसका स्वभाव है और उसे पर-पीड़न में आनन्द आता है। उसकी माँ भी ऐसे ही व्यक्तित्व की महिला है। उसके पिता एक संभ्रांत संवेदनशील पुरुष होकर भी अपना मन रखैल पत्नी को दे बैठते हैं और यही उनकी कमजोरी है जिस पर नरेन्द्र और उसकी माँ बार-बार चोट करते हैं। नरेन्द्र की माँ पत्नी होने का दर्द ढोती है और जो बातें स्वयं नहीं कह पाती वह नरेन्द्र से कहलवाने की कूटनीति अपनाती है। नरेन्द्र स्वच्छन्द, पिता-विरोधी है, और छोटी माँ तथा उसकी पुत्री नीना को देखना तक पसन्द नहीं करता। ऐसे परिवेश में दुःखी प्रिया की सहानुभूति अपनी समदुःखिनियों-छोटी माँ और नीना से सहज ही जुड़ जाती है।

अन्ततः विवशता की हद तक अत्याचार सहती प्रिया का सोया अहं जागृत होता है। वह अपना दुःख भुलाने के लिए, तमाम परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए और अमीर घर में गरीब जीवन जीने से बचने के लिए व्यवसाय की दुनिया में जाने का निर्णय लेती है। शुरू में इस कार्य में नरेन्द्र की भी सहमति रहती है, लेकिन जैसे-जैसे प्रिया का व्यवसाय फलता-फूलता जाता है, वैसे-वैसे नरेन्द्र की ईर्ष्या वृद्धि भी बढ़ती जाती है। उधर प्रिया की

उद्दाम महत्वाकांक्षाएं भी बढ़ती जाती हैं, वह नरेन्द्र से प्रतिस्पर्धा करने लगती है। व्यवसाय उसकी आइडेंटिटी बन जाता है। वह अपने व्यवसाय का विस्तार विदेशों तक करती है और इसके लिए अपने को काम के प्रति समर्पित कर देती है। वह अनवरत मशीन की भाँति काम करती है। यहाँ तक कि काम के पीछे अपने इकलौते पुत्र संजू तक की उपेक्षा करती है। इस प्रकार प्रिया की स्वायत्त होती जिन्दगी नरेन्द्र से देखी नहीं जाती । वह भाँति-भाँति से अवरोध उत्पन्न करने लगता है। प्रिया पर शक करता है, उस पर चीखता-चिल्लाता है, झूठे आरोप लगाता है, तलाक और हत्या तक की धमकी देता है, लेकिन प्रिया बेखौफ, निश्चिन्त ओर अडिग हो संघर्ष-पथ पर आगे ही आगे बढ़ती जाती है।

प्रभा खेतान स्त्री-वेदना की अभिव्यक्ति के बहाने 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में आम जिन्दगी से जुड़ी कई अन्य स्थितियों को भी प्रकट करती हैं। समाज में व्याप्त असम्पृक्ति, हिंसक सभ्यता का विकास, जात-पात और वर्गीय भेद, पाश्चात्य देशों में स्त्री की स्थिति, मारवाड़ी संस्कृति की विशिष्टताएँ एवं कमियाँ, व्यापार में सगे-सबंधियों तक का घात, दूसरे व्यापारिक दाँव-पेंच, बाल-विवाह, बेमेल विवाह और बिना विवाह स्त्री रखने की बुराइयाँ, परम्परागत समाज की अस्थिर एवं खोखली मान्यताएँ, स्वार्थ हेतु किए जानेवाले समझौते, कृत्रिम व्यावहारिकता, कुछ पाने के लिए कुछ खोने की स्वीकार्यता तथा ईश्वरीय न्याय में विश्वास, पति-पत्नी संबंधों की सफलता-असफलता की कसौटियों और दोहरे मानदण्ड की चुनौती देने तथा सच कहने का साहस आदि अवान्तर बातों का वर्णन लेखिका के समृद्ध जीवन-अनुभव का साक्ष्य है। वह इस तथ्य का कुशलता से प्रतिपादन करती है कि सारी दुनिया बेदर्द नहीं है और न ही इन्सानियत से रहित है। प्रिया के अनुभवों से यह प्रमाणित होता है कि अमानवीयकरण के दौर में भी स्वयं को बचाए बनाए रखना मुमकिन है, संवेदना, दोस्ती, प्यार-सब उभयपक्षीय समभाव से ही सम्भव है, तथा हजारों साल से जहाँ पुरुषों की कल्पना ठहरी हुई, जड़वत् है वहीं आधुनिक स्त्री की कल्पनाएँ यथार्थ की जमीन पर साकार हो रही हैं।

'छिन्नमस्ता' में पात्रों की बहुलता है। छोटे-बड़े असंख्य पात्रों में कुछ पात्र स्थायी भाव छोड़ते हैं। कथ्य की माँग के अनुरूप इनमें से कुछ पात्रों की भूमिका सकारात्मक है तो कुछ की नकारात्मक। चूँकि केन्द्रीय पात्र प्रिया को कठिन संघर्ष की कसौटी पर कसना है, इसलिए नकारात्मक चरित्र के पात्रों का सृजन स्वाभाविक रूप से किया गया है। जहाँ प्रिया और उसी के बहाने नरेन्द्र पूरे उपन्यास की धुरी है वहीं कथा-सूत्रों को बुनने में निःस्वार्थ ममता की प्रतिमूर्ति दाई माँ, संघर्षशील, किन्तु परम्परागत मानस वाली प्रिया की अम्मा, विराट् व्यक्तित्व के धनी, गरीबों के हमदर्द प्रिया के बाबूजी, निःस्वार्थ प्रेमी असीम, प्रिया के प्राध्यापक, प्रेरक पुरुष डॉद्द बनर्जी, दोहरे व्यक्तित्व वाला छली प्रो. मुकर्जी, अपने छोटे भाई अजय से छल करने वाला बेईमान एवं दुश्चरित्र विजय, सपत्नी का दर्द झेलती प्रिया की सास, संवेदनशील, किन्तु कमजोर व्यक्तित्व के पुरुष प्रिया के ससुर, ससुर की रखैल छोटी माँ, छोटी माँ के तेज-तर्रार, विद्रोही ईमानदार, साहसी और स्पष्टवादी अवैध सन्तान नीना, माँ-पिता के द्वन्द्व में उलझा और अन्ततः पिता नरेन्द्र के व्यक्तित्व पर गया प्रिया का पुत्र संजू, प्रिया के भूत-वर्तमान से जुड़े, उत्साह बढ़ाने वाले सच्चे दोस्त फिलिप और जूड़ी तथा प्रेम और इन्सानियत को जीवन्त करते वृद्ध जर्मन दम्पत्ति आदि की गहरी भूमिका है।

पूरा उपन्यास स्मृतियों में जहाँ एक ओर एक स्त्री की विशद संघर्ष गाथा को समेटे हुए हैं, वहीं इसकी प्रस्तुति स्थानगत और कालगत दृष्टि से सीमित दायरे में की गयी है। बेलग्रेड के सरकारी अस्पताल के तीन दिन, डयूब्रवनिक के सेतीस्टेफा होटल में दस दिन तथा एयरपोर्ट और हवाई यात्रा और फिलिप के गृहनगर वालवाइक में बिताये गये कुछ दिनों में ही सारी कथा बयान की गयी है। सोचने, याद करने के क्रम में लेखिका ने घटना-क्रम में बदलाव बड़ी कुशलता से किया है और बीच-बीच में अवान्तर बातें कहने में भी उसे महारत हासिल है। कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान प्रभावी एवं समर्थ वर्णन-क्षमता की धनी हैं। इसीलिए उपन्यास में स्थान-स्थान पर बिम्बों और प्रतीकों का सुन्दर संयोजन दिखाई देता है। उनकी अभिव्यक्ति सर्वत्र स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता का संस्पर्श लिए हुए हैं। कलात्मक अनुषंगों में बिम्ब एवं प्रतीक के अलावा स्वप्न, दिवास्वप्न, छाया-प्रतिभास आदि का भी अच्छा समावेश किया गया है। कई पात्रों के बीच संवादात्मकता एवं प्रिया के अतीत-मंथन में एकालाप या स्वगत-कथन की स्वाभाविक सृष्टि हुई है। 'छिन्नमस्ता' वर्तमान समाज में स्त्री-जीवन के संघर्ष की गाथा है, इसमें प्रभा खेतान की स्त्री-दृष्टि को कथा नायिका ने अपने संघर्ष से अभिव्यक्त किया है।

वर्तमान सामाजिक जीवन के परिवेश में स्त्री-जीवन कितना परिवर्तित हुआ है, समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ एवं पुरुष वर्चस्व की मानसिकता से स्त्री आज भी कितना मुक्त हो सकी है। इन प्रश्नों से रू-ब-रू होती उत्तरा बिष्ट कहती है-''दुनिया ने भले ही इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर लिया हो पर स्त्रियों की स्थिति में खासा सुधार नजर नहीं आता। अभी भी वे सामाजिक उत्पीड़न का निरंतर शिकार बनी हुई हैं। समाज में उन्हें पुरुष के बराबर अभी भी नहीं माना जाता।''[6] समकालीन कथा-लेखन में स्त्री प्रश्नों को अभिव्यक्त करने वाली रचनाओं के प्रकाशन से स्त्री-मन की भावनाएँ उजागर हुई हैं। मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्‌गल और प्रभा खेतान के कथा-साहित्य में स्त्री-जीवन के विविध आयामों की अभिव्यक्ति हुई है। रचनात्मक स्तर पर भी इनके लेखन को उत्कृष्ट साहित्य की कसौटी पर पुरुष-लेखन से कमतर नहीं आँका जा सकता है। अपनी रचनात्मकता से इन्होंने हिन्दी कथा-लेखन को भी प्रतिष्ठित किया है। प्रभा खेतान ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं में स्त्री की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया है, उस पर प्रश्न भी उठते रहे हैं। व्यक्तिगत जीवन में भी उनके संबंधों को लेकर टीका-टिप्पणी होती रही है। इन प्रश्नों को दरकिनार करती हुई वे कहती हैं-''लोगों के कहने या सुनने से किसी के बारे में मेरे विचार कभी नहीं बदलते या मैं एक बार सम्बन्ध बना लेती हूँ तो उसे अंत तक निभाती हूँ, कभी-कभी झेलती भी हूँ। इस जुड़ाव को दुनिया चाहे जितनी असंगतपूर्ण माने पर मुझे कभी नहीं लगतां यदि मैंने किसी से प्रेम किया तो वह शर्तों पर आधारित प्रेम नहीं था। स्वाभाविक था कि ऐसे प्रेम सम्बन्ध में मेरी निजी असुरक्षा और अधिक बढ़ती, परिवार और समाज का दबाब पड़ना लाजिमी था। मुझे लगता है कि स्त्री की स्थिति और अधिक संवेदनशील और दयनीय इसलिए होती है क्योंकि वह आर्थिक रूप से दूसरे पर निर्भर होती है।''[7]

प्रभा खेतान एक नारीवादी चिन्तक के रूप में परिवर्तित सामाजिक परिवेश में स्त्री-प्रश्नों पर विचार करती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में स्त्री-जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को रेखांकित करती हुई वे कहती हैं-''भूमंडलीकरण स्त्री को उपभोक्ता के रूप

में समाज में भोगी जा रही थी, वही स्त्री आज दुनिया के बाजार में एक सशक्त उपभोक्ता के रूप में अपनी पसंद-नापसंद का जिक्र कर रही है। विक्रेता उसे लुभाने, उसका मन जीतने की कोशिश कर रहा है। यह आधी दुनिया अपने मानवीय अधिकारों से लैस हो या न हो मगर उपभोक्तावादी अधिकारों का जरूर वजूद रखती है।''[8] भूमंडलीकरण ने स्त्री को अपनी उस शक्ति से परिचित कराया, जिससे वह अनजान थी। इस शक्ति के बल पर वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व अर्जित कर सकती थी और कुछ अर्थों में उसने किया भी परन्तु विश्वव्यापी बाजार की चकाचौंध ने स्त्री को इतना लुभाया है, इतना अधिक कि, उपभोक्ता की स्थिति में स्वयं को स्त्री स्वतंत्र समझ रही है जबकि वास्तविकता बिल्कुल विपरीत है, स्त्री उपभोक्ता बाजार को निर्देश नहीं दे रही बल्कि यह तो बाजार है जो स्त्री को मनचाहा सामान परोस रहा है और जिसे भोगने के लिए स्त्री बाध्य है।''[9] प्रभा खेतान ने सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-जीवन की समस्याओं और संघर्ष को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

यह सच है कि साठ के दशक के बाद से स्त्री-विमर्श और उसके संघर्ष का इतिहास निरंतर जागरूक होती हुई स्त्री द्वारा रचा गया इतिहास है। जीवन और साहित्य में नारी-जीवन से जुड़े प्रश्नों, सामाजिक, पारिवारिक तथा आर्थिक विवशता से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण स्त्री-रचनात्मकता का अभिलेख है। इस प्रकार स्त्री-लेखन की मूल संवेदना स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों से गहराई से जुड़ी हुई है। ''हिन्दी कथा लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से स्त्री को भाग्य की वस्तु मानने की दिशा से आगे बढ़कर स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण की बात कह स्त्रीवाद एवं उसके संघर्ष को एक निश्चित परिभाषा दी।''[10]

स्त्री के प्रति पुरुष-दृष्टि पर अपना विचार प्रभा खेतान ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-''स्त्री की मुक्ति की चर्चा करने वाला पुरुष तमाम हमदर्दी, नेक इरादे तथा अथक प्रयासों के बावजूद वर्णन में स्वयं को स्त्री का प्रतिनिधि बनाता चला जाता है। इस प्रकार स्त्री अपना प्रतिनिधित्व स्वयं ही करने के अवसर तथा अधिकारों से वंचित रह जाती है।''[11]

प्रभा खेतान स्त्री-विमर्श को पुरुषवादी वर्चस्व से मुक्त स्त्री द्वारा अपने संघर्ष से अर्जित निजी व्यक्तित्व तथा विशेष रूप से आर्थिक मुक्ति में निहित मानती है। उनके उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की नायिका का जीवन-संघर्ष स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अर्जित करने तथा आर्थिक सबलता प्राप्त करने का संघर्ष है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान ने भारतीय स्त्री-जीवन के प्रश्नों के साथ ही स्त्री-विमर्श की दिशा एवं दशा को भी अभिव्यक्त किया है।

==================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पुनर्नवा, सं.-संजय गुप्ता (2009), जागरण प्रकाशन लि., नई दिल्ली अंक-1, पृष्ठ-73
2. तद्भव, सं.-अखिलेश (2007), लखनऊ-226016 अंक-जुलाई, पृष्ठ-40
3. वागर्थ, सं.-एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम खेमानी (2008), भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, अंक-मार्च, पृष्ठ-19
4. अन्या से अनन्या-प्रभा खेतान (2007), राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., प्रथम संस्करण, पृष्ठ-261

5. छिन्नमस्ता,-प्रभा खेतान (1993), राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., प्रथम संस्करण।
6. समयांतर,-पंकज बिष्ट (2016), दिल्ली, अंक-जनवरी, पृष्ठ-43
7. वागर्थ, सं.-एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम खेमानी (2008), भारतीय भाषा परिषद्, अंक-मार्च, पृष्ठ-21
8. स्वाधीनता, (शारदीय विशेषांक), सं. राम आहलाद चौधरी (2004), भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), कोलकाता-16, अंक-2004, पृष्ठ-154
9. वही, पृष्ठ-158
10. आजकल, सं.-सीमा ओझा (2011), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली-110003, अंक-मार्च 2011, पृष्ठ-25
11. इंडिया टूडे, (सहित्य वार्षिकी), सं.-अरुण पुरी (1996-97), लिविंग मीडिया इंडिया लि., नई दिल्ली, अंक-1996-97, पृष्ठ-18

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

बुन्देलखण्ड कवियों की भाषिक प्रकृति

* अमित शुक्ल

सारांश– *बुन्देलखण्ड के कवियों ने व्यावहारिक भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और उसे साहित्यिक धरातल तक ले जाने का एक सफल प्रयास किया। बुन्देली की सहज मधुर प्र.ति के अनुकूल शब्दों को ढाला और उनके खुरदरेपन को समतल एकरूपता प्रदान कर अपने में स्वाभाविक रीति से घुला लिया (जहाँ कहीं भी घिसाइ में कुछ कमी रह गई है शब्द आंकते हैं। बुन्देलखण्ड के कवियों की भाषा प्रकृति के उनके काव्य में अत्यन्त आन्दोलित करती हुयी चलती है। एक एक शब्द अपने सहज एवं कलात्मक अपायों को स्पष्ट प्रकाशित करता चलता है। पैजनों की छनकार सी हृदय की पोर-पोर को आन्दोलित करती उनकी आनुप्रासिक गति, प्रत्येक स्वर पर अपना हृत्कम्पन, स्वतंत्र अंग भंगी एवं निश्छल सौन्दर्य सभी रस माधुरी के उज्ज्वल उच्छलन को भीतर न समेट रख सकने के कारण छलका पड़ता है। जीवन की सहजता की यह सहज अभिव्यक्ति, आत्मीयता की स्वाभाविक गंध उनकी मौलिक विशेषता है। बुन्देली कवियों के सोचने और बोलने की भाषा में एकतानता समाये हुए है।*

मुख्य शब्द– अप्रतिम सहजता, जीवंत अभिव्यक्ति, शिष्टरूप

कृतिमता से बहुत दूर सहज भाषा और सहज भावाभिव्यक्ति के उपासक ईसुरी इसके अग्रगण्य हैं तथा गंगाधर और ख्यालीराम जैसे कुछ रीतिकालीन विचारधारा से प्रभावित बुन्देली के परिमार्जित व संस्कृतनिष्ट रूप के पोषक। अन्य कवियों की भाषा भी यतकिंचित उनकी सोचने की भाषा से प्रभावित हुई है। फिर भी कुल मिलाकर भाषा का जो रूप संगठित हुआ है वह बुन्देली की साहित्यिकता का एक सहज ताना-बाना है।[1] किसी भी भाषा की मुख्य कसौटी उसका शब्द-भंडार, कहावतें मुहावरे, क्रियापद, प्रत्यय एवं विभाक्तियाँ तथा उसका सौष्ठव है। शब्द भंडार की दृष्टि से तद्भव बहुत बोलचाल की भाषा को ही अधिक प्रश्रय मिला है। एक छन्द है-

जो तुम छैल छला हो जाते,
परे उँगइयन राते।
मौं पोंछत गालन हाँ छूते, कजरा देत दिखाते।
घरी घरी घूँघट खोलन में, नजर सामने राते।
मन चाही लख में तुम विदते, हाँत जहाँ जब जाते।
ईसुर दूर दरस के लाने, ऐसें काये ललाते।

उक्त पक्तियों में लगभग सभी शब्द तद्भव हैं। अव्यय, सर्वनाम, क्रियापद, छैल

* प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

(छविल्ल -छइल), छल्ला (छल्लि), उँगइयन (अंगुलि - उँगरि+या), मों (मुख), गालन (गल्लः), कजरा (कज्जल), घरी (घटी - घड़ी), घूँघट (गुगुण्ठ - घूँघुट), सामने (सम्मुख - सामूह), मनचाही, लख (लक्ष्य), हाँत हस्त -(हत्थ), दरस (दर्शन), ललाते (ललत्) आदि। फागों में तद्भव शब्दों की संख्या लगभग अस्सी प्रतिशत तक है। आडम्बरहीन सहज सौन्दर्य के उपासक इन तद्भव शब्दों का उत्स यद्यपि संस्कृत से है पर प्रकृति बुन्देली के अनुकूल। कुछ ने तो अपना अस्तित्व ही अलग खड़ा कर रखा है।[2]

जैसे कि -'मंजयाई' जिसका अर्थ देवी या भोगी है, मूल शब्द 'मध्य' से व्युत्पन्न। किन्तु प्रयोग की दृष्टि से इसकी बनावट ध्वनि तथा अर्थ अपने ढंग का है। ऐसे ही, अगताँ (अग्रतः) अनोई (अन्यायी), अगाने (आघ्राण), उजा (उचित), भमीरा (भ्रमर) आदि अनेक शब्दों को देखा जा सकता है, जो भाषा में अपनी अप्रतिम सहजता लिए देशज जैसे प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त भाषा की सहजता और चित्रत्मकता के अन्य प्रमुख उपादान अनुकरणात्मक और देशज शब्द हैं जिनकी अर्थ ध्वननयुक्त ध्वनि भले ही साहित्यिक शब्दावली में अपना उचित स्थान न पा सके पर भाव सौन्दर्य और कला को अपनी संगीतात्मकता से अनुगंजित अवश्यक करती है -

1. मने में परत पैंजना बाँके, चलतन होत छमाके।
2. लोयन के दोऊ कोयन लौं कर कटाच्छ छहरान लगे।

पंक्तियों में प्रयुक्त 'छमाके' 'छहरान' और झकेझेला शब्दों का नादात्मक सौन्दर्य वस्तुस्थिनि को जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान करता है। बुंदेली कवियों ने भाषा को आवश्यकतानुसार तत्सम शब्दावली से भी परिपोषित किया है और उसके अक्षय भंडार से शब्दों को चुना है। ऐसा बहुत कुछ सिद्धान्तों के प्रतिपादन, रूप चित्रण, अप्रस्तुत विधान, संसकृत साहित्य के प्रभाव का लतापक्षी जैसी फागों में कविकर्म की पराकाष्ठा निरूपण किया है। रूप चित्रण के संबंध में एक फाग देखें-

नीको अंग नंग नंग रंगनीकौ, रूप रमा रमनी की ।
मृगी मीन मधुकर मद मोचन, लोचन लोच अमी कौं
नासा कीर कपोल कंठ सुर, कोकिल कल कमनी कौ।
कटि मृगपति लख रहत परायन, सुन्दरि गज गमनी कौ।
कवि ख्याली निसदिन गुन गाबैं, स्यामलिया सँगनी कौ।।[3]

उक्त फाग में लगभग सभी शब्द सत्संग है किन्तु फागकार ने यहाँ भी सहजता और स्वाभाविकता के प्रयास में वर्ण मैत्री और वर्णसंगति के साथ-साथ कुछ सत्सम शब्दों पर जहाँ अवकाश पाया है बुन्देली का रंग चढ़ाया है। अपनी पद्धति से कवि ने 'नित्त' की 'नीको', 'अंग' को 'अंग', 'रमणी' को 'रमनी', 'अमृत' को 'अमी', 'नसिका' को 'नासा', 'स्वर' को 'सुर', 'कमनीय' को 'कमनी', 'परायण' को 'परायन', 'गामिनी', को 'गमनी', 'निशि दिन' को 'निस दिन', 'गुण' को 'गुन', श्यामलिया' को 'स्यामलियाँ' तथा 'संगिनी' को 'संगनी' कर दिया हैं। इन सूक्ष्म परिवर्तनो से ही शब्दो की संगत बदल गई है। इसी प्रकार विदेशी- अरबी, फारसी और तुर्की - शब्दो को भी इन्होंने बोली के साँचे में ढालकर अपनी तरह से प्रयोग किया है। यथा-तमासा (तमाशा), मीजान (मीजान), गुलाल (गुल्लाला), मजा (मजाः), नजर (नज़र), तरफ (तरफ़), इकरार (इक्रार), इसारो (इशारः), माताबन (माहताब), रोजऊँ (रोज), जाहिर (जाहिर) और जरद (जर्द) आदि कितने ही शब्द

हैं जो बुन्देली में अपना तालमेल रखते है और उसकी प्र.ति के अनुकूल बन गये है।मुहावरे व कहावतें जन भाषा की वह अमर थाती हैं, जो बरबस ही अपनी ओर सबका मन आकर्षित कर लेती हैं। इनकी सटीकता, सार्थकता और व्यंजकता तो श्लाघ्य है ही, श्रोता पर व्यापक प्रभाव छोड़ने की इतनी अप्रतिम शक्ति की तो कोई तुलना ही नहीं। बोलचाल की सबल भाषा के तो ये अनिवार्य उपकरण है। इनमें अनेक प्रकार की जीवन व्यापी अभिव्यक्तियाँ तो ऐसी हैं जिनका भाषा के पास तो कोई स्थानापन्न प्रयोग ही नहीं ह। सम्भवतः इसीलिए फागकारों ने भी अपने शिथिल और मोथे भावों को इनके माध्यम से तीक्ष्ण तीर की तरह संवेद्य और प्रभावी बनाया हैं। लोक प्रचलित इन उपानों का आश्रय लेकर काव्य भाषा अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति में समर्थ हो सकी है। इनके द्वारा काव्य में वह प्रभाव अत्पन्न हुआ है जो कई कई पदों में भी सम्भव नहीं.........

1. है तो नहीं खाँड के घुल्ला, पियौं लैत कोऊ घोर।
   पंछी पियें घटत नइयाँ जल, लैरते समुद्र हिलोरें।।
2. ईसुर करें गरे को कठला हमखाँ बखम हमारे।

प्रथम उदाहरण में 'खाँड़ के घुल्ला होना' 'घोल कर पीना' पंछिन के लिये समुद्र हिलोरें नई घटतीं मुहावरे एवं कहावतों के माध्यम से व्यंग्य के रूप में हृदयगत भावों को एक तीव्र अभिव्यक्ति दी गई है तथा दूसरी पंक्ति में प्रियतमा की उत्कंठा 'गरे को कठला होबौ' के रूप में कितनी पावन हो गई है।

क्रिया पद– किसी भी भाषा की अपनी प्र.ति और स्वरूप उसके क्रियापदों तथा विभक्ति प्रत्ययों पर निर्भर करती है। फागों में प्रयुक्त क्रियापदों की प्र.ति बुन्देली के अनुकूल ओकारान्त है। भूतकालिक क्रियाओं के कुछ रूप ये हैं-[4]

1. कड़तन लग गओ मूँड़ दिरोंदा, ऐसो सिर खाँ ओदा।
   कारीगर ने बुरौ बनाओ, धरो न ऊँचो गोंदा।
2. मों खाँ ध्यान राधिका तेरौ, निधा नायखाँ फेर
   हरौ कस्ट जन जान आपनौ, बाधा आन अवेरौ।
   आदि सक्ति उर पार ब्रम्ह के हीं चरनन की चेरी।

क्रिया रूपों के अतिरिक्त संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण आदि भी ओकारान्त रूप में प्रयुक्त हुए है। उदाहरण के रूप में ऊपर की पंक्तियों में आये, ऊँचो, मौ, तेरौ, अपनौ, चेरी, आदि रूप देखे जा सकते हैं।बुन्देलखण्ड के काव्य विशेष रूप से फागों में प्रयुक्त क्रिया के मूलरूप स्वरान्त और व्यंजनान्त दोनों प्रकार के हैं। स्वरान्त में- अ, आ ई, ऊ, ए और ओकरान्त......सोच, देख, आ, गा, दे, ले, पी, छू, हो, सो आदि तथा व्यंजनान्त में जान, घूम, चूम आदि अनुनासिक्य में अन्त होने वाली धातुएँ हैं।

क्रियाओं की रूप-रचना में उनकी काल-रचना तथा कृदन्ती रूपों का महत्वपूर्ण स्थान है। फागों को भाषा में काल-रचना - वर्तमान, भूत और भविष्य -में एक से अधिक पद्धतियों का आश्रम लिया गया हैं इन्हें कृदन्ती काल, मूल काल तथा संयुक्त काल कह सकते हैं।

कृतन्ती काल– अधिकांश कृदन्तों का उपयोग सामान्य वर्तमानकाल और सामान्य भूतकाल के निर्माण में हुआ है। सामान्य वर्तमान काल में वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय 'य' का उपयोग पुल्लिंग एकवचन, बहुवचन तथा तौ का उपयोग स्त्रीलिंग एकवचन में

तथा 'ती' का प्रयोग स्त्रीलिंग एकवचन व बहुवचन दोनों में हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

1. लचकत लंक वंक कच भारन।
2. चलतीं कर खाले हाँ मुँइयाँ।
3. जौती पटियाँ पारें पानै।

सामान्य भूतकाल का निर्माण भूतकालिक कृदन्तों से हुआ है इसमें 'ई' प्रत्यय का उपयोग स्त्रीलिंग एकवचन के लिए तथा 'ई' प्रव्यय का एकवचन व बहुवचन दोनों के लिए हुआ है। पुल्लिंग प्रत्यय एकवचन के लिए 'ओ' तथा एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए 'ए' या 'ये' उपयोग में लगाया गया हैं।

जैसे-

1. खासी लगी नैन की गाँसी।
2. कड़तन हनीं नैन तरवारे।
3. कै पूरन पूनों के ससि में कुरा जमो रजनी कौ।
4. कईयक खड़े तुमाये लानै।

मूलकाल- वे काल जो धातु में सीधे प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं मूल काल के अंतर्गत समाहित हैं। वर्तमान काल धातु में 'ऐ' 'ऐ' 'बे' 'बै' 'जाऊँ' आदि प्रत्यय वगाकर प्राप्त किये गये हैं।[5]

जैसे-

1. बिसरै न धरन गगरिया की।
2. पैरैं छूटा तीन तराँ के।
3. सब सखियाँ मिल गावैं।
4. एक नार अपनी उम्मर में तीन रूप दरसावै।
5. ....चरनन सीस नवाऊँ।

भविष्यत्काल के प्रत्यय ऐं, ऐहै, ऐहैं, ऐहौं, औ, बै आदि है। उदाहरणार्थ-

1. ....देखत ही रथ भागैं।
2. सामू परै सोऊ छिद जैहैं अगल बगल बरकै ना।
3. स्बरें निसचर मारे जैहैं फिर का रैहै तोरी।
4. गंगाधर पीछूं पछतैही..........।
5. उड़हें पुन्न पताके।
6. जो तुम यार दूसरो करहौ.......।
7. फिर कै कौन दिनन में आऔ....फेर दरस न पाऔ।
8. जो कोऊ ईको अरथ लगाबै, सो नर चतुर कहावै।
9. जब घर आबैं सइयाँ मोरे।

संयुक्त काल-मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया जोड़कर संयुक्त कालों की रचना हुई है। इसमें मुख्य क्रिया प्रायः कृदन्त या अन्य रूपों में होती है तथा सहायक क्रिया विभिन्न कालों का द्योतक करती है। इसके अंतर्गत वर्तमान और भूतकाल दो हैं।

वर्तमान काल :

(अ) वर्तमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

1. जासौं जरत रात है छाती।
2. हेरत जात उगरियन में ही तकती है परछैयाँ।

(ब) भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

1. अब भगवान भये हैं सूदे।
2. गंगाधर ने सरन लई है।
3. बेंदा लाल लगो है।

भूत काल–

(अ) वर्तमान कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

1. काती तीं हम आये।
2. चाहत हती प्रीत प्यारे की।

(ब) भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

1. लम्बी खोर दूर लौं डाटै ठांडी हतीं उचारें।

प्रत्यय एवं विभक्तियाँ–

भाषा की रूप रचना के दूसरे प्रमुख तत्व विभक्ति प्रत्यय तथा परसर्ग काव्य में दो रूप मिलते है, एक अविकारी और दूसरा विकारी। अविकारी रूप का प्रयोग सामान्यतः कर्त्ता, कर्म, सम्बन्ध एवं अधिकरण कारक में हुआ है। ये किसी भी प्रकार के प्रत्यय या परसर्ग से अधिकरण कारक में हुआ है। ये किसी भी प्रकार के प्रत्यय या परसर्ग से सर्वथा मुक्त हैं। बानगी देखें-

1. रजुआ तनक न चलती नैकै। (कर्त्ता)
2. तै का देत महाउर नाउन। (कर्म)
3. ......कमल दलन पै राखे। (सम्बन्ध)

प्रत्ययों एवं परसगों के आधार पर विकारी रूप के पुनः दो भेद मिलते हैं- एक संश्लिष्ट और दूसरा विश्लिष्ट। संशिलष्ट रूप में कारक संबंधों की स्पष्ट करने वाले प्रत्यय- ए, ऐ, ऐं, ई अन और इन- संज्ञा या सर्वनामों आदि से पूर्णतया जूड़े रहते हैं। यथा-

अतः कमल पत्र से पाउन (अधिकरण)

आगई नगन नगन पियराई (अधिकरण)

लचकत अंक बंक कच भारत (करन)

ई : अब दिन आये बसन्ती नीरें (सम्बन्ध)

विश्लिष्ट रूप में कारक चिह्न परसर्ग रूप में अलग से प्रयुक्त होते हैं। फागों में प्राप्त परसर्ग इस प्रकार हैं-[6]

1. पैरे रजऊ ने प्रान हरन के.........।
2. नैना रंगरेजिन ने मारे..........।

कर्म और सम्प्रदान : को, कौं, खाँ, खों, के लाने, के हेत, आदि

1. तनकौ तनक भरोसौ नइयाँ।
2. नैना इसनेही कौ तरसै।
3. देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें।
4. तुमखों मों के मसे सें चीन्हीं।

5. आये बलम बिदा के लानै।

6. दिन कें मिलबे हेत पधारी।

करण और अपादान- से, सै, तै, सौं-

1. पाती छाती से चिपकाई.....।

2. नैना बारे सै न ताँसे।

3. खा गये पर नारी तें चुक्का।

4. उड़उड़ परत तवन झोंकन सों

सम्बन्ध : की, के, को-

1. बखरी बसियत हैं भारे की......।

2. लोयन के दोऊ कोयल लौ......।

3. जो तिल लगत गाल कौ नीकौ।

अधिकरण : में, पै, पर-

1. इक दिन ढरक आयें ओली में.........।

2. गुदना लगत गाल पै प्यारौ।

कहीं कहीं दो परसर्गो का एक साथ प्रयोग भी हुआ है। यथा-

1. कै निरमल दरपन के ऊपर सुमन धरो अरसी को।

बुन्देली भाषा का सहज सौन्दर्य, उसकी मिठास अनूठी है, किन्तु यदि उसके अनुरूप उसकी वसन-सज्जा भी बन पड़े तो कहना ही क्या। फागकारों ने बुन्देली के इसी मार्दव रूप को निखारा है और उसकी श्रृंगार साधना में ऐसी सधी हुई तूलिका चलाई है कि एक एक रंग अपनी सुन्दरता में चमक उठा हैं। भाषा की सजावट का एक साधन अनुप्रास भी है। फागों की अधिकांश पंक्तियाँ इसकी छटा से जगमगा उठी हैं। कुछ विशिष्ट प्रयोग देखें-

1. चंचल चपल चलत चारों दिस, मानो भुमै बनैती।

2. ठमस ठगीली ठगन प्रान खों, छै छलन छल वारो।

कहीं कहीं तो पूरी की पूरी पंक्ति आनुप्रासिक छटा से दीप्त चकाचौंध सी उत्पन्न करती है। आद्यानुप्रास के अतिरिक्त फागों में अंत्यानुप्रास का प्रयोग भी पदबंधो को लालित्य से भर देता है। इससे पद में एक प्रकार के संगीत गुण की अभिवृद्धि होती है। प्रस्तुत उदाहरण देखें-

अब रित आई बसन्त बहारन, लगे फूल फल डारन।
बागन बनन बंगलन बेलिन, बीथी बगर बजारन।
हारन हद्द पहारन पारन, धवल घाम जल धारन।

शब्दों में एक लय है, एक गति है, जो अपनी ओर आकर्षितकर लेती है। चरणों के अंतिम शब्दों में तो तुकों का प्रयोग लोक भाषा ओर हिन्दी की अपनी मौलिक विशेषता हैं। इनसे पंक्ति के माधुर्य में वृद्धि होती है और लय की रक्षा। गायन की दृष्टि से भी इनका अपना महत्व है। सम्भवतः इसीलिए फागकारों ने तुकों की समायोजना में आकाश-पाताल को एक कर रखा है तथा अपने प्रकार से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है। उदाहरण स्वरूप लग्गा, खग्गा, भग्गा, तग्गा, तथा बग्गा तुकों से समन्वित निम्न फाग देखी जा सकती है। फागकार ने किस प्रकार भावों के साथ तुकों को निभाया है-[7]

जब से लगो हमाओ लग्गा, कसको करिया खग्गा।
बड़े भोर झारततीं अपनो उठ द्वारें को अग्गा।
ऐसो लगो प्रीत कौ डोरी, टोरी टुटै न तग्गा।
कहत ईसरी ऐसें बिद गओ, ज्यों गोटन में बग्गा।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हे कि बुन्देलखण्ड के कवियों ने व्यावहारिक भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और उसे साहित्यिक धरातल तक ले जाने का एक सफल प्रयास किया। बुन्देली की सहज मधुर प्रकृति के अनुकूल शब्दों को ढाला और उनके खुरदरेपन को समतल एकरूपता प्रदान कर अपने में स्वाभाविक रीति से घुला लिया; जहाँ कहीं भी घिसाइ में कुछ कमी रह गई है शब्द आंकते हैं।

काव्यों की शब्द सम्पदा पर्याप्त समृद्ध है और अभिव्यक्ति के अनुकूल भी। इनमें संस्कृत के तत्सम, तद्भव, अनुकरणात्मक एवं देशज शब्दों के साथ ही विदेशी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। तद्भव शब्दों की संख्या तो लगभग अस्सी प्रतिशत तक हैं।

1. मुहावरों एवं लोकोक्तियों के सम्यक प्रयोग से व्यजंकता के साथ ही साथ सटीकता आदि की भी अभिवृद्धि हुई है।
2. बुन्देली के क्रियापदों के प्रयोग से- उसकी ओकारान्त प्रक्रति के कारण भाषा में सहज और माधुर्य गुण का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है।
3. अनुप्रास, वीप्सा, पुनरूक्ति आदि अलंकरण भाषा को कलाात्मक सौन्दर्य से अनुप्राणित करते हैं, उसे बोझिल नही वनते।

कुल मिलाकर बुन्देली कवियों की भाषिक प्र.ति काव्य की प्रौढ़ और शिष्ट रूप निखरा है। साधारण बोलचाल की भाषा से लेकर अलं.त और संगीतात्मक वैभव तक ईसुरी की सहजता से लेकर गंगाधर, ख्याली और परसराम की रंगत तक तथा जीवन को अनुभूत क्षणों लेकर अनेक चित्रण हुए हैं।[8]

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. बुंदेली और उसके क्षेत्रीय रूप, कृष्णलाल हंस, प्रकाशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1976, पृष्ठ-10
2. बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास, नर्मदा प्रसाद गुप्त, प्रकाशन, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1998, नई दिल्ली, पृष्ठ-53
3. बुंदेलखंड भाषा और साहित्य, कृष्णनंद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992,पृष्ठ-25
4. बुंदेलखंड का इतिहास, डॉ. गाोरेलाल, 1985, राधा कृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ-85
5. साहित्य की संस्कृति, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1999 पृष्ठ-25
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1972 पृष्ठ, 36
7. भारत मे सामाजिक परिवर्तन, डॉ. मनोज कुमार सिंह, आदर्श प्रकाशन, बीना, 2001, पृष्ठ, 28
8. स्वयं का सर्वेक्षण निष्कर्ष।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

दिनकरजी के कुरुक्षेत्र में मानवतावादी चेतना

* वाघमरे के.एच.

सारांश– *'कुरुक्षेत्र' एक विचार प्रधान काव्य है। कुरुक्षेत्र को भारतीय संस्कृति से प्रभावित मानते है। कुरुक्षेत्र में वर्णित विचारधारा को किसी एक वर्ग के अन्तर्गत रखना असम्भव है। कुरुक्षेत्र की विचारधारा को प्रभावित करनेवाले साधन इतने विभिन्न तथा विरोधी हैं कि किसी एक में निश्चित रूप से नहीं रखा जा सकता है। साथ ही इनमें से किसी एक को व्यापकता भी प्रदान नहीं की जा सकती है, जो 'कुरुक्षेत्र' के मानवतावाद में समाहित हो सके। जीवन के प्रतीयमान विरोधों में सामन्जस्य की स्थापना हमारी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है और यह संस्कार दिनकर के व्यक्तित्व में पूर्ण रूप से भरे हुए है। हम दिनकर की कृति कुरुक्षेत्र की पुकार चारों ओर सुनते हैं। इस शोध पत्र में जो विवेचन किया जा रहा है, उसके माध्यम से हम दिनकर के इस काव्य में मानवतावाद को स्पष्ट रूप से देखेंगे।*

मुख्य शब्द– मानवतावाद, अहिंसा, मानव कल्याण, समन्वय, समानता, शान्ति

वर्तमान में साहित्य, राजनीति, दर्शन, विज्ञान आदि सभी एक दूसरे के निकट आ गए हैं। यह विश्व इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। यह सभी एक दूसरे से प्रभावित हैं, किन्तु कुल मिलकर एकाकार नहीं हो सकते हैं। सबका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। आजकल साहित्यिक कृतियों में विभिन्न मतवादों के सन्धान की प्रवृत्ति प्रचलित है। यहाँ जिस 'वाद' का सन्धान किया जा रहा है, वह कोई थोपी हुई वस्तु नहीं, बलात् विचार नहीं, बल्कि यह मानव-मन की सुकोमल भावना ही है, जिसे आज एक 'वाद' का रूप लेना पडा, जिसे 'मानवतावाद' के नाम से जाना जाता है।

'मानवतावाद' अपने में विश्व-कल्याण, अहिंसा, विश्व शान्ति, प्रेम, समानता, विश्व बन्धुत्व आदि की भावना रखता है। कवि दिनकर की कृति 'कुरूक्षेत्र' में इसी 'मानवतावाद' का स्वर चारों और गूँजता सुनाई पडता है। कवि दिनकर कोई वाद या मत से ग्रसित नहीं थे, बल्कि वे तो मानवता का कल्याण करना चाहते हैं। उन्होंने अपनी इस कृति 'कुरूक्षेत्र' में हर एक विचारधारा का स्वागत किया, जिससे कि मानव का कल्याण हो सके।

अहिंसा और मानवतावाद का घनिष्ठ सबंध है। मानवतावाद का उद्देश्य मानव कल्याण है और वह कल्याण अहिंसा को अपनाएं बिना, शत्रुता के त्याग के बिना कभी संभव नहीं हो सकता। अहिंसा मानवतावाद का प्रधान साधन है और प्रधान शर्त है। यहाँ

=========================

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, कालिका देवी आर्ट, साइंस एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शिरूर (कासार)

अहिंसा की बात हमारे सामने आयी हो, तो हिंसा का तथा अहिंसा का सबंध भी जान लेना आवश्यक है। हिंसा वहाँ होती है जब कोई भी अपनी लाभ या लालच के लिए मन, वचन, कर्म से किसी दुसरे को हानि पहुचाएँ तथा अपना लाभ देखे।

दिनकर ने अपने काव्य में हिंसा तथा अहिंसा की बात कही है तथा दोनों का सम्बन्ध मानव कल्याण अर्थात मानवतावाद से ही है। उन्होंने कुरुक्षेत्र में कई स्थलों पर अहिंसा की बात करते हुए मानवतावाद को पोषित किया है। द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर अपने मन की शंकाओं को पितामह के सामने रखते है और साथ ही वे पश्चाताप भी करते हैं वे कहते है अगर महाभारत के इस भयंकर परिणाम कों मैं पहले से जानता तो कभी युध्द न करता । सुयोधन को त्याग, तप और मन:शांक्ति से जीतने का प्रयास करता

''जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन बल छोड़ मैं मनोबल से लड्ता,
तपसे सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को जीत,
नई नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र लगता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता,
तो भी हाय यह रक्त पात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मागता।''

तृतीय सर्ग में पितामह अपने इस मानवतावादी दृष्टिकोण को ओर भी स्पस्टता तथा शक्ति के साथ व्यंजित करते है वे कहते हे कि मैं भी यह चाहता हूँ कि संसार में मारकाट समाप्त हो जाए और संसार पर क्या, प्रेम का सामाज्य हो जाए

''मैं भी हूँ सोचता, जगत् से, कैसे उठे जिघांसा
इस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा, प्रेम, अहिंसा''[1]

कवि दिनकर अपनी कृति कृरुक्षेत्र में मानव कल्याण की बात कहते हैं। उनका मानव कल्याण से तात्पर्य है कि मानव का हर प्रकार से विकास हो। वह मानव को केवल भौतिक सुख ही नहीं देना चाहते, बल्कि उसकी मानसिक सुख व शांति कि बात भी करते है। मानव कल्याण मानवतावाद का प्रमुख ध्येय है। मानवतावाद उन हर परिस्थितियों तथा साधनों को ग्रहण करता है, जिससे मानव का कल्याण हो सके। वह उस हर एक वस्तु तथा विचार का विरोध करता है, जिससे मानवता का, मानव का हनन हो। मानवतावाद प्रत्येक मानव को वह हर एक अवसर प्रदान करता है, जिससे मानव का कल्याण हो। वह सभी को समान दृष्टि से देखता है।

कवि दिनकर अपने कुरुक्षेत्र में मानव कल्याण की बात कही है। उसमें हर एक परिस्थिति को उभारा है, जिससे मानव कल्याण हो सके। वह षष्ठ सर्ग में कहते प्रांरभिक पंक्तियाँ में कहते है-

''धर्म का दीपक,
दया का दीप,
कब चलेगा,
कब जलेगा विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त हो,

सरस होंगे जाली सुखी रसा के प्राण?''[2]

कवि दिनकर मानवता की दुहाई सप्तम सर्ग में देते हैं पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं यदि तुम अपने -हदय के तूफान से उपर उठकर देखो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि मानवता मुकुट राज्य, सम्पत्ति,तपस्या,जप,यज्ञ और योग साधना से भी महान है

''उँचा उठ देखो, तो किरीट, राज, धन, तप,
जप, याग, योग से मनुष्यता महान है।'' [3]

सप्तम सर्ग में भी भीष्म ने मोक्ष को त्याज्य बतलाया है, क्योंकि उससे एक व्यक्ति का कल्याण हो सकता है, समस्त दृश्यमान जगत् का परित्राण उससे सम्भव नहीं। वैयक्तिक सुखोपलब्धि की अपेक्षा समष्टि को सुखी बनता कहीं अधिक महत्तर उपलब्धी है-

''दुर्लभ नहीं मनुज के हित, निज वैयक्तिक सुख पाना
किन्तु, कठिन है कोटि कोटि, मनुजों को सुखी बनाना।''[4]

मानव जीवन के दु:ख का मूल कारण समन्वय का अभाव है। इस जगत में हर एक वस्तु एक दुसरे की पूरक है, कोई भी अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसी कारण प्रत्येक वस्तु एक दुसरे पर अश्रित है। अश्रितता के साथ साथ उन वस्तुओं में आपसी समन्वय होना चाहिए। यदि समन्वय नहीं होगा तो वहाँ संघर्ष होगा तथा संघर्ष से विनाश होगा। इसलिए प्रत्येक वस्तु में पूर्ण रुप से समन्वयता होनी चाहिए। मनुष्य की स्थिति भी यदि है उसके दु:ख का कारण भी यही समन्वय का अभाव है -

''बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर कर्म से पशु नीच।''[5]

दिनकर जी की कृति कुरुक्षेत्र में- हदय और बुद्धि के समन्वय की बात कही गई है। उन्होंने कहा है कि हमें -हदय को मस्तिष्क के शासन से मुक्त रखना चाहिए। यदि दोनों में से एक आवश्कता से अधिक विस्तार पा गया तो जीवन का रथ डगमगा जाएगा वे कहते है -

''कर पाता यदि मुक्त -हदय को, मस्तक के शासन से
उत्तर पकड़ता बाँह दलित की, मंत्री के आसन से।''[6]

कुरुक्षेत्र के माध्यम से कवि कहता है हम आवश्कता से अधिक बौद्धिक होते जा रहें और हमारे जीवन का रस स्त्रोत प्रतिपल सूखता जा रहा है। -हदय ओर बुद्धि में किसी प्रकार की संगति नहीं बैठ पा रही है -

''किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिक ही नि:शेष, छूटकर पीछे गया है रह -हदय का देश,
नर मनाता नित्य नुतन बुद्धि का त्योहार,प्राण में करते दु:खी हो देवता चीत्कार।''[7]

इस प्रकार कवि ने कुरुक्षेत्र में समन्वय पर ही अधिक बल दिया है। उसका कहना है कि जब तक मन वचन, -हदय बुद्धि, मन देह, प्रवृत्ति निवृत्ति में समन्तय नहीं होगा, जीवन में स्थिरता नहीं आ पाएगी और मानव का विकास नहीं हो पाएगा। मानव के विकास के लिए उसने इन सारी प्रवृत्तियों के समन्वय पर बल दिया है।

मानवतावाद में समानता पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। सभी मनुष्यों को एक सा माना जाता है। उनमें लिंग, वर्ण, वर्ग, जाति आदि के आधार पर भेद नहीं किया जाता है। कोई न उँचा है, न कोई नीचा है, न कोई राजा है, न कोई दास। सभी को प्रगति के समान अवसर प्रदान किए जाते हैं और सभी की उन्नत्ति की कामना की जाती है। दिनकर

का कुरुक्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देने के पक्ष में है अर्थात इनका दुष्टिकोण साम्यवादी है। वे सभी की सभी स्तरों पर समानता की बात करते है। ये सुखियों को और अधिक सुखी बनाने में नहीं, बल्कि दुखियों को सुखी बनाने में अधिक विश्वास करते हैं। वे चाहते है कि सभी समान रुप से जिएँ।

कुरुक्षेत्र में भी कवि ने समानता की बात कही है। कही ऐसे प्रसंग है जहाँ समानता के दर्शन होते हैं, जो कि मानव कल्याण में सहायक है। कवि पंचम सर्ग में प्रेम के साथ समानतापूर्वक जीवन जीने की बात करता है-

''वह लोक, जहाँ शोणित का ताप नहीं है,
नर के सिर पर रण का अभिशाप नहीं है
जीवन समता की छाँह तले जलता है,
घर घर पीयुष प्रदीप जहाँ जलता है''।[8]

कवि दिनकर जी शांन्ति के लिए भी समानता की आवश्कता पर बल देते हैं। वे कहते हैं जब तक मनुष्य मनुष्य बराबर नहीं होगा तब तक इस धरती पर शांति नहीं आ सकती यदि कोई एक दुसरे से कम या अधिक होगा तो वहाँ संघर्ष होगा। हमेशा कोलाहाल ही होगा, शांति नहीं होगी।

''न्यायोचित सुख सुलभ नहीं; जब तक मानव मानव को
चैन कहाँ धरती पर, तब तक, शांन्ति कहाँ इस भव को?
जब तक मनुज मनुज का यह, सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।''[9]

मानवतावाद से शान्ति का बहुत गहरा सम्बन्ध हैं, मानव कल्याण के लिए शान्ति आवश्यक है, क्योंकि जब तक शान्ति नहीं होगी तब तक इस जगत में अराजकता ही फैलती रहेगी। यहाँ शान्ति का कोई सीमित या संकुचित रुप नहीं है, बल्कि विश्व शांति ही सर्वोपरि है वे उन सब बातों का विरोध करते है, जिनसे विश्व शांन्ति भंग होती है। दिनकर जी ने कई क्षेत्रों में कुरुक्षेत्र में कई प्रसंगों में शांन्ति की बात कही है। वे कहते है कि शांति कोई बाहरी साधन नहीं है, जो उपर से लादा जा सके। यह तो आत्मा का प्रकाश है, जो पवित्र -हदय के भीतर खिल पडता है। शांति तो उस आकर्षक मार्ग का नाम है, जिसे प्रेम भलीभाँति जानता है। प्रेम और शांति का गहरा नाता है। यह शांति तलवार के बलपर नहीं बल्कि कवि के अंतर्मन में विकसित होती है।

''यह न बाहय उपकरण, भार बन जो आबे उपर से,
आत्मा की यह ज्योति , फूटती सदा विमल अन्तर से।
शान्ति नाम उस अचिर ससरणि का, जिसे प्रेम पहचाने
खड्ग भीत तन हीन, मनुज का मन भी जिसको माने।''[10]

तृतीय सर्ग में कित कहता है सच्ची शान्ति की स्थापना के पाश्चात् व्यक्ति भय से मुक्त हो जाता है, किसी को कोई शंका का काँटा नहीं सताता। समता के बिना शान्ति नहीं। विषमता से ही संघर्ष को जन्म होता है, जो सयंम पर न रोके जाने पर अयंकर रुप लेता है। इसलिए समता के बिना शान्ति नहीं हो सकती -

''जब होती अवतीर्ण शान्ति यह, भय न शेष रह जाता,
शंका तिमिर ग्रस्त फिर कोई, नहीं देश रह जाता

शान्ति सुशीतल शान्ति। कहाँ वह समता देने वाली?
देखो आज विषमता की ही, वह करती रखवाली।''[11]

मानवतावाद में दूसरे के दुःख को अपना दुःख माना जाता है और प्रत्येक प्राणि को सुखी बनाने का प्रयास किया जाता है। कुरूक्षेत्र में कवि ने हिंसा के कारण हुए परिणाम पर विचार प्रकट किया है। कृति में कई स्थलों पर युधिष्ठिर हिंसा के कारण हुए परिणाम पर दुःख दुआ है, इस कारण पश्चाताप व विलाप भी करते है। उन्हें अपने बंधु बान्धवों के हुए विनाश का दुःख होता है । उन्हें उस पर भी दुःख होता है कि मैने लालचवश ही युध्द किया है। इसी कारण इतना जन संहार हुआ है। वह युद्ध में हुई विजय को विजय न मानकार हार मानते हैं। वह दुःख प्रकट करते कहते है कि, इस जनसंहार के कारण वह अकेले हैं। वह चारों ओर दुःख विलाप देखते है। वे कहते है '' कभी तो पुत्रहीन माता के रोने की दर्दभरी आवाज सुनाई देती है। जिधर भी देखता हूँ उधर ही सुहासिनों की माँगों का सिन्दुर पोंछा देखता हूँ।''

''बालहीना माता की पुकार कभी आती,
और आता कभी उर्तनाद पितृहीन बाल का;
आँख पडती है जहाँ, हाय, वही देखता हूँ
सेन्दुर पूँछा हुआ सुहागिनी के भाल का।''[12]

पंचम सर्ग में युधिष्ठिर को अपार दुःख होता है। वह विजय को तुच्छ समझते है कहते है- सारे शूरवीर तो सुयोधन के साथ ही चले गए। मेरे लिए मुर्दो का ही देश बचा है। मरे हुए पुत्र की माताओंका रूदन और युवती विधवाओं का वेश बचा है। शान्ति, आनन्द और सुख सब मिट गया केवल गम्भीर दुःख दर्द ही शेष बचा है-

''सब शूर सुयोधन साथ गए,मृतको से भरा यह देश बचा है,
मृतवत्सला माँ की पुकार बची, युवती विधवाओं का देश बचा हैं
सुख शांन्ति गई, रस राग गया, करूणा, दुःख दैन्य अशेष बचा है,
विजय के लिए यह भाग्य के हाथ में क्षार समृध्दि का शेष बचा है।''[13]

मानवतावाद में करूणा का भी अत्यंत महत्व है, जो भी व्यक्ति मानव की महत्ता को समझता है, उसमें आवश्क करूणा विदयमान होती है। कुरूक्षेत्र सर्वत्र करूणा के दर्शन करता है। कुरूक्षेत्र का प्रथम सर्ग करूणा से अप्लरित है, युधिष्ठिर के साथ कवि स्वयं सोचता है, कि इस विजय का क्या लाभ? जब कोई बचाही नहीं केवल चारो और लाशे कटे फटे अंग लहु पसरा पडा है। मेरे लिए व्यंग ही शेष रहा है। कुरूक्षेत्र के प्रारंभ का दृश्य ही अत्यंत करूणामय है कवि कहता है-

''भर गया ऐसा -हदय दुख दर्द से,
फेन या बुद बुद नहीं उसमें उठा।''[14]

त्याग एवं बलिदान की भावना मानवतावाद का हेतु आवश्यक ही नहीं अनिवार्य सा है। त्याग और बलिदान से अर्थ है कि ऐसा त्याग और बलिदान जो कि मानव को आगे की ओर ले जाए उसका उद्धार कर सके। युधिष्ठिर युद्ध समाप्ति के पश्चात भीष्म पितामह के समक्ष यह स्वीकार करते है कि मैनें जो कुछ किया वह अभिमान स्वरूप ही है। मेरी विजय खोखली विजय है। वास्तविक विजय तो त्याग और बलिदान से प्राप्त होती है।

''जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,

तन बल छोड मैं मनोबल से लडता,
तप से, सहिष्णुता से, त्याग सुयोधन को,
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।''[15]

कुरूक्षेत्र में कवि ने विश्व कल्याण की कामना व्यक्त की है कवि चाहता है कि युध्द रूपी अभिशाप पृथ्वी पर सदा के लिए समाप्त हो जाये ओर मनुष्य, मनुष्यता के साथ जीवन व्यथीत करें। वह प्रगति करे, विकास करें तथा सुखी, समृध्द रहें। यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाये और सभी मनुष्य यहाँ सुख पूर्वक जीवन जीएँ। कवि ने विश्व कल्याण की कामना अपनी कुरूक्षेत्र में की है-

''श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण
एक नर में अन्य का निःशक दृढ विश्वास
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास
स्मर शोषण, हास की विरूदावाभे से हीन
पृष्ट जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलना।''[16]

इस प्रकार से कवि ने युधिष्ठिर के माध्यम से प्रवृत्ति मार्ग और कर्मयोग पर बल दिया है तथा स्पस्ट करने का प्रयास किया है कि इसी संसार में रहकर, संसार को स्वर्ग बनाओं। हमारा और सबका लक्ष्य जीवन में विश्व कल्याण ही होना चाहिये।

निष्कर्ष–

दिनकर जी इस सामान्य अर्थ में ही मानवतावादी कवि सिद्ध होते हैं। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर उनकी कृति कुरूक्षेत्र में मानवतावाद का पुट हर जगह उपस्थित होता है। मानवतावाद तथा मानवतावादी कवि किसी आत्मिक अथवा आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास नहीं करता जिसका सम्बन्ध हमारे सथार्थ से नहीं है। आत्मा की अखण्डता की सामाजिक अभिव्यक्ति ही मानवता है और इस मानवता के प्रति ही मानवतावादी कवि पुज्य बुध्दि होती है। अन्य मानव के हित चिंतन में निरत रहते हुए समष्टि की सापेक्षता में अपनी व्यष्टि के महत्व को भूल जाना, अन्य मानवों का कल्याण करते हुए अपने व्यक्तित्व सुखों का उत्सर्ग कर देना ही मानवता है; जो इस अर्थ पूर्ण मानव है, वह कवि भी अभिनन्दनीय है, जो आदर्श से गिर गया वह मानव नहीं पशु है, बल्कि उसे पशु कहना भी पशु का अपमान है। ऐसा मनुष्य शरीर धारणा करते हुए भी मानव नहीं है। मानवतावादी कवि उत्सर्ग, सेवा और प्रेम जैसी उदात्त वृत्तियों की विजय और स्वार्थ, पर पीडा तथा युध्द आदि दुर्वृत्तियों की पराजय का आकांक्षी होता है। दिनकर के कुरूक्षेत्र में हमें यह त्तव प्रचुर परिणाम प्राप्त होते है। वे मानव जीवन का उद्देश्य मानव कल्याण अथवा मानवतावाद बतलाया है। इस तरह यह सिध्द होता है कि दिनकर सामान्य अर्थ में मानवतावादी कवि तथा उनकी कृति कुरूक्षेत्र में मानवतावाद सर्वव्यापक भरा है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.16
2. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.81
3. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.92

4. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.108
5. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.84
6. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.63
7. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.82
8. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.68
9. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.95
10. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.38
11. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.38-39
12. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.18
13. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.35
14. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.14
15. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.16
16. रामधारीसिंह दिनकर - कुरूक्षेत्र पृ.क्र.88

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVI, Hindi-I, Year-13, Dec., 2018

आत्मकथा के आईने में कृष्णा अग्निहोत्री के जीवनानुभवों का प्रतिबिम्ब

* अनिता गुप्ता

सारांश– *कृष्णा अग्निहोत्री उन लेखिकाओं के समक्ष खड़ी दिखाई देती है जिन्होनें भोगे हुए क्षणों को समाज के समक्ष बेबाकी से प्रस्तुत करने का साहस दिखाया। 'लगता नही है दिल मेरा' आत्मकथा कृष्णा अग्निहोत्री की अन्तर्जगत की कथा है जहां–जहां लेखिका के अन्तरंग जीवन के दर्शन होते है वे पर्याप्त प्रभावशाली है। इस आत्मकथा में उन जमीनी सच्चाईयों का विश्लेषण किया गया है जिससे उनके जीवन में गहराई संस्पर्शित होती है व व्यक्तिगत जीवन के पहलू स्वतः ही खुलते चले जाते है। कृष्णा जी ने भुक्त यथार्थ की अभिव्यंजना, भावनाओं का सहज उच्छंलन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का शमन, आत्मरहस्योंद्घाटन आदि प्रयोजनों के निहितार्थ को सुस्पष्ट किया है। आत्मकथा के क्षेत्र में कृष्णा अग्निहोत्री का योगदान साहसपूर्ण व चुनौतीमय कदम है जो आत्मकथा लेखन की कसौटी है।*

मुख्य शब्द– आत्माभिव्यक्ति, कलात्मक अनुकृति, सम्यक, आत्मविश्लेषण

आदिकाल से ही आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा मनुष्य के भीतर रही है। साहित्य के सभी रूप आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के ही प्रतिफल होते है इसलिए साहित्य को 'जीवन की समालोचना' कहा जाता है किन्तु साहित्य में जो जीवन की सच्ची एवं प्रामाणित समालोचना होती है, वह है- आत्मकथा।

आत्मकथा एक जीवन बिन्दु पर पहुँचे कथानक के लिए अपने विगत जीवन का पुनरावलोकन है। जिसका कथानक जीवित व्यक्ति होता है, जिसकी कुण्ठाएँ, वर्जनाएँ और विवशताएँ निजी भोगी हुई होती है इसलिए आत्मकथा को 'मानस-मंथन का परिणाम' कहा जाता है। आत्मकथा में आत्मसंश्लेषण के माध्यम से समकालीन सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक चेतना का भी सहज सम्प्रेषण होता है।

आत्मकथा लेखक का उद्देश्य जीवन का सहज निरूपण, घटनाओं का व्यापक चित्रण और भुक्त क्षणों का प्रतिपादन, जीवन मूल्यों का संरक्षण और जीवन दर्शन का रेखांकन करना होता है। ''जब विगत जीवन के अनुभव और अनुभूतियाँ साहित्य स्रष्टा को इतना उद्वेलित व विवश कर देती है कि उन्हें अपने अन्तर्मन के बाहर उड़ेल देने के अतिरिक्त और कोई विकल्प शेष नहीं रह पाता, प्रायः तभी श्रेष्ठ आत्मकथाएँ अथवा गीतों की पंक्तियाँ जन्म लेती है।''[1]

आत्मकथा जीवन की कलात्मक अनुकृति है। जिस प्रकार जन्म और मृत्यु की

* शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

परिधि में बंधे जीवन का प्रारम्भ और अन्त रहता है, उसी प्रकार आत्मकथा भी आरम्भ और परिसमाप्ति के बीच निबद्ध रहती है। वास्तव में आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सबलताओं आदि का वह सन्तुलित और व्यवस्थित चित्रण है, जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता है।

आत्मकथा अपने भोगे हुए अतीत के जीवन की सामाजिक यात्रा को पाठकों के सामने रखती हुई अदम्य जिजीविषा का संकेत देती है। पंकज चतुर्वेदी के शब्दों से सहमत होकर कहा जा सकता है- ''उसमें व्यक्ति समूचे समय और समाज के सन्दर्भ में रखकर अपने शब्द और कर्म, अपनी वैचारिकता और व्यक्तित्व की गहन और पारदर्शी पडताल करने की रचनात्मक कोशिश करता है। गहनता 'आत्म' के आद्यन्त विश्लेषण के लिए जरूरी है तो पारदर्शिता औरों की आत्मीयता अर्जित करने के लिए। क्योंकि आत्मकथा दूसरों के साथ अपने जीवन प्रसंगो का साझा है।''[2] आत्मकथा में एक साथ आत्म का साक्षात् और मानवीय संवेदन की अभिव्यक्ति होती है। एक प्रकार से आत्मकथा यथार्थता से अपनी भाषागत सामर्थ्य के माध्यम से अन्तर्निहित अनुभूतियों का प्रकटीकरण है।

आत्मकथा साहित्य यह अपेक्षा रखता है कि लेखक अपने समस्त गुणों और अवगुणों का सम्यक् निरूपण करें लेकिन यह कार्य दुधारी तलवार पर चलने के समान कठिन व्यवसाय है। भुक्त यथार्थ की अभिव्यंजना में आत्मकथा लेखक की रचना जब सार्वजनिक हो जाती है तो पाठक यह जानने की कोशिश करता है कि ऐसे कौन से कारण है जिससे लेखक के जीवन में ऐसा घटित हुआ।

साहित्यिक आत्मकथाकार अपने अन्तर्मुखी मन को विशिष्ट स्व के प्रतिच्छादित करते है, जिनके कारण साहित्यिक आत्मकथाओं में निजता का निर्वाह यथार्थ होता है। साहित्यकारों की आत्मकथाओं में सौन्दर्य, आशा-निराशा, पीडा-चाह, भयग्रन्थि, सुख-दुःख के विविध छाया तथ्यों की बाह्रय सौन्दर्यमयी कलात्मक अभिव्यक्ति होती है।

साहित्यकार आत्मकथाओं में स्व को उद्घाटित करने की आन्तरिक विवशता से आत्मकथा लेखन को सम्पन्न करता है और अपनी आत्मिक छटपटाहट से जुडी भावना को संदर्भित करता है। दाम्पत्य सम्बन्धों में असन्तुष्टि को साहित्यकारों ने आत्मकथाओं में कितना बेबाकी से स्वीकार किया है इनका चित्रण उनकी आत्मकथाओं में स्पष्ट दिखाई देता है।

आत्मकथा लेखन के बहाने स्त्री के अस्तित्व, उसकी सामाजिक स्थिति एवं भूमिका पर लगातार बहस होती जा रही है। शोषण और प्रतिवाद के अनेक स्तर है और बोल्ड होती हुई स्त्री के आत्मकथ्य समाज के सामने, सता और पूंजी के वर्चस्व के सामने अनेक सवाल उठाते है। स्मृतियों को उकेरते हुए ये कथ्य केवल अतीत और इतिहास के कथ्य नहीं है, बल्कि पूरी सामन्ती व्यवस्था पर भी प्रहार करती है। महिला आत्मकथा लेखक भले ही सघन पीडा का वाहक हो किन्तु उसमें व्यक्ति के अधिकार और इच्छाओं की प्राप्ति की चुनौती भी है।

हिन्दी स्त्री कथाकारों की सशक्त पीढी है जिन्होने अपने रचना संसार को विविध रूप रंग को सुसज्जित किया है। कृष्णा अग्निहोत्री उन लेखिकाओं की श्रेणी में आती है जिन्होने भोगे हुए क्षणो को समाज के समक्ष बेबाकी से अपने साहित्य के माध्यम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य में कृष्णा अग्निहोत्री का यह

चुनौतीपूर्ण कदम है जिसमें बाहयजगत व अन्तर्जगत की कथा का खुला चित्रण किया गया है। निश्चय ही हिन्दी आत्मकथा साहित्य के क्षेत्र में कृष्णा अग्निहोत्री ने लोकप्रियता अर्जित की है।

कृष्णा अग्निहोत्री ने 'लगता नहीं है दिल मेरा' आत्मकथा के अन्तर्गत माँ की स्वभावगत विशिष्टता का उल्लेख करते हुए स्वयं को निष्प्रभ अनुभव कर माँ की व्यावहारिकता का विश्लेषण किया है - ''माँ मुझे प्यार नहीं करती थी पर मैं अम्मा को हृदय से प्यार करती थी... यदि पल भर को भी मुझे प्यार देती थी तो मैं गद्‌गद्‌ हो जाती थी।''[3]

भाई व बहिन का आदर्शात्मक सम्बन्ध समाज को दिशा निर्देशित करता है। औद्योगिक क्रान्ति का फलस्वरूप भाई व बहिन सम्बन्धों के मध्य प्रगाढता विलीन होती जा रही है। भाई-बहिन के आदर्श व यथार्थ को लेकर अनेक अवधारणाएँ साहित्यिक आत्मकथाओं में विस्तृत फलक पर अभिव्यंजित है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप भाई बहिन के सम्बन्धों की विच्छिन्नता का सहज निर्देशन वे अपनी आत्मकथा में देती है - ''मैं भी देखती हूँ कि तुम मुझे घर से कैसे निकालते हो। मैं कलक्टर से शिकायत कर दूँगी? मैं, क्रोध व अपमान से काँप रही थी।''[4]

पारिवारिक संगठन हेतु ननद, भाभी के सम्बन्धों की मधुरता व तिक्तता का कृष्णा अग्निहोत्री ने प्रभावशाली चित्रण किया है - ''मैनें मन से, हृदय से बेटे अतुल को पाला. .. चार माह तक वह मुझे ही माँ समझता रहा... भाभी का लीवर खराब था, उनके लिए लीवर सूप बनाना व परोसने का काम भी मैं ही करती... होना तो यह था कि वे सबको प्यार देती लेकिन वे हमसे प्रत्येक क्षण मायका छुडवा रही थी।''[5]

चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। विधि द्वारा विवाह के उपरान्त ही स्त्री और पुरूष को पति-पत्नी का दर्जा दिया जाता है और पति-पत्नि को दम्पती माना जाता है। दाम्पत्य जीवन में विवाह एक आधारशिला है। विवाह के माध्यम से पति-पत्नि गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते है, अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति, सन्तानोत्पति एवं बच्चों का पालन-पोषण करते है। कृष्णा अग्निहोत्री ने 'लगता नहीं है दिल मेरा' आत्मकथा के अन्तर्गत विवाह के अनुष्ठान का शब्दबद्ध अभिव्यंजन किया है- ''शादी के समय पानी गिर रहा था और मैं अनिद्रा में फेरे ले रही थी। एकदम निरूत्साहित घबराई। जो आता, कान में फुसफुसा देता, वर बढिया है।''[6]

विवाह में प्रदत्त दहेज पर भी कृष्णा अग्निहोत्री ने व्यंग्यपूर्ण दृष्टि डाली है। अपने ससुराल वालो की लालची स्वभाव का भी विवेचन किया है - ''पिताजी ने पलंग, सोफासेट, पंखा, रेडियो भी दिए ... मेरी सास ने कहा- तिवाडी जी हमें लडके की दादी को पैर छुवाई में सोने की गिन्नी चाहिए।''[7]

पति-पत्नि के सम्बन्धों में प्रगाढता लाने के लिए सन्तान की महती भूमिका होती है। परिवारों में वंशवर्धन व जातीय जीवन के सातत्य को बनाए रखने की अनिवार्यता पर बल दिया जाता है। पारिवारिकता सार्वभौमिकता का स्वरूप विश्लेषित करते हुए कृष्णा अग्निहोत्री ने पुत्री जन्म की घटना को प्रस्तुत किया है -''सातवें माह में मैं बिस्तर पर रखी गई तब नीहार का जन्म हुआ... लडकी का स्वागत है, उसकी देखरेख अच्छे से करें।''[8] माँ की ममता बच्चों के प्रति स्वाभाविक होती है। माँ को जीवन में सर्वोच्च स्थान दिया

गया है। कृष्णा अग्निहोत्री ममत्व की भावना के वंशीभूत होकर अपनी पुत्री की संवेदना को मनोवैज्ञानिक धरातल पर संश्लेषित किया है- ''प्यारी दुलिया बिटिया की बाहें गले का हार थी। प्रेरणा थी, जीने का बहाना था, मैं रोती रही, वह आँसू पोछती रही।''[9] पति-पत्नि के विचारों में असमानता जीवन को नीरस बना देती है।

कृष्णाजी के आलोक से बातचीत करने पर ही अपने पति के व्यवहार में परिवर्तनशीलता का वर्णन करते हु ए वे लिखती है -''अग्निहोत्री ने दरवाजा बन्द किया और जूते सहित एक जो से लात मेरे पेट में मारी... अपने यार से इश्क लड़ाने यहाँ आई है।''[10] इससे स्पष्ट होता है कि पुरूष प्रधान समाज में पुरूष जाति स्त्री को चारदीवारी में ही समेट कर रखना चाहता है।

बदलते संदर्भ में दाम्पत्य जीवन में परम्परागत नैतिक मान्यताओं में शिथिलता आती जा रही है। पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्धों के मूल्य भी बदल रहे है। कृष्णा अग्निहोत्री ने आत्मविश्लेषण में जीवन के असंतोष को प्रकट करते हुए जमीनी सच्चाईयों से जीवन में गहराई का भी चिन्तन मनन करते हुए अवस्थी जी के आश्वासन की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते आवेश के क्षणों में भावनात्मक प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया है- ''मैने अवस्थी जी से कह दिया था, मै रखेल बनकर कभी भी नहीं जी सकती और आवेश के क्षणों में सुख के लिए मेरी भावना से कोई खिलवाड़ करे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा।''[11] किसी दूसरे से जुड़ने की प्यास मानव में स्वाभाविक होती है। यह प्यास इतनी बहुआयामी होती है कि दाम्पत्य सम्बन्धों से संतुष्ट नही हो पाती। कृषा अग्निहोत्री ने अपनी जीवन शैली में दोस्ती की अनिवार्यता पर बल देते हुए अपनी जिन्दगी को अन्य के प्रति दस्तावेजित किया व दूसरे विवाह के संदर्भ में पारिवारिक वातावरण, श्रीकान्त के बच्चों के प्रति भावनात्मकता, अपनी पुत्री नीहार के प्रति कर्तव्य निष्ठा पहले पति अग्निहोत्री से तलाक, श्रीकान्त के हर्ष को वैवाहिक अनुष्ठान की भावभूमि में प्रतिबिम्बित किया है- ''मै तैयार नही हुई तो उन्होने विवाह की योजना बना ली .. मैं अपने झूंठे अहं व स्वाभिमान की डोर से बंधती गई।''[12]

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने जीवन के तूफान, तूफान के सैलाब, भावनाओं की सघनता, तनावों का कसाव आदि को वाणी देने का सातत्य प्रयास किया है एवं आलोक के साथ अपने सम्बन्धों को निःसंगता के साथ प्रस्तुत किया है। दाम्पत्येत्तर सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए आलोक से मिलने वाले सुख व आनन्द की पुष्टि कृष्णा अग्निहोत्री ने संचारी भावो के माध्यम से प्रस्तुत की है -''आलोक हमें कई बढ़िया जगह घुमाने ले गए... अधिकतर तो वो मेरे पास ही बैठते।''[13]

लेखिका ने पाठकों की जिज्ञासा का शमन करने हेतु अपने सम्बन्धों को निश्छलता को शब्दबद्ध किया है। इन्होने सत्य व तथ्य की रक्षा करते हुए अपने नियमित व अनियमित प्रेम-प्रसंगों का पर्दाफाश किया है। मंजुल के विश्वसनीय व्यक्तित्व से प्रभावित हो उम्र का बंधन त्याग कर दाम्पत्येत्तर सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक संश्लेषण कृष्णा अग्निहोत्री ने किया है - ''कई बार मेरे मंजुल के सम्बन्ध कटघरे में खड़े हुए... कई रिश्तों की भावनाओं का हम निर्वाह कर रहे थे... जिसकी न परिवार, न समाज की हानि।''[14]

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने भाव जगत की इच्छाओं, आकांक्षाओं, स्वप्नों, कल्पनाओं का सुन्दर दिग्दर्शन किया है। मातृत्व की पूर्ति निमित दौहित्री के आगमन से अपने आँचल

को अलौकिक मानकर आनन्द व उल्लास की भावाभिव्यक्ति कृष्णा अग्निहोत्री ने की है- ''मेरे पास पॉच रूपये के नोटो की गड्डी थी, उस समय उपस्थित सभी नर्सों को मैने नातिन पर से न्यौछावर करके बांट दिया।''[15]

कृष्णा अग्निहोत्री उन लेखिकाओं के समक्ष खड़ी दिखाई देती है जिन्होनें भोगे हुए क्षणों को समाज के समक्ष बेबाकी से प्रस्तुत करने का साहस दिखाया। 'लगता नही है दिल मेरा' आत्मकथा कृष्णा अग्निहोत्री की अन्तर्जगत की कथा है जहां-जहां लेखिका के अन्तरंग जीवन के दर्शन होते है वे पर्याप्त प्रभावशाली है।

इस आत्मकथा में उन जमीनी सच्चाईयों का विश्लेषण किया गया है जिससे उनके जीवन में गहराई संस्पर्शित होती है व व्यक्तिगत जीवन के पहलू स्वतः ही खुलते चले जाते है। कृष्णा जी ने भुक्त यथार्थ की अभिव्यंजना, भावनाओं का सहज उच्छंलन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का शमन, आत्मरहस्योंद्घाटन आदि प्रयोजनों के निहितार्थ को सुस्पष्ट किया है। आत्मकथा के क्षेत्र में कृष्णा अग्निहोत्री का योगदान साहसपूर्ण व चुनौतीमय कदम है जो आत्मकथा लेखन की कसौटी है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. विश्वबन्धु व्यथितः हिन्दी का आत्मकथा साहित्य, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 120
2. सुदेश बत्रा :- प्रतिरोध के स्वर, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर पृ. 29
3. कृष्णा अग्निहोत्री :- लगता नही है दिल मेरा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली पृ.22
4. वही... पृ. 28
5. वही... पृ. 227
6. वही... पृ. 92
7. वही... पृ. 93
8. वही... पृ. 121, 122
9. वही... पृ. 26
10. वही... पृ. 158
11. वही... पृ. 187
12. वही... पृ. 260
13. वही... पृ. 158
14. वही... पृ. 287
15. वही... पृ. 294

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA

ISSN 0973-3914

9770973391009

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications, 41/42 Raghuwans Sadan, Bichhiya, Rewa, 486001 (MP) and Printed at Yuvraj Press, Ghoghar, Raniganj, Rewa 486001 (MP)